Master of Arts (Hindi) (DDE)

Semester – II

Paper Code – 20HND22C2

आधुनिक गद्य साहित्य–II

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr.* _____

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

ISBN :

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

परिचय

प्रस्तुत पुस्तक 'आधुनिक गद्य–साहित्य (ब) विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम0 ए0 हिंदी (द्वितीय सेमेस्टर) के नवीनतम पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है। इसमें दो प्रमुख नाटकों, एक उपन्यास तथा विभिन्न विषयों पर लिखे गए सात निबन्धों का समावेश हुआ है।

प्रस्तुत पुस्तक चार इकाईयों में विभक्त है। पहली इकाई में प्रसाद रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' नाटक में संस्कृत नाटकों एवं पारसी थियेटर के प्रभावानुरूप संवादों के मध्य सरस गीतों का प्रयोग है। दूसरी इकाई में मोहन राकेश का नाटक 'आधे–अधूरे' है। आधे–अधूरे नाटक के संवाद घर के बैठक में बोले जाने वाले संवादों के एक नग्न–यथार्थ का साक्षात्कार कराते हैं। तीसरी इकाई में विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित जीवनी परक उपन्यास 'आवारा मसीहा' है। 'आवारा मसीहा' में बंगाल के प्रसिद्ध लेखक शरतचन्द्र के जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। चौथी इकाई में विभिन्न विषयों पर आधारित निबन्ध हैं। इन निबंधों में भावात्मक, समीक्षात्मक, व्यंग्यात्मक, वर्णनात्मक आदी भाव दृष्टिगत होते हैं।

सरल एवं प्रवाहमयी भाषा के द्वारा प्रस्तुत यह सामग्री छात्रों के लिए निश्चित रूप से उपयोगी एवं ज्ञान–वर्द्धक होगी।

आधुनिक गद्य–साहित्य (ब)

इकाई–1 चन्द्रगुप्त (जयशंकर प्रसाद)

चन्द्रगुप्त– व्याख्या–खण्ड, चरित्र–चित्रण, चन्द्रगुप्त की ऐतिहासिकता, नायकत्व, राष्ट्रीयता, रंगमंचीयता।

इकाई–2 'आधे–अधूरे' (मोहन राकेश)

आधे–अधूरे– व्याख्या–खंड, नाटकों की विकास यात्रा, चरित्र–चित्रण, आधुनिकता बोध, परिवार संस्था, प्रयोग–धर्मिता, भाषा–शैली।

इकाई–3 'आवारा मसीहा' (विष्णु प्रभाकर)

'आवारा मसीहा' –व्याख्या खंड, जीवनी साहित्य में आवारा मसीहा का स्थान, आवारा मसीहा की रचना के प्रेरक तत्त्व, आवारा मसीहा के संदर्भ में शरतचन्द्र की स्त्री दृष्टि।

विषय सूची

आधुनिक गद्य–साहित्य (ब)

इकाई–1 चन्द्रगुप्त (जयशंकर प्रसाद) **(5–36)**

चन्द्रगुप्त– व्याख्या–खण्ड, चरित्र–चित्रण, चन्द्रगुप्त की ऐतिहासिकता, नायकत्व, राष्ट्रीयता, रंगमंचीयता।

इकाई–2 'आधे–अधूरे' (मोहन राकेश) **(37–73)**

आधे–अधूरे– व्याख्या–खंड, नाटकों की विकास यात्रा, चरित्र–चित्रण, आधुनिकता बोध, परिवार संस्था, प्रयोग–धर्मिता, भाषा–शैली।

इकाई–3 'आवारा मसीहा' (विष्णु प्रभाकर) **(74–112)**

'आवारा मसीहा' –व्याख्या खंड, जीवनी साहित्य में आवारा मसीहा का स्थान, आवारा मसीहा की रचना के प्रेरक तत्त्व, आवारा मसीहा के संदर्भ में शरतचन्द्र की स्त्री दृष्टि।

इकाई–4 पाठ्यक्रम में निर्धारित निबंधों का मूल प्रतिपाद्य एवं शिल्प **(113–190)**

इकाई 1

चन्द्रगुप्त (जयशंकर प्रसाद)

इकाई की रूपरेखा

1.0 परिचय

1.1 इकाई के उद्देश्य

1.2 पात्र परिचय

1.3 व्याख्यात अंश

1.3.1 गद्य

1.3.2 पद्य

1.4 चरित्र–चित्रण

1.4.1 चन्द्रगुप्त

1.4.2 चाणक्य

1.4.3 पर्वतेश्वर

1.4.4 राक्षस

1.4.5 अलका

1.4.6 सुवासिनी

1.4.7 कल्याणी

1.4.8 मालविका

1.5 आलोचना

1.5.1 कथानक

1.5.2 अभिनेयता

1.5.3 गीत योजना

1.5.4 नाटक में ऐतिहासिकता एवं कल्पना का समन्वय

1.5.5 संवाद योजना

1.5.6 चन्द्रगुप्त नाटक में अंतर्द्वंद्व योजना

1.5.7 राष्ट्रीय चेतना

1.5.8 राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना

1.5.9 भाषा–शैली

1.6 सारांश

1.7 मुख्य शब्दावली

1.8 'अपनी प्रगति जांजिए के उत्तर

1.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0 परिचय

जयशंकर प्रसाद द्वारा 1931 में इस रचना का प्रणयन हुआ। यह ऐतिहासिक नाटक है। यह भारतीयों को जागरण का संदेश देने वाला नाटक है जिसकी स्वतंत्रता से पूर्व महत्त्वपूर्ण भूमिका थी और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में भी यह प्रासंगिक है क्योंकि राष्ट्र–प्रेम एवं राष्ट्र भक्ति, त्याग, बलिदान का संदेश देने वाली यह महत्त्वपूर्ण कृति है। ऐतिहासिक नाटकों की श्रृंखला में यह अपना विशेष स्थान रखता है।

1.1 उद्देश्य

'चंद्रगुप्त' नाटक को पढ़कर छात्र

राष्ट्र हित में जीवन समर्पित करने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

स्वतंत्रतापूर्व के भारतीय समाज और राजाओं के परिवेश तथा मानसिकता से परिचित होंगे;

साहित्यिक दृष्टि से भारतीय इतिहास का दर्शन करेंगे;

राष्ट्र प्रेम एवं व्यक्तिगत प्रेम के अद्‌भुत स्वरूप का परिचय प्राप्त करेंगे।

1.2 पात्र–परिचय

पुरुष पात्र

चाणक्य (विष्णुगुप्त)	मौर्य साम्राज्य का निर्माता
चन्द्रगुप्त	मौर्य सम्राट
नन्द	मगध सम्राट
राक्षस	मगध का अमात्य
वररुचि (कात्यायन)	मगध का अमात्य
शकटार	मगध का मंत्री

आम्भीक	तक्षशिला का राजकुमार
सिंहरण	मालवगण–मुख्य का कुमार
पर्वतेश्वर	(ग्रीक ऐतिहासिकों का पोरस) पंजाब का राजा
सिकन्दर	ग्रीक–विजेता
फिलिप्स	सिकन्दर का क्षत्रप
मौर्य–सेनापति	चन्द्रगुप्त का पिता
एनीसाक्रीटीज	सिकन्दर का सहचर
देवबल	मालव गणतन्त्र का पदाधिकारी
गण मुख्य	मालव गणतन्त्र का पदाधिकारी
साइबर्टियस	यवन–दूत
मेगस्थनीज	यवन–दूत
गान्धार नरेश	आम्भीक का पिता
सिल्यूकस	सिकन्दर का सेनापति
स्त्री पात्र	
अलका	तक्षशिला की राजकुमारी
सुवासिनी	शकटार की कन्या
कल्याणी	मगध–राजकुमारी
नीला	कल्याणी की सहेली
लीला	कल्याणी की सहेली
मालविका	सिन्धु देश की कुमारी
कार्नेलिया	सिल्यूकस की कन्या
मौर्य पत्नी	चन्द्रगुप्त की माता
एलिस	कार्नेलिया की सहेली

1.3 व्याख्यात अंश

1.3.1 गद्य

1. चाणक्य :

''तुम मालव हो और यह मागध; यही तुम्हारे मान का अवसान है न? परंतु आत्म–सम्मान इतने ही से संतुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का ना लोगे तभी वह मिलेगा। क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में, आर्यावर्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनंतर दूसरे विदेशी विजेता से पद–दलित होंगे। आज

जिस व्यंग्य को लेकर इतनी घटना हो गई है, वह बात भावी गांधार–नरेश आम्भीक के हृदय में, शल्य के समान चुभ गई है। पंचनद नरेश पर्वतेश्वर के विरोध के कारण, यह क्षुद्र–हृदय आम्भीक यवनों का स्वागत करेगा और आर्यावर्त का सर्वनाश होगा।'

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ महाकवि, नाटककार जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' से ली गई हैं।

प्रसंग : तक्षशिला के गुरुकुल के मठ से चाणक्य और सिंहरण बातें करते हुए निकलते हैं। सिंहरण राज्य में चल रहे षड़यंत्रों की ओर इशारा करता है तभी आम्भीक, जो देशद्रोही और कदाचारी है वहाँ आ जाता है और सिंहरण को षड़यंत्र बताने का आदेश देता है। वह चाणक्य का भी अपमान करता है तभी चन्द्रगुप्त बीच–बचाव के लिए आ जाता है। चाणक्य के आदेश से अलका अपने भाई आम्भीक को ले जाती है और चन्द्रगुप्त चाणक्य से कहता है कि वह सिंहरण से सदैव मित्रता निभाएगा क्योंकि हम मागध हैं। चन्द्रगुप्त द्वारा अपने प्रदेश का परिचय देकर गौरवान्वित होने पर चाणक्य ने उपरोक्त पंक्तियाँ कही।

व्याख्या : चाणक्य चन्द्रगुप्त से कहते हैं तुम मालव हो और आम्भीक मागध है इसलिए तुम उसके साथ शस्त्र परीक्षा करना चाहते हो, उसके व्यवहार से तुम्हारी मानहानि हुई ऐसा समझते हो। प्रादेशिक स्तर पर जन्मभूमि का मान बढ़ाने की बात करने से कुछ नहीं होगा। यह बात यह सोच देशवासियों को बांटती है। आत्मसम्मान को केवल प्रदेश की रक्षा से संतुष्ट नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे पूरे देश की, आर्यावर्त की बात को एक ही दृष्टि से सोचना चाहिए। जो मगध का देशद्रोही है वह पूरे आर्यावर्त का देशद्रोही है। अतः जब मालव, मगध भूलकर दृष्टि और चिंतन को विस्तार दोगे, आर्यावर्त की बात सोचोगे तभी आत्मसम्मान और मान को संतुष्टि मिलेगी उनका विकास होगा। चाणक्य कहते हैं चन्द्रगुप्त क्या तुम अपनी दूरदृष्टि से यह नहीं देख रहे हो कि आने वाले समय में आर्यावर्त के सभी स्वतंत्र राष्ट्र विदेशी विजेताओं से हार जायेंगे। एक–एक कर उनकी स्वतंत्रता छिन जाएगी। आज तुमने जिस आम्भीक को एक व्यंग्य पर लड़ते और जहर उगलते देखा है वह आम्भीक भविष्य में गांधार नरेश बनेगा और शत्रु यवनों से मित्रता करेगा उनका स्वागत करेगा क्योंकि उसका हृदय क्षुद्र है और तुम लोगों की (चंद्रगुप्त और सिंहरण) बातें उसके हृदय में कांटे की तरह चुभ गई हैं। वह पंचनद नरेश पर्वतेश्वर का विरोधी है। अतः यवनों से मित्रता कर वह तुम लोगों से पूरी तरह शत्रुता निभाएगा।

2. महापद्म का जारज पुत्र नंद केवल शस्त्र–बल और कूटनीति के द्वारा सदाचारों के शिर पर ताण्डव नृत्य कर रहा है। यह सिद्धांत–विहीन नृशंस, कभी बौद्धों का पक्षपाती, कभी वैदिकों का अनुयायी बन कर दोनों में भेदनीति चला कर बल संचय करता रहता है। मूर्ख जनता धर्म की ओट में नचाई जा रही है।

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : कुसुमपुर के सरस्वती मंदिर के एक कुंज का दृश्य है। दो ब्रह्मचारी वहाँ आते हैं और आपस में बातें करते हुए मगध राज्य के पतन पर चिंता व्यक्त करते हैं। एक ब्रह्मचारी कहता है कि मगध को उन्माद हो गया है। वह जनता के अधिकारों को अत्याचारियों के हाथ में सौंपकर निश्चिंत होकर स्वप्न में डूबा है राजा भोगी–विलासी और मूर्ख है। इस पर दूसरा ब्रह्मचारी उपरोक्त पंक्तियाँ कहता है।

व्याख्या : महापद्म का जारज पुत्र नंद अर्थात् नंद, जो महापद्म की वैधानिक संतान नहीं है, बल्कि पत्नी के अतिरिक्त किसी नीच कुल की स्त्री से उत्पन्न संतान है, सदाचारियों के सिर पर तांडव कर रहा है। उन पर अत्याचार कर रहा है क्योंकि नीच कुल के रक्त संस्कार उसके भीतर हैं। अतः वह अमानवीय और कदाचारी है, वह असभ्य और अहंकारी है। जैसे छोटी नदियों, उथली नदियों में थोड़ी ही वर्षा से बाढ़ आ जाती है, उसी तरह यह निम्न कुलीन नंद अपनी कूटनीति एवं शस्त्रों के बल पर सदाचारियों का जीना दुश्वार कर रहा है। वह नृशंस है, क्रूर है। उसका कोई सिद्धांत नहीं है। सम्राट है लेकिन निजी स्वार्थ–पूर्ति और सुखों के लिए वह चालें चलता है।

कभी वह बौद्धों का पक्षधर बन जाता है और कभी वैदिकों का अनुयायी बन जाता है और दोनों को भेदनीति से लड़वाकर अपनी शक्ति बढ़ाता है। मूर्ख जनता धर्म के नाम पर छली जा रही है और नंद की कूटनीतियों को नहीं समझती। बौद्ध और वैदिक कोई भी लड़े मृत्यु जनता की होती है। उसके सुख–साधनों की हानि होती है। नंद धर्म के नाम पर जनता को ठग रहा है।

3. राक्षस

राजकुमारी ! राजनीति महलों में नहीं रहती, इसे हम लोगों के लिए छोड़ देना चाहिए। उद्धत पर्वतेश्वर अपने गर्व का फल भोगे और ब्राह्मण चाणक्य....! परीक्षा देकर ही कोई साम्राज्य नीति समझ लेने का अधिकारी नहीं हो जाता।

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : मगध की राजसभा में नंद राक्षस तथा अन्य सभासदों के साथ बैठा है। चाणक्य वहाँ प्रवेश करके सूचना देता है कि यवनों की सेना ने आक्रमण कर दिया है और वह उत्तरापथ के छोटे–छोटे स्वतंत्र गणराज्यों को रौंदती और विजेता बनती हुई आगे बढ़ रही है। पंचनद के महाराज पर्वतेश्वर अकेले उनका सामना करने के लिए खड़े हैं। तभी सभा में नंद की पुत्री कल्याणी प्रवेश करती है और कहती है कि इस समय अपने शत्रु और घमण्डी पर्वतेश्वर का साथ देने के लिए मैं सेना लेकर जाऊंगी और उस क्षत्रिय को नीचा दिखाऊंगी, साथ ही यवनों को मगध तक आने से रोकूंगी। दिखा दूंगी कि राजकन्या कल्याणी किसी क्षत्राणी से कम नहीं है। राजकुमारी की बात सुनकर सभा में बैठे राक्षस ने उस पर व्यंग्य करते हुए उपरोक्त पंक्तियाँ कहीं।

व्याख्या : राक्षस कहता है राजकुमारी राजनीति महलों में नहीं रहती अर्थात् यह अखाड़े में, पुरुषों के साथ रहने वाली चीज है, महिलाओं को इसकी समझ नहीं होती। इसलिए इसे हम पुरुषों के लिए ही छोड़ दें। पर्वतेश्वर उद्दण्ड और घमण्डी है। अगर वह यवनों से अकेला लड़ने के लिए खड़ा है और अहंकारवश हमसे सहायता की याचना नहीं कर रहा है तो हम क्यों जाएँ। उस अकेले को अगर यवन सेना कुचल देती है तो कुचले। अपनी करनी का फल भुगते और चाणक्य को उससे हमदर्दी है, सहानुभूति है, तो वह भी जाए और अपनी करनी का फल भोगे। चाणक्य की बात या सूचना पर क्या विश्वास करना। यह स्वयं को बलशाली समझता है लेकिन गुरुकुल में जाकर अध्ययन–अध्यापन कर लेने और परीक्षा में पास हो जाने मात्र से ही कोई राजनीति का जानकर नहीं हो सकता।

साम्राज्य नीति मैदान का खेल है, दिमाग का खेल है। पढ़ने–लिखने से ही कोई इसका जानकार नहीं बन जाता। इन पंक्तियों में राक्षस कल्याणी और चाणक्य दोनों पर व्यंग्य करता है।

4. चाणक्य सावधान नन्द! तुम्हारी धर्मान्धता से प्रेरित राजनीति आँधी की तरह चलेगी, उसमें नन्दवंश समूल उखड़ेगा। नियति–सुंदरी के भवों में बल पड़ने लगा है। समय आ गया है कि शूद्र राज–सिंहासन से हटाए जायें और सच्चे क्षत्रिय मूर्धाभिषिक्त हों।

नन्द : यह समझ कर कि ब्राह्मण अवध्य है, तू मुझे भय दिखलाता है। प्रतिहार, इसकी शिखा पकड़कर इसे बाहर करो!

(प्रतिहार उसकी शिखा पकड़ कर घसीटता है, वह निश्शंक और दृढ़ता से कहता है) खींच ले ब्राह्मण की शिखा! शूद्र के अन्न से पले हुए कुत्ते! खींच ले! परन्तु यह शिखा नन्दकुल की काल–सर्पिणी है, वह तब तक न बंधन में होगी जब तक नंद–कुल निःशेष न होगा।

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : मगध की राजसभा में राक्षस चाणक्य की राजनीतिक समझ पर व्यंग्य करता है। नंद के सामने यह रहस्य

भी खुलता है कि चाणक्य चणक का पुत्र है जो विद्रोही था। चंद्रगुप्त आकर सबको शांत करने का प्रयत्न करता है तो नन्द दोनों का अपमान करते हुए उन्हें सभा से बाहर निकालने का आदेश देता है। तब चाणक्य और नंद में यह वार्तालाप होता है।

व्याख्या :

ब्राह्मण चाणक्य शूद्र नंद के द्वारा अपमानित किए जाने पर तिलमिलाकर उसे चेतावनी देते हुए कहता है कि सावधान हो जाओ नंद तुम धर्म के नाम पर अंधी जनता को मूर्ख बना कर धर्म के नाम पर जो राजनीति कर रहे हो वह एक ऐसी आंधी बन जाएगी कि उससे तुम्हारा पूरा नंद वंश उखड़ जाएगा। तुम्हारी चालें तुम्हें ही ले डूबेंगी। एक दिन जनता जागेगी और पलटकर तुम पर वार करेगी। तुम्हारी कुटिल चालें और अत्याचार देखकर विधाता रुष्ट हो रहा है। भाग्य रूपी सुंदरी जो आज तक तुम्हारे साथ यश, कीर्ति, समृद्धि बनकर बैठी है उसकी भवों में भी बल पड़ने लगे हैं। वह चिंता में पड़ गई है। तुम्हारी कुटिलताएँ उसे तुम्हारा विरोध करने के लिए प्रेरित कर रही है। हे शूद्र राजन समय आ गया है जब राजसिंहासनों से कुसंस्कारी शूद्र हटाए जाए और उत्तम क्षत्रियों को सम्राट बनाया जाय क्योंकि वर्ण व्यवस्था के अनुसार शूद्र का कार्य सेवा का है और क्षत्रिय अपने बल पौरुष से राज्य करेंगे।

नंद चाणक्य की बात सुनकर गुस्से से उबल पड़ता है और सेवकों से कहता है कि इस ब्राह्मण की चोटी (शिखा) पकड़कर इसे महल से बाहर कर दो। वह चाणक्य से कहता है कि तू यह समझकर मुझे डरा रहा है कि तू ब्राह्मण है और ब्राह्मण अवध्य होते हैं। उन्हें कोई नहीं मार सकता। मगर ये तेरी गलतफहमी है। मैं तुझे मार सकता हूँ। सेवक चाणक्य की चोटी पकड़कर घसीटता है तब चाणक्य उसे भी धिक्कारते हुए कहता है कि खींच ले ब्राह्मण की शिखा को क्योंकि तुझमें न्याय–अन्याय और अच्छे–बुरे को समझने का विवके नहीं रहा क्योंकि तू शूद्र का अन्न खाकर बड़ा हुआ कुत्ता है। कुत्ता स्वामी के सामने पूंछ हिलाता है तू भी अपने स्वामी का कहना मान। परंतु मेरी शिखा रहेगी जब तक नंद कुल का सर्वनाश नहीं हो जाता। यह मेरी प्रतिज्ञा है। प्रस्तुत अंश में चाणक्य की इस प्रतिज्ञा का साक्षात्कार हो रहा है जिसके अंतर्गत उसने न केवल नंदवंश को निर्मूल किया अपितु तत्कालीन योग्यतम शासक भी प्रदान किया।

5. चाणक्य भिक्षोपजीवी ब्राह्मण! क्या बौद्धों का संग करते–करते तुम्हें अपनी गरिमा का संपूर्ण विस्मरण हो गया। चाटुकारों के सामने हाँ में हाँ मिलाकर, जीवन की कठिनाइयों से बच कर, मुझे भी कुत्ते का पाठ पढ़ाना चाहते हो! भूलो मत, यदि राक्षस देवता हो जाए तो उसका विरोध करने के लिए मुझे ब्राह्मण से दैत्य बनना पड़ेगा।

वररुचि : ब्राह्मण हो भाई! त्याग और क्षमा के प्रमाण–तपोनिधि ब्राह्मण हो!

चाणक्य : त्याग और क्षमा, तप और विद्या, तेज और सम्मान के लिए हैलोहे और सोने के सामने सिर झुकान के लिए हम लोग ब्राह्मण नहीं बने हैं। हमारी दी हुई विभूति से हमीं को अपमानित किया जाए, ऐसा नहीं हो सकता। कात्यायन! अब केवल पाणिनि से काम न चलेगा। अर्थशास्त्र और दण्ड–नीति की आवश्यकता है।

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : मगध के बंदीगृह (जेल) में चाणक्य बंद है वहाँ राक्षस और वररुचि उससे मिलने आते हैं तथा वररुचि चाणक्य से विद्रोह की भावना त्याग देने की बात कहता है तब चाणक्य उसे व्यंग्यपूर्ण कथन से धिक्कारते हैं।

व्याख्या : चाणक्य वररुचि से कहते हैं भिक्षा मांग कर जीविका चलाने वाले ब्राह्मण क्या तुम ब्राह्मणत्व की गरिमा को भूल गए हो? बौद्धों का साथ देते हुए, राक्षस और नंद जैसे चाटुकारी, अत्याचिारयों की हाँ में हाँ मिला रहे हो ताकि

तुम्हारा जीवन सुखी–सम्पन्न हो, कठिनाइयों से बचा रहे? पेट भरने के लिए लात खाकर, अपमानित होकर भी पूंछ हिलाना कुत्ते का कार्य है। तुम ऐसा ही कर रहे हो और मुझे भी कुत्ता बनने का पाठ पढ़ाना चाहते हो। याद रखो अगर राक्षस देवता हो जाएं तो मुझे ब्राह्मण से दैत्य बनना पड़ेगा ताकि मैं उनका विरोध कर सकूँ। वररुचि चाणक्य के धिक्कार का बुरा न मानते हुए उसे कहता है कि तुम तपस्वी ब्राह्मण हो और त्याग तथा क्षमा ही तुम्हारे आभूषण हैं। तब चाणक्य कहता है त्याग, क्षमा, तप और विद्या किसी सम्मानित और तेजस्वी व्यक्तित्व के सामने सिर झुकाने के लिए बने हैं। लोहे की तलवारों और सोने के सिंहासनों के सामने वे झुकते नहीं। हम ब्राह्मण हैं हमारी दी गई शस्त्र और शास्त्र विद्या जैसी अनमोल विभूतियों से ये हमारा ही अपमान करेंगे तो यह सहन नहीं किया जाएगा। चाणक्य वररुचि को कात्यायन कहकर संबोधित करते हुए कहते हैं जब केवल पाणिनि जैसे व्याकरण ग्रंथों से भाषा की शुद्धि–अशुद्धि बताने से काम नहीं चलेगा। अब हम ब्राह्मणों को अपनी और अपनी जन्मभूमि, देशभूमि की रक्षा करने के लिए अर्थशास्त्र और दण्डनीति का भी आश्रयय लेना पड़ेगा तभी इस राक्षस और नंद जैसे अत्याचारियों को सबक मिलेगा। इन पंक्तियों में चाणक्य ने एक प्रकार से ब्राह्मण और उसके कर्त्तव्यों को परिभाषित किया है, जो कुपथगामी राजसत्ता को सुपथ पर लाने का प्रयास न करे और केवल भिक्षा मांगता रहे, ऐसा ब्राह्मण बनना चाणक्य के स्वीकार नहीं।

6. अलका : महाराज! मुझे दण्ड दीजिए, कारागार में भेजिए, नही ंतो मैं मुक्त होने पर भी यही करूँगी। कुलपुत्रों के रक्त से आर्यावर्त की भूमि सिंचेगी। दानवी बन कर जननी जन्मभूमि अपनी सन्तान को खाएगी। महाराज! आर्यावर्त के सब बच्चे आम्भीक–जैसे नहीं होंगे। वे इसकी मान–प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल–तिल कट जाएंगे। स्मरण रहे, यवनों की विजयवाहिनी के आक्रमण को प्रत्यावर्तन बनाने वाले यही भारत–संतान होंगे। तब बचे हुए क्षतांग वीर, गांधार को भारत के द्वार रक्षक को विश्वासघाती के नाम से पुकारेंगे और उसमें नाम दिया जायेगा मेरे पिता का! आह! सुनने के लिए मुझे जीवित न छोड़िये, दण्ड दीजिए मृत्युदण्ड!

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : गांधार नरेश के कक्ष में उसकी पुत्री अलका को लेकर यवन प्रवेश करता है और बताता है कि हम चढ़ाई करने के लिए जो पुल बनवा रहे हैं उसका मानचित्र इन्होंने एक स्त्री से बनवा लिया है। जब मैंने मांगा तो इन्होंने वह मानचित्र एक युवक को दिया और उसे वहाँ से जाने को कह दिया। चूंकि मानचित्र देखकर ये हमारे सारे गोपनीय कार्य व्यापार को जान गई है इसलिए इन्हें (अलका) बंदी बनाना अनिवार्य था। आम्भीक भी देशद्रोहियों के साथ शामिल था महाराज। अलका अपनी पुत्री को छोड़ देने की बात कहते हैं। इस पर अलका ने ये पंक्तियाँ कही।

व्याख्या : अलका कहती है महाराज मुझे दण्ड दीजिए, कारागार में बंदी करवा दीजिए, अन्यथा मै। मुक्त रहकर वही करूंगी जो मैंने आज किया है। मैं अपने राज्य के विरूद्ध चल रहे षड़यंत्रों का पता लगाऊंगी और देशभक्त मित्रों के साथ मिलकर निष्फल करने का प्रयत्न करूंगी इसलिए मुझे मुक्त मत रखिए अन्यथा मैं अपने भाई के (आम्भीक के) षड़यंत्रों और देशद्रोह को चुनौती दूंगी। जब इस धरती की कुछ संतानें दानव बनकर अपने रक्त संबंधों को मिटाने पर तुल जाएंगी तो इसी धरती के कुछ सपूत इन दानवों को मौत के घाट उतार देंगे और धरती उन के रक्त से लाल हो जाएगी, महाराज! इस धरती के सभी लाल आम्भीक जैसे देशद्रोही और और स्वार्थी नहीं हैं। वे अपनी धरती के लिए, अपनी धरती मां की मान–पतिष्ठा और रक्षा के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग कर देंगे। याद रहे महाराज यवनों की विजयी सेना के आक्रमण को निष्फल बनाने वाली भारत की संतानें होंगी जो लड़ते–लड़ते मर जाएंगी। विजयी यवनों के बीच जो घायल क्षत–विक्षत, विकलांग और देशभक्त बचेंगे वे गांधार को जो भारत का

द्वार है, तथा गांधार प्रदेश को विश्वासघाती के नाम से पुकारेंगे। उन विश्वासघातियों में आपका यानि मेरे पिता का भी नाम होगा। (अलका चुनौती देती हुई कराह उठती है) मेरे पिता को लोग विश्वासघाती कहेंगे तो मुझे लज्जा से गड़ जाना होगा पिताजी, इसलिए ऐसा दिन देखने से पहले मैं मर जाना पसंद करूंगी। आप मुझे जीवित न छोड़ें, मृत्युदण्ड दे दें। क्योंकि आप स्वयं देशद्रोहियों का साथ छोड़ेंगे नहीं, अपने पुत्र मोह में आम्भीक के देशद्रोह को भी प्रश्रय देंगे। इसलिए मैं ही अपना जीवन समाप्त करना चाहती हूँ। देशद्रोही की बेटी और बहन कहला कर तो जीवित रहने से मर जाना अच्छा है। अपने लिए मृत्युदण्ड मांगते हुए अलका ने अपने देशद्रोही पिता की प्रतारण इन वाक्यों में की है।

1. दण्ड्यायन :

मेरी आवश्यकतायें परमात्मा की विभूति प्रकृति पूरा करती है। उसके रहते दूसरों का शासन कैसा?

समस्त आलोक, चैतन्य और प्रणशक्ति, प्रभु की दी हुई है। मृत्यु के द्वारा वही इसको लौटा लेता है। जिस वस्तु को मनुष्य दे नहीं सकता उसे ले लेने की स्पर्धा से बढ़ कर दूसरा दम्भ नहीं। मैं फल–मूल खाकर, अंजलि से जलपान कर, तृण शय्या पर आंख बंद किए सोए रहता हूँ। न मुझसे किसी को डर है न मुझको डरने का कारण है। तुम यदि हठात् मुझे ले जाना चाहो तो केवल मेरे शरीर को ले जा सकते हो, मेरी स्वतंत्र आत्मा पर तुम्हारे देवपुत्र का भी अधिकार नहीं हो सकता।

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : सिंधु के तट पर एक तपस्वी दण्ड्यायन का आश्रम है। वहाँ सिकंदर का साथी एनिसाक्रटीज आता है और तपस्वी से कहता है कि जगत् विजेता सिकंदर आपका उपदेश सुनना चहते हैं, चलिए। इस पर दाण्ड्यायन उसे कहते हैं कि सिंकदर अभी झेलम भी पार नहीं कर पाया है और स्वयं को जगत विजेता करने लगा। मैं लोभ, भय या सम्मान के लिए किसी के पास नहीं जाता। तपस्वी के मना करने पर एनिसाक्रटीज उसे दण्ड का भय दिखाता है तब तपस्वी ने उपरोक्त पंक्तियाँ कही हैं।

व्याख्या : एनिसॉक्रटीज दाण्ड्यायन से कहता है कि यदि आप सिकंदर को उपदेश देने नहीं चलेंगे तो वे आपको दण्ड देंगे। इस पर दाण्ड्यायन कहते हैं कि मै। इस धरती पर केवल परमात्मा का शासन मानता हूँ किसी और का नहीं। मेरी सारी आवश्यकताएं यह प्रकृति पूरा करती है। धरती, आकाश, नदी, पर्वत, जड़–चेतन आदि। यह प्रकृति परमात्मा की अनुपम देन है। यह सारा आलोक अर्थात् प्रकाश, चैतन्य अर्थात् विवके और बुद्धि, प्राणशक्ति सब कुछ परमात्मा का दिया हुआ है। उसी ने जीवन दिया है वही ले लेता है। मनुष्य का जीवन और जीवन का समस्त वैभव तथा मृत्यु सब परमात्मा के वश में है, फिर किसी मनुष्य का क्या भय मानना? जो दूसरों को दण्ड देने और मृत्युदण्ड देने की बात करता है वह मनुष्य मूर्ख है, दंभी है और विवेकहीन है। जो वस्तु अर्थात् जीवन वह किसी को दे नहीं सकता, उसे लेने की बात उसका घमंड ही है। मैं तो फल–मूल खाता हूँ जो धरती देती है, अंजलि से पानी पीता हूँ जो नदी देती है और धरती की ही घास–तिनकों की शय्या (बिस्तर) पर सो जाता हूँ। इसलिए मुझे किसी का कोई डर नहीं है और न ही किसी को मुझसे डरना चाहिए। यदि तुम मुझे जबरदस्ती उठाकर ले जाना चाहते हो तो केवल शरीर को ही ले जा सकोगे, मन को नहीं। मेरी स्वतंत्र आत्मा पर किसी और का अधिकार नहीं हो सकता, तुम्हारे देवपुत्र सिकंदर का भी नहीं। मुझसे कोई बलपूर्वक कुछ नहीं करवा सकता। पंचभूतात्मक नश्वर शरीर के स्थान पर शाश्वत आत्मरूप को स्वीकार करने वाले 'दर्शन' का दर्शन दाण्ड्यायन की इन पंक्तियों में किया जा सकता है।

8. चाणक्य : उसकी चिन्ता नहीं। पौधे अंधकार में बढ़ते हैं, और मेरी नीति–लता भी उसी भाँति विपत्ति–तम में

लहलही होगी। हाँ, केवल शौर्य से काम नहीं चलेगा। एक बात समझ लो, चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसे ही हों। बोलो तुम लोग प्रस्तुत हो?

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : झेलम नदी के तट के पास जंगल में चाणक्य, चंद्रगुप्त और अलका बातें कर रहे हैं, तभी वहाँ सिंहरण और गांधार राज पहुँच जाते हैं। सिंहरण कहता है (चाणक्य से) कि विपत्ति के बादल मंडरा रहे हैं, आप कुछ आज्ञा दें। तब चाणक्य ने उपरोक्त पंक्तियाँ कही।

व्याख्या : चाणक्य कहता है विपत्तियों की चिंता मत करो। इन विपत्तियों से ही हमें साहस और उत्साह मिलेगा और हम निरंतर विजय–मार्ग पर आगे बढ़ते जायेंगे। पौधे अंधकार में बढ़ते हैं अर्थात् दिन भर सूर्य की तपन से ऊर्जा इकट्ठी करते हैं और रात में उसी ऊर्जा के सहारे अपना विकास करते हैं। अंधेरा उनके विकास को रोक नहीं पाता जबकि पौधे तो जड़ हैं। उनके पास विवेक और चेतना का अभाव है। फिर हम तो विवेकवान चैतन्य मनुष्य है।, हम भी इन विपत्तियों के अंधेरों में से आगे बढ़ने का मार्ग निकालेंगे। मेरी नीति–लता भी पौधों की तरह विपत्ति के अंधकार में लहलहाएगी अर्थात् इस प्रतिकूल परिस्थिति में ही मैं चाणक्य अपनी नीतियों को नया रंग–रूप देकर उन्हें समृद्ध–विकसित और परिस्थितियों को अनुकूल बनाने योग्य बनाऊंगा। हाँ, यह अवश्य है कि केवल शौर्य से अर्थात् बल और बहादुरी से ही काम नहीं चलेगा, थोड़ी कुटिलता अवश्य करनी होगी। चाल चलनी होगी। यही मेरी नीति है। चाणक्य केवल सिद्धि अर्थात् सफलता देखता है। सफल होने के लिए चाहे जो भी साधन प्रयोग करना पड़े, करता है। साम, दाम, दण्ड, भेद कोई भी नीति प्रयोग करनी पड़े, विजय प्राप्त करें यही हमारा लक्ष्य है। बोलो, क्या आप लोग इसके लिए तैयार हो? कहने का अभिप्राय है कि सत् लक्ष्य की प्राप्ति के लिए असत् लोगों से जब जूझना हो तब असत् साधना भी अपनाने में दोष नहीं है। महाभारत युद्ध में यदि श्रीकृष्ण द्वारा इस नीति को न अपनाया गया होता तब दुर्योधन जैसे अनैतिक व्यक्ति को पराजित करना संभव नहीं था।

9. मालविका : (प्रवेश करके) फूल हंसते हुए आते हैं, फिर मकरंद गिरा कर मुरझा जाते हैं, आँसू से धरणी को भिगो कर चले जाते हैं। एक स्निग्ध समीर का झोंका आता है, निश्वास फेंक कर चला जाता है। क्या पृथ्वी तल रोने ही के लिए है? नहीं सबके लिए एक ही नियत तो नहीं। कोई रोने के लिए है तो कोई हंसने के लिए।

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : मालव में सिंहरण के उद्यान में टहलते हुए, मालविका फूलों के जीवन और मनुष्यों के जीवन पर दार्शनिकता–पूर्ण दृष्टि से विचार करती है।

व्याख्या : सिंहरण के उद्यान में टहलती हुई मालविका ने खिले हुए सुंदर फूलों को देखा और फिर मुरझा कर धरती पर गिरे फूलों को भी देखा तो वह सोचती है कि इनका और मनुष्य का जीवन मिलता–जुलता है। फूल खिलते हैं तो लगता है जैसे हंस रहे हों, अपनी हंसी, सौंदर्य, सुगंध और पराग की समृद्धि लेकर सुखी–समृद्ध मनुष्य की तरह ही भरपूर हँसी हँस रहे हैं। फिर ये अपना पराग मनुष्यों, पक्षियों (भौरों आदि) आदि पर लुटाकर सर्वस्व दान कर मुरझा जाते हैं और ओस कणों के रूप में प्रकृति के आंसुओं को समेटे हुए धरती पर गिर जाते हैं। जहाँ ये गिरते हैं इनके आँसुओं को समेटे हुए धरती नम हो जाती है। वियोग का दुख संसार की नश्वरता को प्रकट कर शांत हो जाता है। ठंडी, सुगंधित हवा का एक झोंका आता है और इन गिरे हुए फूलों को उड़ाकर कुछ दूर ले जाता है, जैसे हवा इन फूलों के दुख पर ठंडी साँस भर रही हो। वह सोचती है क्या धरती सिर्फ रोने के लिए है? नहीं,

क्योंकि यह नियम सभी पर लागू नहीं होता। कुछ फूल टूट कर गिरते हैं और वहीं दूसरे ढेर सारे फूल खिल जाते हैं। एक मनुष्य जाता है तो संसार में दूसरा जन्म ले लेता है। यहाँ कोई हंसता है तो कोई रोता है। कोई जीता है, कोई मरता है, कोई जाता है, कोई आता है। सृष्टि का चक्र निरंतर चलता रहता है।

10. कार्नेलिया : सिंकदर ने भारत से युद्ध किया है और मैंने भारत का अध्ययन किया है। मैं देखती हूँ कि यह युद्ध ग्रीक और भारतीयों के अस्त्र का ही नहीं, इसमें दो बुद्धियाँ भी लड़ रही हैं। यह अरस्तू और चाणक्य की चोट है, सिकन्दर और चन्द्रगुप्त उनके अस्त्र हैं।

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : रावी तट के उत्सव शिविर में कार्नेलिया, चन्द्रगुप्त, फिलिप्स आदि के मध्य बातें होती हैं। सिल्यूकस हार जाता है और विजेता चंद्रगुप्त से अपनी बेटी कार्नेलिया का विवाह करना चाहता है। कार्नेलिया भारत से प्रेम करने लगती है और इस देश का गहन अध्ययन करती है। वह चंद्रगुप्त से उल्लिखित पंक्तियाँ कहती हैं।

व्याख्या : कार्नेलिया कहती है कि मैं भारत को सिकंदर से अधिक जानती–पहचानती हूँ। क्योंकि सिकंदर ने भारत से युद्ध किया है। जबकि मैंने भारत का अध्ययन किया है। युद्ध करने वाला केवल जीतने का इच्छुक होता है, वह जिस देश को, स्थान को जीतना चाहता है उसे लगाव रहित होकर निशाना बनाता है। तोड़ता–लूटता और छीनता है। वह नहीं जानता यह जीत भौतिक है जबकि संस्कृति आत्मा के भीतर बसती है। वह जुड़ने, पढ़ने, देखने और आसक्ति से पता चलती है। मैं भारतीय संस्कृति को जान सकी हूँ, क्योंकि इसके इतिहास और वर्तमान से मैं प्रभावित हूँ। यह युद्ध भारत और ग्रीक के बीच केवल अस्त्रों का युद्ध नहीं था बल्कि दो बुद्धियों का युद्ध था। ये बुद्धिया अरस्तू और चाणक्य की हैं। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को और सिकन्दर ने अरस्तू के सिद्धांतों का अस्त्र धारण किया। चाणक्य कहता है तामस त्याग से सात्विक ग्रहण उत्तम है। इस सात्विक ग्रहण से तामस–त्याग बिना प्रयत्न के ही हो जाता है। अतः चाणक्य की कुटिल नीति चंद्रगुप्त को विजेता बनाती है।

12. चाणक्य यह नहीं मानता कि कुछ असम्भव है। तुम राक्षस से प्रेम करके सुखी हो सकती हो, क्रमशः उस प्रेम का सच्चा विकास हो सकता है और मैं अभ्यास करके तुमसे उदासीन हो सकता हूँ, यही मेरे लिए अच्छा होगा। मानव हृदय में यह भाव–सृष्टि तो हुआ ही करती है। यही हृदय का रहस्य है। तब, हम लोग जिस सृष्टि में स्वतंत्र हों, उसें परवशता क्यों मानें? मैं क्रूर हूँ, केवल वर्तमान के लिए, भविष्य के सुख शांति के लिये, परिणाम के लिए नहीं। श्रेय के लिए, मनुष्य को सब त्याग करना चाहिए, सुवासिनी! जाओ।

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : चाणक्य से उसकी प्रिया सुवासिनी मिलती है। वह उसके साथ जीवन बिताना चाहती है लेकिन चाणक्य कहता है कि तुम राक्षस से विवाह करो इसी में हम दोनों का, मगध का कल्याण होगा। क्योंकि तुम्हारा मुझसे प्रेम बचपन का खेल था। तुमने राक्षस से ही प्रेम की परिभाषा सीखी है।

व्याख्या : चाणक्य सुवासिनी से कहता है कि तुम मुझे नहीं भूल सकती यह कहना गलत है, मैं कुछ भी असंभव नहीं मानता। तुम प्रयत्न करो, धीरे–धीरे सब कुछ सामान्य हो जाएगा। तुम राक्षस से प्रेम करके सुख का अनुभव करने लगोगी और धीरे–धीरे वह प्रेम बढ़ता ही जाएगा और मैं भी प्रयत्न करके तुमको भूलकर तुमसे विरक्त हो सकता हूँ। यही मेरे लिए ठीक होगा। मनुष्य के हृदय में भावनाओं की सृष्टि और परिवर्तित होना तो चलता ही रहता है। भावनाएँ आपना रूप और लक्ष्य बदलती रहती हैं यही तो हृदय का रहस्य है जिसे हृदय के अतिरिक्त कोई नहीं जान पाता। फिर इस संसार में हम स्वतंत्र रहना चाहते हैं तो मन के हाथों परतंत्र क्यों बनें? भावनाओं के बंदी क्यों बनें? हमें भावनाओं को वर्तमान और भविष्य के अनुकूल बनाना होगा। अभी मेरी बातें तुम्हें क्रूरतापूर्ण लग रही होंगी लेकिन मैं भविष्य की सुख–शांति के लिए यह सब कह रहा हूँ। अभी भावुक होकर तुम मेरे यौवन के प्रेम में बंध भी

जाओ तो तुम्हारा परिपक्व अवस्था में राक्षस से हुआ प्रेम तुम्हें सुखी नहीं रहने देगा। इसलिए जाओ, राक्षस से विवाह करके सुखी रहो।

यहाँ द्रष्टव्य है कि अपने प्रतिद्वंद्वी राक्षस के प्रति भी चाणक्य अपनी भावनाओं के अधीन न होकर यथार्थ कल्याण परक दृष्टि रखता है। उसकी क्रूरता वर्तमान की दुर्दशाओं के प्रति उनके विनाश के लिए है इसीलिए वह एक मगध के भावी कल्याण के लिए वह अपने आकर्षण व स्वार्थ से ऊपर उठता है।

9.3.2 पद्य

1. अरुण यह मधुमय देश हमारा।

   जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

   सरस तामरस गर्भ विभा परनाच रही तरुशिखा मनोहर।

   छिटका जीवन हरियाली परमंगल कुंकुम सारा,

   लघु सुरधनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे,

   उड़ते खग जिस ओर मुंह किये समझ नीड़ निज प्यारा।

   बरसाती आंखों के बादल बनते जहाँ भरे करुणा जल।

   लहरें टकराती अनन्त की पाकर जहाँ किनारा।

   हेम कुम्भ से उषा सबेरे भरती दुलकाती सुख मेरे।

   मदिर ऊंघते रहते जब जग कर रजनीभर तारा।

संदर्भ : ये पंक्तियाँ जयशंकर प्रसाद के नाटक चंद्रगुप्त से ली गई हैं।

प्रसंग : उद्‌भाण्ड में सिन्धु नदी के किनारे ग्रीक शिविर के पास वृक्ष के नीचे बैठी हुई कार्नेलिया भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य से अभिभूत होकर यह गीत गाती है।

व्याख्या : प्रसाद जी कहते हैं हमारा देश भारत मधुमय है। मधु से तात्पर्य शहद जैसी मिठास, स्निग्धता और अमृत है। हमारे देश में परम्पराओं की, संबंधों की मिठास है। हमारी संस्कृति अमर है। भोर के समय उदित होते हुए बाल रवि को अरुण कहते हैं वह लाल रंग का होता है, विकासशील होता है। धीरे–धीरे वह बाल अरुण बड़ा और सुनहरा होता जाता है और प्रखर सूर्य में, सोने के गोले में बदल जाता है। सारी धरती इसके प्रकाश से आच्छादित हो जाती है। यह धरती को ऊष्मा, उर्वरता और जीवन शक्ति प्रदान करता है। सूर्य के इन्हीं गुणों की तुलना प्रसाद जी नव स्वतंत्र भारत से करते हैं कि यह अभी–अभी पराधीनता के अंधकार से निकला बाल अरुण है। यह सुंदर, कोमल, विकासशील है। धीरे–धीरे यह भौतिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, सामाजिक विकास करेगा और संसार पर सूर्य की तरह राज्य करेगा। हमारे देश में अनजान लोगों को भी आश्रय देने की सामर्थ्य है। यह सबको अपनाता है। भारत के सौंदर्य का वर्णन करते हुए प्रसाद जी कहते हैं कि तालाबों में रस से भरे कमल खिले हैं। उन कमलों का मध्य भाग (गर्भ क्षेत्र) पराग से भरा और सुंदर, सुगंधित है। तालाब के किनारे खड़े पेड़ों की छाया इन कमलों के मध्य में पड़कर अद्‌भुत सौंदर्य की सृष्टि कर रही है। इन कमलों का गुलाबी रंग और पेड़ों की हरियाली देखकर ऐसा लगता है जैसे हरे–भरे जीवन पर किसी ने मंगल सूचक कुंकुम छिड़क दिया हो। शीतल चंदन सी सुगंधित हवा बह रही है। मोर अपने पंख पसारे नृत्य कर रहे हैं। पक्षी हरियाली के मध्य अपने घोंसलों की ओर मुंह किए उड़ रहे हैं अर्थात् ये पेड़–पौधे, प्रकृति मनुष्य को ही नहीं पक्षियों को भी सुंदर आश्रय प्रदान करती है। भारत की

संस्कृति में एकता, समन्वय, त्याग, बलिदान, करुणा, प्रेम की भावना है। यहाँ बादलों से बरसने वाला जल भी ऐसा लगता है जैसे धरती के प्राणियों की आवश्यकता को समझ कर बादल रूपी आंखें करुणा–रूपी जल बरसा रही हैं। यहाँ सागर की लहरें किनारों से टकरा कर लौटती हैं और मर्यादा का ध्यान रखती हैं। सागर जैसी सर्वशक्तिमान अथाह जल राशि भी मर्यादा भंग नहीं करती फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या है? सूर्योदय के समय का दृश्य इतना मनोरम लगता है कि जैसे उषा (भोर), हेमकुंभ (सोने का घड़ा) लेकर सुख रूपी प्रकाश भरकर ला रही है और धरती पर फैला रही है ताकि मनुष्य–पशु–पक्षी, समस्त चराचर सुखी हों। रात में जब तारे आसमान में जागकर धरती की रखवाली करते प्रतीत होते हैं तब लगता है जैसे वे मदमस्त हैं, ऊंघ रहे हैं, नींद में डूबना चाहते हैं लेकिन रात के अंधकार में अपना उत्तरदायित्व समझकर जाग कर सृष्टि की रखवाली कर रहे हैं।

उल्लिखित पंक्तियाँ भारत के प्रति कवि के गहन प्रेम को दर्शाती हैं। इस प्रेम के वशीभूत होकर कवि ने भारत के प्राकृतिक सौंदर्य को जीवंत बना दिया है।

2. प्रथम यौवन–मदिरा से मत्त, प्रेम करने की थी परवाह,

   और किसको देना हृदय, चीन्हने की न तनिक थी चाह।

   बेच डाला था हृदय, अमोल, आज वह मांग रहा था दाम,

   वेदना मिली तुला पर तोल, उसे लोभी ने ली बेकाम।

   उड़ रही है हृत्पथ में धूल, आ रहे हो तुम बे–परवाह।

   करूं क्या दृग–जल से छिड़काव, बनाऊं मैं यह बिछलन राह।

   सम्हलते धीरे–धीरे चलो, इसी मिस तुमको लगे विलम्ब,

   सफल हो जीवन की सब साथ, मिले आशा को कुछ अवलम्ब।

   विश्व की सुषमाओं का स्रोत, बह चलेगा आंखों की राह,

   और दुर्लभ होगी पहचान, रूप–रत्नाकर भरा अथाह।

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : घायल अलका अपने प्रेमी सिंहरण के पास बंदीगृह में कैद है। दोनों बातें करते हैं। अलका कहती है यदि मैं पर्वतेश्वर से विवाह कर लूँ तो वह तुम्हें मुक्त कर देगा फिर तुम बाहर जाकर देश की आजादी के लिए लड़ना। सिंहरण व्यथित हो जाता है तब अलका गाती है।

व्याख्या : अलका गीत के माध्यम से कहती है कि युवावस्था में मनुष्य की विचित्र दशा होती है। उसका हृदय यौवन के नशे में चूर होता है। जैसे कोई शराबी, शराब पीकर मस्त हो जाता है उसे अच्छे–बुरे की सुध–बुध नहीं रहती। उसी तरह मानव युवावस्था में निश्चिंत, अपने में ही डूबा हुआ रहता है उसे किसी की परवाह, चिंता नहीं रहती। वह प्रेम करना चाहता है, किसी को हृदय देना और बदले में किसी का हृदय लेना चाहता है। लेकिन किसे हृदय देना है या देना चाहिए, जानने–पहचानने की इच्छा उसमें नहीं रहती। यही मेरे साथ हुआ। अलका कहती है कि मैंने बिना सोचे–समझे अपने अनमोल हृदय को बिना दाम के ही बेच दिया लेकिन जिसे हृदय दिया आज वह मुझसे दाम (कीमत) मांग रहा है। कीमत देने के लिए जब हृदय को तोला तो अपार वेदना मिली, उस लोभी प्रिय ने इस वेदना को बिना काम की होने पर भी ले लिया। अब मेरे हृदय के उन रास्तों पर, जहाँ तुम निश्चिंत होकर आ रहे हो, घूम रहे हो, धूल उड़ रही है। यह धूल वियोग की, दुख की है। क्या करूं यह धूल तुम्हें कष्ट न दे इसलिए चाहती हूँ कि आंसुओं का जल छिड़क कर इस धूल भरी राह को फिसलन भरी राह बना दूँ अर्थात् मैं पर्वतेश्वर से

विवाह करूं। वह देशद्रोही है लेकिन मुझ से विवाह कर वह तुम्हें छोड़ देगा तुम मुझसे दूर हो जाओगे। मुझ तक वापस पहुँचने के लए तुम सतर्क होकर, संभल–संभल कर इन कठिन रास्तों पर चलते हुए देशद्रोहियों को मारना और देश को आजाद कराते हुए मुझ तक पहुंच जाना। तुम इन फिसलन भरे रास्तों पर धीरे–धीरे सम्हलकर चलना। मुझ तक आने में देर लगेगी अर्थात् देश को द्रोहियों से मुक्त कराने में देर लगेगी लेकिन कार्य सिद्ध होगा। देश आजाद होगा, तो आशाओं को आधार मिलेगा, जीवन सफल होगा तब हम एक–दूसरे से मिलेंगे। हमारी आंखें एक–दूसरे को देखेंगी। इस समय आंखें में आंसू भरे होंगे जो वियोग के बाद मिलन की प्रसन्नता को दोगुना कर देंगे। आंसू भरी आंखें सुन्दरता के समुद्र की तरह लगेंगी। उनसे बहते हुए आसुओं की धाराए विश्व की सारी सुन्दरता को अपने में समेटे हुए होंगी। आंसुओं से भरी आंखों से जो हम एक–दूसरे को देखेंगे वह पहचान दुर्लभ होगी, पवित्र होगी, विजेता की होगी। देशभक्त और धरती–पुत्र के आत्मसम्मान की होगी।

3. बिखरी किरन अलक व्याकुल हो विरस वदन पर चिंता लेख

   छायापथ में राह देखती गिनती प्रणय–अवधि की रेख।

   प्रियतम के आगमन–पथ में उड़ न रही है कोमल धूल,

   कादम्बिनी उठी यह ढंकने वाली दूर जलधि के कूल।

   समय–विहग के कृष्णपक्ष में रजत चित्र–सी अंकित कौन

   तुम हो तुम्हरि तरल तारिके! बेलो कुछ, बैठो मत मौन?

   मन्दाकिनी समीप भरी फिर प्यासी आंखें क्यों नादान।

   रूप–निशा की ऊषा में फिर कौन सुनेगा तेरा गान।

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : अलका पर्वतेश्वर के महल में है। तारों से भरा नीला आकाश और कृष्ण पक्ष की काली रात्रि में वह सिंहरण को याद करती है उसे लगता है काली रात अपनी चोटी में तारों के फूल टांक रही है। प्रकृति सौंदर्य और प्रिय की स्मृति में वह अपनी मनोव्यथा को गीत का रूप दे देती है।

व्याख्या : अलका गाती है आसमान में चांद की अनुपस्थिति (कृष्ण पक्ष होने के कारण) में वियोगिनी किरणें ऐसी बिखरी हुई हैं जैसे प्रिय के वियोग से व्याकुल युवती के चेहरे पर पलकें बिखर जाती हैं। वियोग की आग में जलकर देह से सारा जीवन और सौंदर्य का रस सूख गया है, देह विरस दिखाई देती है तथा उस पर चिंता की रेखाएं भी उभर आती हैं। वह वियोगिनी इस रात्रि के अंधकार में तारों की छाया में ही प्रिय की राह देखती है और मिलन की अवधि का लेखा–जोखा करती रहती है। जिस राह से प्रिय को आना है उस पर प्रतीज्ञा में डूबी सांसों की कोमल धूल उड़ रही है लेकिन धूल को ढंकने के लिए आंसुओं की धाराएं इस तरह उमड़ रही हैं जैसे किसी सागर की लहरें उसके किनारों को ढंकने के लिए उमड़ी चली जाती है। प्रिया तारों को संबोधित करते हुए कहती है कि समय पक्षी की तरह उड़कर जा रहा है। कृष्ण पक्ष की इस काली रात्रि में चांदी की तरह श्वेत चित्र सी अंकित तुम कौन हो तारिके? तुम सुन्दर, सरल हृदय की स्वामिनी हो, मेरा हृदय पहचानती हो इसलिए कुछ बोलो, चुप मत रहो बताओ मेरा प्रिय कब, किस राह से आकर मिलेगा मुझसे। वह स्वयं को संबोधित करते हुए कहती है कि पास ही जल से भरी मंदाकिनी नदी बह रही है फिर भी तेरी आंखें क्यों प्यासी हैं। तू देशद्रोही (पर्वतेश्वर) के अधीन है अर्थात् यह तेरे रूप यौवन की रात्रि का उदय है। अर्थात् प्रिय से मिलकर ही रूप–यौवन और जीवन सार्थक हो पाता, लेकिन पराए–दुष्ट व्यक्ति के अधीन होने से यह रूप–यौवन भी रात्रि की तरह कालिमा युक्त हो

गया है। लेकिन तू इसी तरह उदास निराश रही और धैर्य खो बैठी तो जब तेरा प्रिय देश को स्वतंत्र कराकर तुझे लेने, तुझसे मिलने आएगा, रूप–यौवन की निशा, उषा यानि भोर में परिवर्तित हो जाएगी तब अपने प्रेम–गीत किस–तरस सुना पाएगी, कौन सुनेगा? यहाँ अलका अपने आपको सांत्वना देती हुई पर्वतेश्वर के अधीन रहकर सिंहरण की प्रतीक्षा करती है।

5. मधुप कब एक कली का है।

पाया जिसमें प्रेम रस सौरभ और सुहाग,
बेसुध हो उस कली से मिलता भर अनुराग,
बिहारी कुंजगली का है!
कुसुम धूल से धूसरित चलता है उस राह,
कांटों में उलझा तदपि रही लगन की चाह,
बावला रंगरली का है।
हो मल्लिका, सरोजनी या यूथी का पुंज
अलि को केवल चाहिये सुखमय क्रीड़–कुंज,
मधुप कब एक कली का है!

संदर्भ : उपरोक्त।

प्रसंग : चंद्रगुप्त अपने प्रकोष्ठ में है। वहाँ मालविका जो उसकी मित्र और प्रिया है, आती है। उसने अपनी गूंथी हुई माला चंद्रगुप्त को पहना दी। तब चंद्रगुप्त ने कहा इन फूलों का रस तो भौरे ले चुके हैं। मालविका कहती है निरीह फूलों पर दोष मत लगाइए सम्राट। उनका काम है सुगंध बिखेरना। यह उनका मुक्तदान है। इस दान को भौरे लें या हवा, उन्हें मतलब नहीं होता। चंद्रगुप्त उससे कुछ गाने के लिए कहता है। वह गाती है।

व्याख्या : भौरे और पुरुष की चचंल प्रकृति पर संकेत करती हुई मालविका गाती है कि भौंरा कब किसी एक कली का होकर रहा है। वह तो चंचल चित्त वाला है कभी इस कली पर, कभी उस कली पर मंडराता है। जिस कली में उसे सुंदर रंग, सुगंध और रस मिल जाए उसी के प्रेम में बेसुध होकर उससे मिलता है। वह तो कुंजगली का बिहारी है यानि नटखट कृष्ण जैसा फूलों की गली में घूमते रहने वाला है। पराग से लिपटा हुआ, कांटों से उलझता रहता है लेकिन फूलों की लगन नहीं छोड़ता। वह तो प्रेम रूपी रंग में रंगा हुआ बावला है। मल्लिका, सरोजनी या यूथी किसी भी फूल का बगीचा हो भौरे को तो केवल ऐसे बाग से मतलब होता है जहाँ वह सुख से प्रेम–क्रीड़ कर सके। पराग का पान कर सके। वह रस पीता है, सुगंध से मदमस्त होता है और दूसरी सुंदर कली की ओर चला जाता है। वह स्वार्थी है। किसी एक कली से बंधकर नहीं रहता।

6 हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती
अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़–प्रतिज्ञ सोच लो,

प्रशस्त पुष्प पंथ है बढ़े चलो बढ़े चलो।

असंख्य कीतिरश्मियां,

विकीर्ण दिव्यदाह–सी।

सपूत मातृभूमि के

रूको न शूर साहसी!

अराति सैन्य सिंधु में सुवाइवाग्नि से जलो,

प्रवीर हो जयी बनो बढ़े चलो बढ़े चलो।

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : यवनों के आक्रमण से भारत को बचाने के लिए अलका यह गीत गाती हुई और आर्य पताका फहराती हुई नागरिकों का उत्साह वर्धन करती है कि वे आएं और भारत को शत्रुओं से बचाने के लिए युद्ध में सम्मिलित हो जाएं।

व्याख्या : अलका कहती है –हे भारतीय नागरिकों हिमालय की ऊंची चोटी से स्वतंत्रता तुम्हें पुकार रही है। तुम प्रबुद्ध हो और बुद्धिमान और विवेकवान हो, तुम्हारा हृदय शुद्ध है उसमें छल–कपट देशद्रोह की गंदगी नहीं है तो इस स्वतंत्रता की पुकार को सुनो। यह स्वतंत्रता स्वयंप्रभा है। यानि अपने ही प्रकाश से प्रकाशित है। इसे पाकर मनुष्य अपने जीवन का निर्माण अपने ही परिश्रम से आत्मसम्मान के साथ कर सकता है। यह समुज्ज्वला है। अर्थात् यह उज्ज्वलता का समूह है, पवित्र है। इसे प्राप्त करके जीवन धन्य हो जाएगा। अतः हे भारतीयो तुम दृढ़ प्रतिज्ञा करके आगे बढ़ो, तुम उन अमर वीरों के पुत्र हो जिनका यश अब तक उज्ज्वल और प्रकाशित है, अपने पूर्वजों के नाम को कलंकित मत करो। स्वतंत्रता प्राप्ति का मार्ग पुण्य मार्ग है यह हमारे सामने फैला है, बढ़ो और बढ़कर शत्रुओं को हराकर स्वतंत्रता प्राप्त कर लो।

हे भारतीयो, तुम्हारे देशभक्त पूर्वजों ने देश के लिए जीवन का उत्सर्ग किया था। उनकी कीर्ति असंख्य किरणों के रूप में फैलकर सूर्य के प्रकाश की तरह आलोक और ऊष्मा प्रदार कर रही है। उन दिव्य आत्माओं के दान को स्मरण करो। तुम मातृभूमि के सपूत हो। शूर, वीर और साहसी हो, रुको मत। आगे बढ़ो। शत्रुओं के सैनिकों का सागर सामने लहरा रहा है अर्थात् असंख्य सैनिक शत्रु खड़े हैं। उनके बीच जाकर उन्हें समाप्त कर दो ठीक वैसे ही जैसे समुद्र में एकत्र हुए कचड़े को बड़वाग्नि यानि समुद्र की आग जला देती है, सफाई कर देती है। उसी प्रकार शत्रुओं के सागर में वाड़वाग्नि बन कर जलो। तुम सदैव से वीर रहे हो, फिर वीरता दिखाओ, विजेता बनो, आगे बढ़ो।

1.4 चरित्र–चित्रण

पात्र बहुल नाटक होने पर भी चन्द्रगुप्त का चरित्र–चित्रण अपने आप में अप्रतिम है। देश और काल की व्यापक पीठिका पर मगध, गान्धार और मालव की घटनाओं के संदर्भ में प्रत्येक पात्र के चरित्र की सूक्ष्मातिसूक्ष्म रेखाओं का अंकन करना प्रसाद की अपूर्व क्षमता का प्रतिपादक है। राष्ट्रीयता का उदात्त आदर्श प्रस्तुत करने के उद्देश्य से नाटककार ने बहुत से पात्रों की योजना की है, फिर भी उन चरित्रों में व्यक्ति वैविध्य सर्वत्र देखने को मिल जाता है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने ठीक ही कहा है 'अपने कर्त्तव्य का निर्वाह, देशभक्ति और प्रणय की मर्यादा की रक्षा सभी पात्रों ने समग्र कथानक में आद्योपान्त किया है। इसमें राष्ट्र–प्रेम और बलिदान का स्वरूप ही उभर कर आता है। किसी भी अच्छे नाटक के लिए यह दोष ही है कि नायिका की स्थिति सुव्यवस्थित न होने पाए, नाटक के

पूरे प्रवाह में प्रमुख पात्रों का संस्थान होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो किसी पात्र की सापेक्षित प्रमुखता में सन्देह हो जाता है।

1.4.1 चन्द्रगुप्त

चन्द्रगुप्त प्रस्तुत नाटक का नायक है। यद्यपि वह चाणक्य द्वारा निर्मित और विकसित किया गया है फिर भी चाणक्य उसका निर्माता होकर नियामक नहीं, सहायक है। चन्द्रगुप्त क्षात्र तेज से सम्वलित, स्वावलम्बी और आत्मसम्मान से युक्त है। 'मुद्राराक्षस' के चन्द्रगुप्त की भांति वह परावलम्बी नहीं है। चाणक्य के नाराज होकर चले जाने, और कन्धे–से–कन्धा भिड़ा कर खड़े होने वाले मित्र सिंहरण के चले जाने पर भी वह वीर–दर्प से युद्ध का सामना करने को सन्नद्ध हो जाता है 'सिंहरण इस प्रतीक्षा में है कि कोई बलाधिकृत जाये तो वे अपना अधिकार सौंप दें। नायक! तुम खड्ग पकड़ सकते हो और उसे हाथ में लिए हुए सत्य से विचलित तो नहीं हो सकते? बोलो! चन्द्रगुप्त के नाम से प्राण दे सकते हो? मैंने प्राण देने वाले वीरों को देखा है। चन्द्रगुप्त भी प्राण देना जानता है, युद्ध करना जानता है, और विश्वास रखो, उसके नाम का जयघोष विजयलक्ष्मी का मंगल–गान है। आज से मैं ही बलाधिकृत हूँ। मैं आज सम्राट नहीं, सैनिक हूँ। चिन्ता क्या, सिंहरण और गुरुदेव न साथ दें, डर क्या सैनिकों! सुन लो! आज से मैं केवल सेनापति हूँ, सम्राट नहीं। जाओ, यह तो मुद्रा और सिंहरण को छुट्टी दो। कह देना कि चन्द्रगुप्त ने कहा है कि तुम दूर खड़े होकर देख लो सिंहरण! मैं कायर नहीं हूँ। जाओ।''

इस कथन में चन्द्रगुप्त का क्षात्रतेज, स्वावलम्बी और आत्म–विश्वासी व्यक्तित्त्व झलकता है। जिस समय आर्यावर्त विदेशियों के आक्रमणों से सन्त्रस्त और विमर्दित हो रहा था तथा आन्तरिक विद्रोह और अव्यवस्थआों से जर्जर हो रहा था, उस समय चाणक्य की प्रेरणा से चन्द्रगुप्त ने जो साहस और पराक्रम दिखाया उससे उसकी देश–भक्ति, निष्ठा और कर्त्तव्य–परायणता का बोध होता है। देश के साथ विश्वासघात करके वह सत्ता नहीं पाना चाहता, इसलिए सिकन्दर की अयाचित सहायता अस्वीकार कर देता है। विदेशियों की रणनीति से परिचित हो जाने के कारण भारतीय रण–नीति में वह परिवर्तन करता है। उसके जीवन का ध्येय है केन्द्र में शक्तिशाली आर्य–राष्ट्र की स्थापना तथा विदेशी यवनों को भारत की सीमा से बाहर खदेड़ना। वह सिंहरण से कहता है ''यवनों को यहाँ से हटाना है और उन्हें जिस प्रकार हो भारतीय सीमा के बाहर करना है। इसलिए शत्रु की नीति से ही युद्ध करना होगा।''

चन्द्रगुप्त के जीवन में कई प्रेमिकाएँ आती हैं। कल्याणी, मालविका और कार्नेलिया तीनों उससे प्रेम करती हैं। उनके प्रेम को प्रसाद ने गोपनीय नहीं रखा है। कल्याणी के मुख से हम सुनते हैं ''कल्याणी ने वरण किया था केवल एक पुरुष को वह था चन्द्रगुप्त।'' इसी प्रकार कार्नेलिया, सिल्यूकस से कहती है ''मुझे भारत की सीमा से दूर ले चलिए, नही ंतो मैं पागल हो जाऊंगी।'' मालविका सोचती है ''जाओ प्रियतम, सुखी जीवन बिताने के लिए और मैं रहती हूँ चिर दुखी जीवन का अन्त करने के लिए।'' चाणक्य की सर्वग्रासी छाया सुकुमार कल्याणी और मधुर मालविका को 'बलि' कर देती है। चन्द्रगुप्त इन कोमल कलिकाओं का प्रतिदान भी नहीं दे पाता। कार्नेलिया का प्रेम वैयक्तिक हो सकता है पर चाणक्य के लिए वह राजनीति का एक अंग है। लगता है कि चाणक्य की अनिच्छा के कारण ही कल्याणी और मालविका का परिणय चन्द्रगुप्त से न हो सका पर राजनीतिक कारणों से ही चाणक्य ने कार्नेलिया का विवाह चन्द्रगुप्त से करा दिया। या तो चन्द्रगुप्त कल्याणी और मालविका के प्रेम को समझ ही न सका था अथवा कूटनीतिक चातुरी के कारण चाणक्य ने उसे समझने ही नहीं दिया।

चन्द्रगुप्त के जीवन में उतार–चढ़ाव या असफलता नहीं है। वह जहाँ कहीं जिस किसी काम से गया, सफल होकर लौटा। इससे कभी–कभी उसके चरित्र में एकरसता–सी लगती है।

1.4.2 चाणक्य

चन्द्रगुप्त नाटक का सबसे तेजस्वी व्यक्तित्व चाणक्य है। वह इतिहास–प्रसिद्ध विद्वान तथा कूटनीतिज्ञ है। चाणक्य का चरित्र प्रसाद की सर्वोत्तम चारित्र्य–सृष्टि है। इतना सशक्त व्यक्तित्त्व, दृढ़ इच्छाशक्ति, अदम्य उत्साह तथा प्राणवत्ता अन्यत्र नहीं मिलती। डॉ0 जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने चाणक्य के व्यक्तित्त्व को शुद्ध ब्राह्मण शक्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण या 'जातिगत मर्यादा का प्रबल समर्थक कह कर उनके व्यक्तित्त्व के व्यापक ओज और तेज को क्षीण सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया है।

निर्भीक, दृढ़–चरित्र तथा कष्ट–सहिष्णु चाणक्य आर्य–साम्राज्य का निर्माणकर्ता है। उसका ब्राह्मणत्व राष्ट्र की शुभ–चिंता में निहित है क्योंकि एक जीव की हत्या से डरने वाली संन्यासिनी बौद्ध संस्कृति देव की रक्षा नहीं कर सकती थी। चाणक्य का सारा प्रयत्न देश के कल्याण के लिए अनेक खण्ड राज्यों को मिटाकर एक लोकप्रिय किन्तु शक्तिशाली केन्द्रीय राज्य–सत्ता की स्थापना रहा है। वह 'ब्राह्मणत्व' का समर्थन वहाँ तक करता है, जहाँ तक वह उनके इस उद्देश्य का प्रतीक बने 'ब्राह्मण' न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है। ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रखने पर भी स्वेच्छा से इन माया–स्तूपों को ठुकरा देता है। प्रकृति के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का दान देता है। इसलिए अपने प्रखर बुद्धिवाद और दूरदर्शिता द्वारा सिकन्दर जैसे आक्रामक के समक्ष, चाणक्य ने देश को एक सूत्र में आबद्ध किया और लोहा लिया। देश के गौरव को बढ़ाया। नन्द की सभा में उसका अपमान तो निमित्त मात्र है। जो लोग चाणक्य के सारे कार्य–कलापों का श्रेय अपमान की प्रतिक्रिया, क्रोधावेग और प्रतिहिन्सा को देते हैं, वे चाणक्य के चरित्र की सूक्ष्म मनोवृत्तियों को नहीं समझ पाते। चाणक्य की विपत्ति–तम में लहलहाने वाली 'नीति–लता' किसी प्रतिक्रिया से उद्‌भूत नहीं है, वह उसकी सहज मेधा का परिणाम है।

चाणक्य की समस्त योजनाएं पूरी होती हैं क्योंकि उसके विचार सुलझे हुए, मेधा अत्यन्त तीक्ष्ण और परिपक्व है। वह लक्ष्य देखता है, साधन नहीं। वह आत्यन्तिक रूप से आत्मविश्वासी और सतर्क है। वह लौह–स्तम्भ की भांति–अप्रणत और अनबूझ पहेली की भांति रहस्यमय है। वह विपक्षियों के लिए यमराज की तरह क्रूर और निर्दयी है। उसके 'शब्दकोष' में 'असम्भव' शब्द का अभाव है। समय पड़ने पर वह कुछ भी कर सकता है दया किसी से न मांगूंगा और अधिकार तथा अवसर मिलने पर किसी पर न करूंगा। क्या कभी नहीं? हाँ, हाँ कभी–किसी पर नहीं। मैं प्रलय के समान अबाध गति और कर्त्तव्य में इन्द्र के वज्र के समान भयानक बनूंगा। निरीह कल्याणी की आत्महत्या को देख कर यह कहना ''चन्द्रगुप्त, तुम आज निष्कण्टक हुए।'' कितनी निर्ममता और क्रूरता है। किन्तु वह जानता है कि 'महत्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है' यही कारण है कि कुसुम की तरह कोमल और संगीत की भांति मधुर, मालविका की बलि कर देने में वह नहीं हिचकिचाता। कर्त्तव्य के पालन में भावावेग को वह स्थान नहीं देता। चन्द्रगुप्त के संवेगों को भी वह चोट पहुँचाता रहता है। कठोर राजनीतिज्ञ होने के कारण वह जिस प्रखर प्रणाली को अपनाता है, उसमें अनेक पुष्प–कलिकाएँ नष्ट हो जाती हैं।

चाणक्य ने चाहे 'दया न करने' की प्रतिज्ञा की हो पर उसके निर्लिप्त, उदार और सहृदय व्यक्तित्व का परिचय कई अवसरों पर मिलता है। अवसर आने पर वह अपने बड़े–से–बड़े शत्रु एवं विद्रोही को पूर्ण सात्विकता और सदाशयता के साथ क्षमा करता है। राक्षस, सिकन्दर, सेल्यूकस और आम्भीक के उदाहरण प्रत्यक्ष हैं, यद्यपि क्षमा और उदारता भी उसकी नीति का एक अंग है। चाणक्य की क्रूरता वर्तमान के लिए है, भविष्य के लिए नहीं। वह अपने प्रबल प्रतिद्वन्द्वी राक्ष की कमजोरियों को, चन्द्रगुप्त की भावुकतापूर्ण प्रवृत्तियों को तथा कार्नेलिया की आन्तरिक इच्छा को अच्छी तरह समझता है और इन कोमल प्रवृत्तियों और रुचियों का प्रयोग अवसर आने पर करता है। उसके भी विजन–बालुका–सिन्धु में एक सुधा की लहर सुवासिनी दौड़ पड़ी थी किन्तु चन्द्रगुप्त को निष्कण्टक

करने के लिए उसका मुंह उसने राक्षस की ओर मोड़ दिया। इसे उसकी उदारता भी कह सकते हैं, कर्त्तव्य और परिस्थितियों की विवशता भी और दूरदर्शिता भी।

चाणक्य के व्यक्तित्व और चरित्र में ऐसा दिव्य–आलोक दिखाई पड़ता है, जिसके प्रखर तेज से चन्द्रगुप्त नाटक के अन्य सभी पात्रों की आंखें झिप जाती हैं। प्रसाद की इस अद्‌भुत चारित्र्य सृष्टि को पाठक भी देखते ही रह जाते हैं। उसकी कर्त्तव्य की कठोरता हमें प्रेरणा देती है तथा नवीन राष्ट्रीय कल्पना का आयाम खोलती है और भाग्यवाद के विपरीत कर्मवाद की ओर प्रेरित करती हैं। हम चाणक्य को आदर देते हैं, उसके व्यक्तित्व को श्रद्धा से नमन करते हैं, पर उससे 'सहानुभूति' नहीं व्यक्त कर सकते, तब भी नहीं जब कि सुवासिनी उसने यह कह कर विरत हो जाती है ''तुम संसार को अपने वश में करने का संकल्प रखते हो, फिर अपने को नहीं। देखो, दर्पण ले कर, तुम्हारी आंखों में यह तुम्हारा कौन–सा नवीन चित्र है।''

अन्त में यह कहना ठीक होगा कि चाणक्य प्रसाद के चारित्र्य सृष्टि की सर्वोत्तम प्रतिकृति है। यह आद्यन्त सच्चे ब्राह्मण की भांति मेघ के समान मुक्त वर्षा सा जीवन दान, सूर्य के समान अबाध आलोक विकीर्ण करना, सागर के समान कामना नदियों को पचाते हुए सीमा के बाहर न जाना करता रहा। चाणक्य का व्यक्तित्व राष्ट्रीय गौरव का केन्द्र बिन्दु प्रतीत होता है।

1.4.3 पर्वतेश्वर

इतिहास–प्रसिद्ध पौरव वीर सिकन्दर के छक्के छुड़ा देने वाला व्यक्तित्त्व है, भारत का इतिहास जिस पर आज भी गर्व करता है, चन्द्रगुप्त नाटक में वही 'पर्वतेश्वर' के रूप में राक्षस की ही भांति प्रसाद की सहानुभूति नहीं प्राप्त कर सका है। नाटक के प्रारम्भ में इतिहास–पुरुष पौरव की एक झलक पाते हैं। हाथियों के प्रत्यावर्तन से हतोत्साहित न होकर झेलम के युद्ध में वह ललकारता है ''उन कायरों को राको! उनसे कह दो कि आज रणभूमि में पर्वतेश्वर, पर्वत के समान अचल है। जय–पराजय की चिंता नहीं। इन्हें बतला देना होगा, कि भारतीय लड़ना जानते हैं। बादलों से पानी बरसने की जगह वज्र बरसें, सारी गज–सेना छिन्न–भिन्न हो जाये, रथी विरथ हों, रक्त के नाले धमनियों से बहें, परंतु एक पग भी पीछ हटना पर्वतेश्वर के लिए असम्भव है। धर्मयुद्ध में प्राण भिक्षा मांगने वाले हम भिखारी नहीं। जाओ, उन भगोड़ों से एक बार जननी के स्तन्य की लज्जा के नाम पर रूकने के लिए कहो। कहो, मरने का क्षण एक ही है।'' किन्तु इसके आगे पर्वतेश्वर का चरित्र पतित हो गया है। वह सिकन्दर से सन्धि करता है। भारतीयों के प्रतिकूल एक हजार अश्वारोही सिकन्दर की सहायता के लिए भेजता है। वह अलका पर आसक्त है किन्तु अलका उसे कायर समझती है ''यदि भूपालों का–सा व्यवहार न मांगकर आप सिकन्दर से द्वन्द्व–युद्ध मांगते तो अलका को विचार करने का अवसर मिलता।'' पराजित हो जाने के कारण उसका आत्म–बल भी क्षीण हो जाता है। जिस कल्याणी से विवाह के प्रस्ताव को दर्पपूर्ण ढंग से उसने ठुकरा दिया था, उसी कल्याणी से मद्यप–सी चेष्टा करता हुआ प्रणय की भिक्षा मांगता है और उससे छेड़–छाड़ करने के कारण हत्या हो जाती है। प्रसाद जी ने यहाँ ऐतिहासिक पौरव का पतन दिखलाया है।

1.4.4 राक्षस

चन्द्रगुप्त में इतिहास–प्रसिद्ध राक्षस का विकृत रूप ही चित्रित है। अमात्य वक्रनास के कुल में जन्मा राक्षस कला–कुशल, वीर, विद्वान तथा कूटनीतिज्ञ है किन्तु चन्द्रगुप्त नाटक में राक्षस सुवासिनी का प्रेमी, आत्मकेन्द्रित, स्वार्थी और विद्वेषी व्यक्ति के रूप में आता है। उसकी दृष्टि में 'मगध से अधिक महत्त्व सुवासिनी का है।'' जाता मगध, कटती प्रजा, लुटते नगर। मैं सुवासिनी के लिए मगध बचाना चाहता था।'' वह राष्ट्र की अपेक्षा वैयक्तिक कारणों को अधिक महत्त्व देता है। वह व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सिल्यूकस से जा मिलता है। वह देश–द्रोह करने के लिए उन्मुख हो जाता है।

प्रसाद जी ने इस कमजोर, चरित्र–भ्रष्ट और बुद्धिहीन राक्षस को जाने क्यों चाणक्य की प्रतिद्वन्द्विता में खड़ा किया है। हर काम चाणक्य के इशारे पर करता है। इतना भोला है कि वह तनिक से बहकावे में अपनी 'मुद्रा' दे देता है। मगध में चाणक्य के कहने से सभी काम करता है, क्योंकि चाणक्य उसे सुवासिनी से मिला देने का वचन देता है। 'मुद्राराक्षस' नाटक का तेजस्वी राक्षस अपने स्वामी तथा मगध के लिए अविचल भक्ति रखने वाला राक्षस यहाँ कठिनाई से पहचाना जाता है। यह राक्षस तो आकण्ठ मदिरा में डूबा हुआ, सुवासिनी का एकान्त प्रेमी है मुद्राराक्षस का कूटनीतिज्ञ राक्षस नहीं। राक्षस को प्रसाद जी (नाटककार) की सहानुभूति नहीं प्राप्त हो सकी है।

1.4.5 अलका

अलका देश–सेवा और कर्त्तव्यनिष्ठा में डूबी हुई गान्धार देश की बालिका है। वह सक्रिय रूप से विदेशी आक्रमणकारियों को बाहर निकालने का प्रयास करती है। उसके व्यक्तित्त्व में विद्रोह है। ''यदि वह बन्दिनी नही बना कर रखी जायेगी तो सारे गान्धार में वह विद्रोह मचा देगी।'' उसे अपने देश से सच्चा प्रेम है। देश के भूगोल से प्रेम है, देश के इतिहास से प्रेम है। वह कहती है– ''मेरा देश है, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदियाँ हैं और मेरे जंगल हैं। इस भूमि में एक–एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक–एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं के बने हैं।''

देशोद्धार के लिए वह हर कष्ट उठाने को तैयार है। विशिष्ट स्थान के मानचित्र के सिलसिले में जब वह न्यायाधिकरण में प्रस्तुत होती है, तब निर्भीकतापूर्ण कहती है– ''महाराज! मुझे दण्ड दीजिये, कारागार में भेजिए, नही तो मैं मुक्त होने पर भी यही करूंगी। कुल पुत्रों के रक्त से आर्यावर्त की भूमि सिंचेगी।... महाराज! आर्यावर्त के सब बच्चे आम्भीक जैसे नहीं होंगे। वे इसकी मान–प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल–तिल कट जायेंगे!..... तब बचे हुए क्षतांग वीर गान्धार को भारत के द्वार–रक्षक को विश्वासघाती के नाम से पुकारेंगे और उसमें नाम लिया जायेगा मेरे पिता का!''

आवश्यकता के अनुरूप वह स्वांग भी रचती है और तलवार भी उठाती है। घायलों की सेवा करती है। वह जंगल–कानन में घूमती है और तक्षशिला के निवासियों को जगाती हुई जगह–जगह भटकती है। देश–निष्ठा के कारण ही वीर सिंहरण का वह चरण करती है। इस तरह वह देश–सेविका चन्द्रगुप्त नाटक का विशिष्ट नारी–पात्र है। उसका सार्वजनिक जीवन, वैयक्तिक चरित्र को उजागर नहीं होने देता। प्रसाद ने अलका का चरित्र–चित्रण करते समय उसे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में लगी हुई निःस्वार्थ सेविकाओं का स्वरूप प्रदान किया है।

1.4.6 सुवासिनी

शकटार की कन्या, मगध के उद्यान का सुकोमल कुसुम सुवासिनी का जीवन परिस्थितियों के झंझावातों में झुलसता रहा। राज्य–कोप के कारण पिता के भू–गर्भ में बन्दी हो जाने पर वह मगध–सम्राट के विलास–कानन की रानी बनती है फिर अभिनयशाला की नर्तकी बन जाती है। उसने जीविका के लिए सभी काम किये। कभी अभिनेत्री बनी, कभी नर्तकी बनी, कभी दासी बनी, पर उसने अपना स्त्रीत्व नहीं बेचा। वह राक्षस की अनुरक्ता है, उससे विवाह करना चाहती है। एक नहीं दो–दो बार उसके विवाह में अवरोध उत्पन्न हुआ।

सुवासिनी का चरित्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दुरूह बना दिया गया है। वह प्रेम करती है राक्षस से, पर गाती है नन्द के लिए। राक्षस की प्रणय–याचना पर वह पिता की आज्ञा के बिना विवाह नहीं करना चाहती। बाल्यकाल में वह चाणक्य से प्रेम करती थी। राक्षस के याद दिलाने पर वह कहती है ''मैं चाणक्य को इधर तो एक प्रकार से विस्मृत कर चुकी थी, तुम सोयी हुई इस भ्रान्ति को न जगाओ।'' किन्तु जब वही चाणक्य उसे बचपन की याद दिलाता है, तब वह कहती है–''यह क्या विष्णुगुप्त, तुम संसार को अपने वश में करने का संकल्प रखते हो?

फिर अपने को नहीं। देखो दर्पण लेकर, तुम्हारी आंखों में यह तुम्हारा कौन–सा चित्र है?'' आगे चलकर वह इन शब्दों को भूल जाती है और चाणक्य के प्रति अपनी प्रणय–लालसा का निवेदन करती है। चाणक्य की शतरंजी चाल में फंसकर कार्नेलिया के यहाँ पहुँच जाती है। यदि चाणक्य स्वयं सुवासिनी को राक्षस के लिए सुरक्षित न छोड़ देता, स्वयं तथा त्याग न करता तो सुवासिनी चाणक्य के प्रति अपना अनुराग न छोड़ पाती। सुवासिनी के हृदय का अन्तर्द्वन्द्व चाणक्य और राक्षस को केन्द्र–बिन्दु बना कर, प्रसाद दिखलाना चाहते थे, पर सुवासिनी परिस्थितियों की विवश कठपुतली मात्र बन कर रह गयी है।

1.4.7 कल्याणी

कल्याणी मगध की राजकुमारी है। वह प्रसाद के नारी पात्रों में सर्वाधिक अभागी और व्यथा सहन करने वाली पात्र है। इसकी घोर वेदना और गहन अन्तर्द्वन्द्व से हमें गहरी सहानुभूति होती है। प्राच्य की राजकुमारी होने के कारण क्षत्रियोचित दर्प के साथ पर्वतेश्वर उससे विवाह करना अस्वीकार कर देता है। उसकी प्रतिक्रिया कल्याणी के कोमल और भावुक हृदय पर पड़ती है। निराशा की वेदना में वह पर्वतेश्वर की प्रतिद्वन्द्विता में खड़ी होती है। गान्धार के कानन में ही वीर–भूमि चन्द्रगुप्त की छवि और पर्वतेश्वर से प्रतिशोध के लक्ष्य निर्धारित किये थे, वे दोनों विफल हो गये। पर्वतेश्वर तो प्रताड़ित हुआ, कल्याणी ने उसकी हत्या कर दी किन्तु चन्द्रगुप्त से उसने कहा– ''मौर्य! कल्याणी ने वरण किया था केवल एक पुरुष को, वह था चन्द्रगुप्त। परन्तु तुम मेरे पिता के विरोधी हुए। अब मेरे लिए कुछ भी अवशिष्ट न रहा।'' कल्याणी अपनी गहन वेदना को अन्तस्थल में दबाए रही। उसके देखते–देखते मगध–साम्राज्य छिन गया। पिता की हत्या हो गई, जीवन में कुछ भी शेष न रहा। मगध के राज–सौध उसी तरह खड़े रहे, गंगा से शोण उसी तरह स्नेह से मिलती रही, नगर का कोलाहल पूर्ववत् रहा। पर कल्याणी का संसार कुछ और हो गया। वृषल नन्द की राजकुमारी के साथ मौखिक सहानुभूति प्रकट करने वाला कोई नहीं रहा। कोई भी नहीं बल्कि उसका आराध्य चन्द्रगुप्त भी नहीं।

निर्दोष मणि की भांति वह संसार में आयी और लुप्त हो गयी। अपने जीवन का 'अन्त' उसे स्वयं कर लिया! उसकी मृत्यु पर चाणक्य का यह कथन ''चन्द्रगुप्त, तुम आज निष्कण्ठक हुए'' क्रूरता और निर्ममता की पराकाष्ठा है। ऐसा लगता है कि मानों उसकी लाश को किसी ने पैरों से ठोकर लगा दी है। प्रसाद जैसे रोमांटिक दृष्टि वाले नाटककार ने कल्याणी के जीवन और मरण का चित्रण अत्यंत निष्ठुरता के साथ किया है।

1.4.8 मालविका

मालविका सिन्धु देश की राजकुमारी है। स्वर्गिक कुसुम–सी मालविका का उत्सर्ग अनौपचारिक प्रेम का आदर्श है। वह जीवन भर चन्द्रगुप्त से प्रेम करती रही, उसी के लिए उत्सर्ग हो गई पर उसने चन्द्रगुप्त को अपने मन के झुकाव का आभास भी न दिया। अवसर आने पर उसका सदुपयोग नहीं किया। चन्द्रगुप्त की शैय्या पर बैठने मात्र से उसमें जो मादकता जाग्रत होती है, वह कितनी सहज, मनोवैज्ञानिक और मादक है। एक बार सिर्फ एक बार जब चन्द्रगुप्त ने संगीत की मधुर तान सुनाने का आग्रह किया तो मालविका ने यह कह कर टाल दिया – ''युद्धकाल है, देश में रण–चर्चा छिड़ी है, आजकल मालव में कोई गाता–बजाता नहीं।'' चन्द्रगुप्त ने एक बार फिर संकेत किया और उससे आत्मीयता के व्यवहार का आग्रह किया– ''मेरा कोई अन्तरंग नहीं, तुम भी मुझे सम्राट कहकर पुकारती हो।'' अभागिन मालविका ने इस अवसर का भी लाभ नहीं उठाया। देश के प्रति, आराध्य के प्रति मंगल–कामना में ही डूबी रही। कर्त्तव्य और प्रणय के अन्तर्द्वन्द्व में कर्त्तव्य जीत गया, वह उत्सर्ग हो गयी। प्रसाद ने मालविका के कोमल नारीत्व के स्पन्दन को महत्व न देकर सामान्य रूप में उसका चित्रण किया है। डॉ0 जगन्नाथ शर्मा ने ठीक ही लिखा है– ''विशाल जन–समूह में एक हल्की–सी सुगन्ध धारा बन कर आती है और झुटपुटा–सा प्रभाव छोड़कर विलीन हो जाती है।''

1.5 आलोचना

1.5.1 कथानक

चंद्रगुप्त का कथानक विस्तृत होने के कारण सुसम्बद्ध नहीं हो पाया है। इसलिए इसकी कथा बिखरी हुई लगती है। एक ओर गान्धार और उसके पार्श्ववर्ती प्रदेशों में घटने वाली घटनाएँ आम्भीक का षड़यंत्र, सिकन्दर का आक्रमण, पर्वतेश्वर का विरोध आदि एक कथावस्तु के अंतर्गत है। मगध के नन्दवंश के उन्मूलन की कथा, पहली कथा से प्रायः असम्बद्ध है, वह अलग कथानक है। तीसरी घटनाएँ मालव की है। इन तीनों स्थानों में परिव्याप्त घटनाओं और संघर्षों को किसी एक केन्द्रीय संघर्ष में अन्तर्भुक्त नहीं किया जा सका। यद्यपि प्रसाद ने मगध, मालवा और गान्धार में घटित घटनाओं को चाणक्य और चन्द्रगुप्त के व्यक्तियों द्वारा एकसूत्रता प्रदान करने का प्रयत्न किया है किन्तु यह एकसूत्रता औपन्यासिक अधिक लगती है नाटकीय कम।

डॉ0 भगवती प्रसाद शुक्ल कहते हैं नाटकीय तत्त्वों, घटनाओं और क्रिया–व्यापारों की अन्विति न मिल पाने के कारण चन्द्रगुप्त के अनेक स्थलों में कथा की गति में भारी अवरोध उत्पन्न हो गया है। प्रथम अंक की व्यापक घटनाएँ और क्रियाएँ दूसरे अंक के व्यापारों से पूर्णतया सम्बद्ध नहीं की जा सकी हैं। दूसरे अंक के विदेशी आक्रमण की कोई नाटकीय प्रतिक्रिया तीसरे अंक में नहीं हो पाती। तीसरा अंक अपने आप में गतिशील और पूर्ण है, किन्तु जहाँ तक चौथे अंक से सम्बन्ध की बात है वह गतिशून्य है। तीसरे अंक में दूसरी कथा समाप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में चौथा अंक अनपेक्षित और व्यर्थ प्रतीत होता है। वस्तु–संगठन की इन त्रुटियों के अतिरिक्त कलावधि का दोष भी नाट्यकला की दृष्टि से इस नाटक में है। सिकन्दर का भारत आक्रमण, नन्द कुल का उन्मूलन और सेल्यूकस की पराजय में 25 वर्ष का समय व्यतीत हुआ।

इन शिथिलताओं के बावजूद यह स्मरणीय तथ्य है कि चन्द्रगुप्त राष्ट्रीय भूमिका के व्यापक संदर्भ, विस्तृत देश की तत्कालीन घटनाओं और विशिष्ट परिस्थितियों में निर्मित नाटक है। प्रसाद ने इस नाटक की कथा–वस्तु में सर्म्पूा भारतीय राष्ट्रीय जीवन को चित्रित करना चाहा है। इसीलिए विस्तार भार से वह बोझिल हो गया है, किन्तु इस नाटक द्वारा प्रसाद ने जातीयता, प्रान्तीयता तथा वैयक्तिक भेदों को मिटाकर व्यापक राष्ट्रीयता का आह्वान किया है। जिसके लिए यह विस्तार आवश्यक हो गया है। यद्यपि अनेक पात्र ऐसे हैं जो कथा के विकास में बाधा पैदा करते हैं, किन्तु राष्ट्रीय गौरव की दृष्टि से वे कम महत्वपूर्ण नहीं है। अलका के देश–सेविका–रूप को अधिक उभारा गया है, जिससे कृत्रिमता आ गयी है। कार्नेलिया की सृष्टि ऐतिहासिक है, किन्तु कथा की गति में वह अनेक स्थलों पर अनावश्यक गतिरोध पैदा करती है। मालविका का बलिदान और कल्याणी की निरीह आत्माहुति का राष्ट्र–सेवा देश–प्रेम के लिए महत्त्व है पर कथा की गति के लिए उसका मूल्य शून्य है। चाणक्य और सुवासिनी की प्रेम–कथा भी अनावश्यक है जो वस्तु–योजना में बिल्कुल सहायक नहीं है। फिर भी 'चन्द्रगुप्त' एक सोद्देश्य और महत्वपूर्ण नाटक है जो नाट्य साहित्य में अपनी विशेषताओं के कारण पठनीय है और स्मरणीय भी। हिमाद्र तुंग श्रृंग से.... इस गीत द्वारा तत्कालीन भारत में स्वतंत्रता का जो आह्वान किया गया है वह भी विलक्षण है।

1.5.2 अभिनेयता

चन्द्रगुप्त नाटक का वस्तु–शिल्प विस्तारभार से बोझिल है अतः इसकी अभिनेयता पर प्रश्न चिह्न लगते रहे हैं। इसकी कालावधि पच्चीस वर्षों की है। रंगमंच में काम करने वाले कार्नेलिया, कल्याणी, मालविका, सुवासिनी, अलका, चन्द्रगुप्त, राक्षस आदि 25 वर्ष के बाद भी युवा माने जाते हैं। प्रारम्भ में आने वाले पात्रों चन्द्रगुप्त, कार्नेलिया तथा राक्षस–सुवासिनी के विवाह, नाटक के अन्त में होने से वृद्ध–वृद्धाओं का विवाह और प्रणय–प्रदर्शन हो जाता है। यद्यपि डॉ0 जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने इस सम्बन्ध में कहा है– ''नाटककार के रचाना–कौशल की शक्ति से अतीत को भी प्रत्यक्ष होते हुए देखकर सामाजिक यदि इतना साधारणीकरण की परवशता में नहीं आ सकता तब तो सादा

रंगमंच और उस पर होने वाले सहस्र व्यापार भले ही नाटक, संकलन–त्रय के सिद्धांतों के अनुसार ही क्यों न लिखा गया हो उसे एक बाल–क्रीड़ा ही मालूम पड़ेंगे क्योंकि उसके लिए नकल और अभिनय ही हो रहा है, इस बात को भूल जाना उतना ही दुष्कर है जितना इतिहास की घटनाओं की काल–तालिका को। नाटक में प्रदर्शित एक धारावाही घटनावली की योजना सुसंगत रूप में जहाँ तक चली है उसे तीन–चार घण्टों में प्रत्यक्ष देख लेने पर ऐतिहासिक दूर का ध्यान आ ही नहीं सकता। काव्य–रसानुभूति ऐसे ही अवसरों पर सहृदय और असहृदय का भेद कर देती है और रूक्ष, लौकिक बुद्धिग्राह्यता को वह इस प्रकार तिरोहित कर देती है कि सामाजिक आनन्द–विस्मृत हो उठता है। यदि यह स्थिति नहीं उत्पन्न हो पाती तो चाहे नाटक हो अथवा काव्य, हमें बिल्कुल प्रसन्न नहीं कर सकता।'' किन्तु वहाँ यह विस्मृत कर दिया गया है कि नाटक का सम्बन्ध केवल दर्शकों से नहीं है, अभिनेताओं से भी है यदि अभिनेता में पच्चीस वर्ष के काल को कौशलपूर्वक न दिखाया जायेगा तो दर्शकों में रसोद्रेक कैसे होगा? दूसरी बात यह है कि ऐतिहासिक घटनाओं को देखने वाला दर्शक यह कैसे भूल सकता है कि वह इतिहास की विगत घटना को देख रहा है। हाँ, रसोद्रेक में वह उन घटनाओं की प्रत्यक्ष अनुभूति कर सकता है किन्तु तीन–चार घण्टों के अन्तराल में वह पचीस–पचीस वर्षों के अन्तर को अवश्य समझ लेगा।

चन्द्रगुप्त में पाँच अंक हैं। प्रथम और द्वितीय अंक में ग्यारह–ग्यारह दृश्य हैं। तृतीय में नौ तथा चतुर्थ में सोलह दृश्य हैं। उत्तरोत्तर अंकों के दृश्यों में कमी होनी चाहिए, न कि वृद्धि। यही कारण है कि नाटक के चतुर्थ अंक का अतिशय विस्तार हो गया है और बहुत सा अंश अनावश्यक हो गया है। अंकों के आरोह–अवरोह तथा विभाजन में प्रसाद की कला विशेष रूप से निखरी हुई है। वहाँ तक कि किस अंक को कहाँ से प्रारम्भ करने पर ध्वनि, गति तथा प्रभाव उत्पन्न होगा का विचार भी उन्होंने किया है।

चरित्र–शिल्प की दृष्टि से यह नाटक सफल है। पात्रों का वैयक्तिक चरित्र, मनोवैज्ञानिक उतार–चढ़ाव तथा द्वन्द्व–चित्रण ऐतिहासिक सन्दर्भ में बड़े ही सटीक ढंग से किया गया है। जीवनानुभूतियों की सुक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्या इसमें है। पात्रों का स्तर भारतीय गरिमा से मण्डित है। सभी पात्रों में जीवन्तता है– कृत्रिमतर का आरोप उनमें नहीं है। कहीं भी नाटककार ने पात्रों पर अपने व्यक्तित्त्व का आरोपण नहीं किया है। चरित्रों की जीवन्तता, राष्ट्रीयता और काव्यात्मक दार्शनिकता प्रसा के चरित्र–चित्रण की विशिष्ट प्रकृति है। प्रसाद जी ने अपने चरित्रों को वीरोदात्त, वीरललित आदि के बंधे–बंधाये आदर्शों के सांचे में नहीं डाला।

प्रस्तुत नाटक में प्रसाद जी ने अपनी ऐतिहाकि शोध–बुद्धि का परिचय दिया है। संपूर्ण नाटक में उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि चन्द्रगुप्त, वृषल मौर्य, क्षत्रिय है। भूमिका में विस्तृत शोध करने के बाद भी प्रसाद जी ने नाटक में यथावसर इस बात का उल्लेख किया है।

पर्वतेश्वर – हाँ तो इस मगध–विद्रोह का केन्द्र कौन होगा? नन्द के विरूद्ध कौन खड़ा होता है।

चाणक्य – मौर्य सेनानी का पुत्र वीर चन्द्रगुप्त जो मरे साथ यहाँ आया है।

पर्वतेश्वर – पिप्पली–कानन के मौर्य भी तो वैसे ही वृषल हैं, उनको राज्य सिंहासन दीजिएगा।

चाणक्य – आर्य क्रियाओं का लोप हो जाने से इन लोगों को वृषलत्व मिला, वस्तुतः ये क्षत्रिय हैं। बौद्धों के प्रभाव में आने से इनके श्रौत–संस्कार छूट गये हैं अवश्य, परन्तु इनके क्षत्रिय होने में कोई सन्देह नहीं।''

एक दूसरे स्थान पर चाणक्य व्यंग्य के साथ पर्वतेश्र से पूछता है ''वृषल चन्द्रगुप्त क्षत्रिय है या नहीं, अथवा उसे मूर्धाभिषिक्त करने में ब्राह्मण से भूल हुई?''

इन स्थलों से प्रसाद को ऐतिहासिक तथ्यों की खोज का परिचय मिलता है किन्तु नाटकीय शिल्प में बाधा पड़ती है।

चन्द्रगुप्त नाटक के कथानक संगठन और चरित्र–विकास के शिल्प में प्रसाद जी विशाख के 'मुद्राराक्षस' और द्विजेन्द्रलाल राय के बंगला नाटक 'चन्द्रगुप्त' से प्रभावित हैं। अपनी प्रतिमा और कल्पना के वर्चस्व से उन्होंने इस नाटक में निजता ला दी है। रोमांटिक दृष्टि के कारण नाटक में काव्यात्मक दार्शनिकता आ गई है। कथानक का संघर्ष और पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व पाश्चात्य नाट्य शिल्प के नाट्य की प्रेरणा है। उन सबको प्रसाद ने अपनी प्रतिभा के निजत्व से अलंकृत किया है। डॉ0 जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने चन्द्रगुप्त नाटक में कार्य की अवस्थाओं, अर्थ–प्रकृतियों और सन्धियों के समावेश का विस्तार से विवेचन किया है। किन्तु इस नाटक को संस्कृत की इन परम्पराओं पर पूर्णतया आधारित बताना उचित नहीं प्रतीत होता।

चन्द्रगुप्त नाटक की अभिनेयता की सफलता पर प्रश्नचिह्न लगाया जाता है। घटना विस्तार, दृश्यों की बहुलता, लम्बे–लम्बे दार्शनिक संवाद, काव्यात्मक संवाद, भाषा की क्लिष्टता पर संदेह प्रकट किया जाता है। हिन्दी में एक तो उपयुक्त रंगमंच नहीं है, दूसरे कुशल अभिनेताओं का अभाव है। कुछ सुधार के साथ चन्द्रगुप्त को अभिनेय बनाया जा सकता है किन्तु प्रश्न यह है कि इस नाटक के रंगमंचोपयुक्त होने पर भी देश के अनेक विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों या रवीन्द्र–भवनों या नाट्य–गृहों में इसका प्रदर्शन सफलतापूर्वक किया गया है। अपने औदात्य के कारण इसे हिन्दी का बेजोड़ ऐतिहासिक और राष्ट्रीय नाटक माना गया है। घटिया दर्जे के नाटक भी रंगमंच में सफल हो जाते हैं, तो क्या उन्हें नाटकों का आदर्श मान लेना चाहिए? अगर रंगमंच और नाटक की श्रेष्ठता का अनिवार्य सम्बन्ध है तो चन्द्रगुप्त के श्रेष्ठ नाटक होने के कारण इसे मंचोपयुक्त भी मानना पड़ेगा। हाँ रंगमंच के स्तर को सधारना होगा। दर्शकों की रुचि को बदलना होगा। उदात्त नाटकों के दर्शकों और नौटंकी के दर्शकों में अंतर करना ही होगा।

1.5.3 गीत–योजना

प्रसाद के अन्य नाटकों की भांति चन्द्रगुप्त में भी गीत–योजना है। इसमें कुल मिलाकर तेरह गीत हैं। इन्हें तीन वर्गों में बांटा जा सकता है– 1. समवेत गीत 2. नेपथ्य गीत 3. व्यक्तिगत गीत।

समवेत गीत में बड़ा सार्थक बिम्ब है। अलका का, नागरिकों के साथ यह गान 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' अपने ओजस्वी स्वरों द्वारा उत्साह तथा जागरण का वातावरण निर्मित करता है। नेपथ्य–गीत एक है, वह साधारण है विवरणात्मक है। यह नेपथ्य–गीत किसी भी प्रयोजन की सिद्धि नहीं करता। व्यक्तिगत गीत भी तीन प्रकार के हैं– राष्ट्रीय, सांस्कृतिक गीत, नर्तकियों के गीत और प्रेयसियों के गीत। कार्नेलिया का गीत राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक है। सुवासिनी के गीत नर्तकियों के गीत हैं तीनों गीतों में उद्दीपन तत्त्व है। मालविका के दो गीतों में भी उद्दीपन है। प्रेयसियों के गीतों में कल्याणी और मालविका के गीत हैं, जिनमें व्यथा है।

प्रसाद के इन नाट्य गीतों में काव्यात्मक सौष्ठव की उत्कृष्टता है। नाट्य व्यापार की योजना की पूर्ति में भी ये गीत सहायक हैं। समय और परिस्थिति के अनुरोध को मानकर चलने वाले गीत हैं। कथा–प्रवाह की गत्यात्मकता में ये गीत बाधा नहीं उत्पन्न करते। चन्द्रगुप्त के गीतों की यही विशेषता है कि वे दर्शक या पाठक को कथा–प्रवाह की अक्षुण्णता के साथ गहरी तल्लीनता में डुबाये रखने की सामर्थ्य वाले गीत हैं। अधिकांश आलोचकों ने प्रसाद के गीतों में दुरूहता अस्पष्टता और दार्शनिकता का आरोप लगाया है। जैसा कि डॉ0 दशरथ ओझा ने लिखा है– ''प्रसाद के गीत विषय प्रधान नहीं, विषयी प्रधान हैं। अतःकवि की नई कल्पना, नवीन उद्भावना , चिन्तन की नवीन वैज्ञानिक पद्धति और सान्द्र अनुभूति के कारण भी ये गीत दुरूह और अस्पष्ट प्रतीत होते हैं। प्रसाद के गीतों में दुरूहता केवल शैली की नवीनता के ही कारण नहीं है, विचारों की सूक्ष्मता भी उनमें ऐसी है कि सहसा बुद्धि जिन्हें पकड़ नहीं पाती।'' किन्तु यह कथन चन्द्रगुप्त नाटक के लिए लागू नहीं होता। इसके अधिकांश गीत राष्ट्रीय–सांस्कृतिक हैं। इस नाटक के गीतों द्वारा एक ओर तो कथा–प्रवाह की गत्यात्मकता में जीवन्तता आई है तथा दूसरी ओर चरित्र–विश्लेषण होता गया है।

1.5.4 नाटक में ऐतिहासिक एवं कल्पना का समन्वय

चन्द्रगुप्त ऐतिहासिक नाटक है जिसका ऐतिहासिक वृत्त मौर्यकाल पर आधारित है। प्रसाद ने इतिहास की सामग्री का अनुसंधान करके ही तत्कालीन घटनाओं का अपने नाटकों में समावेश किया है। मौर्यकाल की सामग्री बिखरी हुई एवं प्रक्षिप्त है ऐसा माना जाता है। ऐसी स्थिति में इस काल की सामग्री को आधार बनाकर नाटक की रचना करते हुए प्रसाद का उत्तरदायित्व बड़ जाता है। प्रसाद भारतीय इतिहास का प्रामाणिक रूप ही नाटकों में अंकित करते हैं। प्रसाद से पूर्व किसी ने इतिहास को रचनात्मक रूप देते हुए नाटक की रचना करना है यह बात गंभीरता से नहीं सोची। प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त में कल्पना का प्रयोग वहीं तक किया है जहाँ तक वह नाटकीयता के लिए उपयोगी है ऐसी कल्पना जो ऐतिहासिक संदर्भों से कटी हुई न हो। जहाँ कहीं कल्पना का अतिरेक है वहाँ पात्रों के चरित्र को सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करना ही अभीष्ट रहा है। इतिहास के पात्रों को मनोविज्ञान की दृष्टि से परखने का कार्य और प्रयास इसी युग में हुआ। प्रसाद की दृष्टि दीर्घकाल का सूक्ष्म अन्वेषण करने में सक्षम थी। वे समन्वयात्मक ऐतिहासिक दृष्टि रखते हुए भारत की भव्य झांकी नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहते थे।

चन्द्रगुप्त नाटक में चाणक्य के रूप में भारत के बौद्धिक एवं राजनैतिक उत्कर्ष को दिखाना उनका लक्ष्य था तो चन्द्रगुप्त, सिंहरण, अलका, कार्नेलिया आदि के माध्यम से देशभक्ति, त्याग, बलिदान की भावना, भारतीय संस्कृति के गौरवशाली और मर्यादित स्वरूप को दिखाना भी उनका अभीष्ट था। भारतीय संस्कृति परिवेश में प्रेम की मर्यादा, सीमाएँ और स्वरूप को भी उन्होंने चाणक्य तथा अन्य स्त्री व पुरुष पात्रों के माध्यम से दिखाया है। इसमें काल्पनिकता का समन्वय है जो इतना सूक्ष्म है कि दिखाई नहीं देता। चन्द्रगुप्त में ऐतिहासिकता पर कल्पना का प्राधान्य नहीं है। यही कारण है कि इस नाटक की ऐतिहासिकता पर शिथिलता हावी नहीं होती। चन्द्रगुप्त नाटक में ऐतिहासिक परिदृश्य में अंतर्राष्ट्रीय मेल–जोल दिखाकर मानवता का पथ प्रशस्त किया गया है। यह कारण ऐतिहासिक समस्याओं को दिखाकर वर्तमान और भविष्य के लिए समाधान प्रस्तुत करता है। राष्ट्रीयता, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता के स्थापन का संदेश देता है। युद्ध और शांति के संघर्ष को दिखाकर शांति की स्थापना के लिए प्रेरित करता है। यह भारतीय धर्म एवं संस्कृति का गौरव माना जाता है। राष्ट्रीय एवं प्रेम–गीतों की योजना में कल्पना का समन्वय अद्‌भुत है जो सहज लगता है। इतिहास के तथ्यों की सामग्री लेकर प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त को सशक्त रूपाकार प्रदान किया है। इस नाटक की ऐतिहासिक कथावस्तु को सरस और आकर्षक, रोचक और पठनीय, उद्देश्यपूर्ण बनाने में वे सफल रहे हैं। यह श्रेष्ठ नाटक है जिसने अन्य नाटककारों को ऐतिहासिक नाटक लिखने की प्रेरणा दी। आधुनिक यांत्रिक युग में जबकि नई पीढ़ी अति व्यस्त तथा अतीत के सुनहरे पृष्ठों से अनजान है, प्रसाद जी का बड़ा उपकार है कि उन्होंने ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से नई पीढ़ी को उससे परिचित होने का अवसर दिया।

1.5.5 संवाद योजना

कथोपकथन नाटक का प्रमुख उपजीव्य है। कथोपकथन (संवाद) द्वारा पात्रों के मनोभावों और क्रियाओं की अभिव्यक्ति होती है। चन्द्रगुप्त के पात्रों के कथोपकथन में उनके अन्तःस्थल की गहन अभिव्यक्ति है। चन्द्रगुप्त में परिस्थितियों की विभिन्नता और मानसिक स्थितियों की विविधता के कारण कथोपकथन की शैली को अनेक रंग–रूप मिले हैं।

चन्द्रगुप्त नाटक में भावों के अनुकूल भाषा और संवादों का गठन है। प्रसाद के नाटकों में सबसे अधिक बुद्धिजीवी पात्र चाणक्य है पर जब वह राजनीतिक विचारणा में कुछ कहता है तो संवाद गंभीर तथा रूखे होते हैं। जब भावुकता की बात करता है तब कथन में संवेगात्मकता आ जाती है, भाषा की कोमलता अभिषिक्त कर देती है किन्तु क्रोध के अवसर पर उसके शब्दों से चिंगारियाँ फूटती हैं। उदाहरणों से यह बात अधिक स्पष्ट होगी।

राजनीतिक स्थिति की व्याख्या करते हुए चाणक्य, सिंहरण से कहते हैं– ''तुम मालव हो ओर वह मागध,

यही तुम्हारे मान का अवसान है न? परन्तु आत्म–सम्मान इतने ही से संतुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे तभी वह मिलेगा।'' यही चाणक्य कितनी संवेदना और भावुकता से भर कर कोमल शब्दों में सुवासिनी से कहते हैं –''सुवासिनी! वह स्वप्न टूट गया, इस विजन बालुका–सिंधु में एक सुधा की लहर दौड़ पड़ी थी, किन्तु तुम्हारे एक भ्रु–भंग ने उसे लौटा दिया। मैं कंगाल हूँ।''

नन्द की राज–सभा में अपमानित चाणक्य का संवाद देखिए– ''खींच ले ब्राह्मण की शिखा! शूद्र के अन्न से पले हुए कुत्ते! खींच ले। परन्तु यह शिखा नन्दकुल की कालसर्पिणी है, वह तब तक बन्धन में न होगी जब तक नन्दकुल निःशेष न होगा।''

चन्द्रगुप्त के संवादों में व्यंग्य–योजना अच्छी है। हृदय की खीझ और मानसिक आक्रोश को तीव्र बनाने के लिए व्यंग्य का पैना अस्त्र चन्द्रगुप्त ने अमोघ रूप से छोड़ा है। आम्भीक के पूछने पर कि तुम्हारी बातचीत में कुछ रहस्य है, सिंहरण उत्तर देता है।

''हाँ, हाँ रहस्य है! यवन आक्रमणकारियों के पुष्कल स्वर्ण से पुलकित होकर, आर्यावर्त को सुख–रजनी की शांति–निद्रा में, उत्तरापथ की अर्गला खोल देने का रहस्य है। क्यों राजकुमार! सम्भवतः तक्षशिलाधीश वाल्हीक तक इसी रहस्य का उद्‌घाटन करने गये थे।''

चमत्कार लाने के लिए प्रसाद ने चन्द्रगुप्त में ऐसे कथोपकथनों की योजना की है जिसमें पहले के प्रसंग के कुछ शब्दों को दोहराते हुए दूसरा पात्र सम्मुख आ जाता है; जैसे–

सिंहरण –उत्तरापथ के खण्ड राज्य–द्वेष से जर्जर है। शीघ्र ही भयानक विस्फोट होगा।

आम्भीक – (सहसा प्रवेश) ''कैसा विस्फोट? तुम कौन हो?'' ऐसे अनेक स्थल हैं।

कार्नेलिया– परन्तु वैसा न हुआ। सम्राट ने फिलिप्स को यहाँ का शासक नियुक्त कर दिया है।

फिलिप्स – तो बुरा क्या है कुमारी! सिल्यूकस के क्षत्रपन होने पर भी कार्नेलिया यहाँ की शासक हो सकती है। फिलिप्स अनुचर होगा।

ऐसे स्थलों पर 'रस' के अनुकूल संवाद–योजना नहीं निखर सकी। इनमें चमत्कार ही प्रधान रूप है। अन्यथा चन्द्रगुप्त में सर्वत्र पदावली रस के अनुकूल है।

चन्द्रगुप्त के कथोपकथन में 'एकरसता' का दोष लगाया जाता है। भाषा टकसाली है और सभी पात्र एक ही प्रकार की भाषा बोलते हैं। इस प्रश्न का सम्बन्ध प्रसाद के सभी नाटकों के कथोपकथनों से है, जिसका उत्तर प्रसाद जी ने स्वयं दिया था कि वे पात्रों के अनुसार भाषा बदलने के पक्षपाती नहीं थे। विभिन्न भागों में पात्रों गान्धार, मगध, मालव की भाषा को अलग–अलग लिखने या राजा, रानी, भृत्य, विद्वान आदि की भाषा को अलग–अलग प्रयोग करने से नाटक 'भाषाओं' के प्रयोग का अजायब–घर हो जायेगा।

1.5.6 चन्द्रगुप्त नाटक में अंतर्द्वंद्व योजना

चन्द्रगुप्त नाटक में अंतर्द्वन्द्व को दर्शाने वाले अनेक दृश्य हैं जो स्वागत कथन के रूप में प्रकट होते हैं। वे सूक्ष्म तथा गूढ़ मनोदशाओं का चित्रण करने के, अभिव्यंजना करने के लिए स्वगत कथन का उपयोग करते हैं। यद्यपि प्रसाद जी स्वगत–कथन के विरोधी थे किन्तु चन्द्रगुप्त में अनेक स्थलों पर स्वगत–भाषण के प्रयोग हैं। प्रगाढ़ वैयक्तिक संवेदनाओं को स्वगतोक्ति में कहना अस्वाभाविक नहीं लगता। तृतीय अंक के प्रथम दृश्य के प्रारम्भ में राक्षस का 'स्वागत' उसकी वैयक्तिक संवेदना की अभिव्यक्ति करता है। मगध में आने पर शैशव की स्मृतियों में विभोर चाणक्य का स्वगत भी भावाकुल संवेदना की अभिव्यक्ति करता है– ''मैं अविश्वास, कूट–चक्र और छलनाओं

का कंकाल, कठोरताओं का केन्द्र! आह! तो इस विश्व में मेरा कोई सहृदय नहीं है, मेरा सकंल्प, अब मेरा आत्माभिमान ही मेरा मित्र है और थी एक क्षीण रेखा, वह जीवन–पट से धुल चली है। धुल जाने दूँ? सुवासिनी....न न न, वह कोई नहीं? मैं अपनी प्रतिज्ञा पर आसक्त हूँ।''...आदि।

जो स्वगत दृश्य के मध्य में या घटनाओं के संदर्भ में आये हैं, वे कथावस्तु के अनिवार्य अंग नहीं बन पाये हैं। चन्द्रगुप्त के प्रथम अंक में सिंहरण का स्वगत 'एक अग्निय...मयूर–से नायेंगे।' अस्वाभाविक लगता है।

1.5.7 राष्ट्रीय चेतना

चन्द्रगुप्त राष्ट्रीय चेतना का ऊर्जस्वित नाटक है। इसमें अपने युग की समूची राष्ट्रीयता को ऐतिहासिक संदर्भ में देखा गया है। चन्द्रगुप्त का प्रकाशन–काल सन् 1951 है। जब राष्ट्रीय आन्दोलन में गांधी जी के अस्त्रसत्य और अहिंसा या सत्याग्रह का प्रयोग कसौटी पर था, उग्र पंथी दलों ने हथियार उठाने का आग्रह करना प्रारम्भ कर दिया था। विदेशियों की भेद–नीति प्रखरता के साथ चल रही थी। पंजाब, बंगाल, बिहार, आसाम आदि को वे शेष भारत से अलग–थलग कर देना चाहते थे। जातिगत, वर्गगत भेद भी उभरे जा रहे थे। महात्मा गांधी तथा अन्य नेता समग्र राष्ट्रीयता की भावना को उजागर करने में लगे हुए हैं। ऐसे अवसर पर प्रसाद ने तक्षशिला में चाणक्य के द्वारा यह कहलाया– ''मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगो तभी वह आत्म–सम्मान मिलेगा।''

सिंहरण ने उसी एकता की भावना को इन शब्दों में व्यक्त किया है– ''परन्तु मेरा देश मालव ही नहीं, गान्धार भी है। यही क्यों, समग्र आर्यावर्त है।'' अलका ने भी गान्धार को विस्मरण कर कहा था– ''मैं भी आर्यावर्त की बालिका हूँ।'' सच बात यह है कि अलका का निर्माण प्रसाद ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाली देश–सेविकाओं को दृष्टि में रखकर ही किया है। उन दिनों अच्छे–अच्छे घरों की महिलाएँ, कल्याएँ, तिरंगा झण्डा ले कर गली–गली जाती और देश–सेवा का अलख जगाती थीं। उन दिनों इस गीत के भावों की अनुगूंज सर्वत्र सुनने को मिलती थी–

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती।

जिस प्रकार चन्द्रगुप्त के समय में पर्वतेश्वर का विरोध और नन्द कर रहे थे और वह बात नहीं समझ रहे थे कि पंचनद की रक्षा न होगी तो मगध, मालवा और गान्धार कोई न बचेगा, उसी प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलनों के दिनों में बहुत से वर्ग के लोग अंग्रेजों का समर्थन कर रहे थे। फूट और आन्तरिक विद्रोह के कारण विदेशी शासकों को देश से हटाया नहीं जा सका था। इतिहास ने चाणक्य और चन्द्रगुप्त के माध्यम से देश को एक सूत्र में बांध दिया। गांधी जी भी इसी प्रयास में रत थे। देश के कोने–कोने से आन्तरिक विग्रह को समाप्त करने की वाणी फूट रही थी। प्रसाद जी ने इस नाटक के माध्यम से देश–प्रेम और राष्ट्रीयता की प्रेरणा दी।

चन्द्रगुप्त नाटक में भारत की अगाध महिमा और गरिमा वर्णित है। कार्नेलिया के मुंह से भारत से जन्म–भूमि के समान स्नेह होता जाता है, सुन कर प्रसन्नता होती है। 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' यह बिम्बप्रधान राष्ट्रगीत कार्नेलिया के द्वारा वर्णित है। प्रसाद ने विदेशियों के मुंह से भारत की महिमा का वर्णन कराया है। सिल्कूकस और सिकन्दर भी यहाँ की आध्यात्मिकता की प्रशंसा करते हैं। चन्द्रगुप्त और सिंहरण सिकन्दर को घायल करके छोड़ देते हैं। इससे भारत की राष्ट्रीयता का व्यक्तित्त्व उभरता है। अन्य देश के लोग भी भारत पर गौरव करते हैं। राष्ट्र–प्रेम की यह भावना कितनी प्रेरक है– ''मेरा देश है, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदियाँ है और मेरे जंगल हैं।

इस भूमि के एक–एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक–एक क्षुद्र उन्हीं परमाणुओं के बने हैं।''

चन्द्रगुप्त नाटक राष्ट्रप्रेम और भारत की गरिमा का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

1.5.8 राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना

ऐतिहासिक, पौराणिक और काल्पनिक कथानकों का चयन करके भी इस युग के नाटककारों ने राष्ट्रीयता तथा युगीन चेतना का समावेश किया। विस्मृति के खण्डहरों में छिपे हमारे जर्जर ऐतिहासिक और सांस्कृतिक आलोक–खण्डों का पुनर्निर्माण वर्तमान के संदर्भ में इन नाटककारों ने किया। युगों से विदेशियों के आक्रमण इस देश में होते रहे हैं। शक, हूण, मुसलमान जातियों ने इस देश में आक्रमण किया। अंग्रेजों ने इस पर बहुत समय तक छल–बल से शासन किया। प्रसाद–युग के नाटककारों को विदेशियों का शासन बराबर क्षुब्ध करता रहा। विदेशी राजनीतिक प्रभुत्व से आतंकित भारतीय हृदय को शक्ति और अनुराग का अवलम्ब देकर, आश्वस्त किया। आत्मबल का विश्वास दिलाया। विदेशियों के आक्रमण का प्रतिरोध करने वाले चन्द्रगुप्त तथा स्कन्दगुप्त का चरित्र प्रस्तुत करके प्रसाद ने अखण्ड राष्ट्रीयता का स्वर ऊंचा किया। विजय–मद से चूर, पशु–बल से गर्वित तथा उद्धत विदेशियों की चुनौती को प्रसाद के इन नाटकों द्वारा स्वीकार किया गया।

सिंहरण ने भारत की भौगोलिक एकता पर बल दिया है क्योंकि इस देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही रहा है कि समग्र शक्तियों ने एक हो कर कभी विदेशियों का सामना नहीं किया– ''मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा।'' इसीलिए आगे चलकर सिंहरण कहता है– ''मेरा देश मालव ही नहीं, गांधार भी है समग्र आर्यावर्त है।'' चाणक्य की प्रेरणा, चन्द्रगुप्त की वीरता और सिंहरण तथा अलका की निष्ठा के कारण सारा आर्यावर्त एक हो गया। क्षुद्रक, मालव, पंचनद, यौधेय गणराज्य एक हो गए। प्रसाद–युग के सभी नाटककारों ने देश की एकता और राष्ट्रय चेतना का प्रयास किया।

प्रसाद–युग की समूची चारित्र्य सृष्टि में सांस्कृतिकता है अन्तर्संघर्ष और बाह्य संघर्ष का चित्रण है। संघर्ष के इन्हीं दोनों स्तरों के मध्य उनके पात्रों की जीवन–सरिता बहती है। पात्र–सृष्टि का विकास इसी संघर्ष के घात–प्रतिघात से होता है। यह संघर्ष इस युग में निम्नलिखित रूपों में चित्रित है –

1. सात्विक और राजसिक पात्रों के साथ तामसिक व्यक्तित्त्व रखने वाले पात्रों का संघर्ष है।
2. एक संस्कृति, राज्य, जाति अथवा धर्म का दूसरी संस्कृति, राष्ट्र, राज्य अथवा धर्म के साथ संघर्ष इस प्रसंग में एक पात्र किसी विशिष्ट संस्कृति, धर्म, राज्य या जाति का प्रतिनिधि बन कर आया है, तो दूसरा पात्र किसी अन्य संस्कृति, राष्ट्र, राज्य या धर्म का प्रतिनिधि बन कर। सिकन्दर का आक्रमण विदेशी एवं भारतीय संस्कृति के टकराव एवं नई स्थापना को दर्शाता है।
3. अन्तर्संघर्ष इस संघर्ष का स्वरूप अधिकांश पात्रों में देश–प्रेम, कर्त्तव्य–निष्ठा और वैयक्तिक प्रणव के मध्यम संघर्ष दिखलाने की प्रवृत्ति में है।
4. गृहकलह इस संदर्भ में देश में व्याप्त, भौगोलिक सीमाओं, सत्तालिप्सा तथा पारस्परिक कलह को आधार बनाया गया है।

इस नाटक में प्रसाद के चन्द्रगुप्त, चाणक्य, सिंहरण, कार्नेलिया, कमला, अलका, कल्याणी आदि सात्विक तथा राजसी प्रवृत्ति के पात्र हैं।

प्रसाद के नाटकों में नियति, दार्शनिकता, कर्मयोग का समावेश इस बात का द्योतक है कि प्रसाद में भारतीय संस्कृति के प्रति गहन आस्था है। उनके प्रायः सभी नाटक भारतीय संस्कृति के गहरे रंग में डुबे हुए हैं,

लेकिन वे किसी भी अर्थ में पुनरुत्थानवादी नहीं हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर भारतीय संस्कृति के चित्रों को खूब उभारकर चित्रित किया है, किन्तु ह्रासोन्मुखी संस्कृति का चित्रण भी उन्होंने किया है। उनके ऐतिहासिक–सांस्कृतिक चित्रों में वर्तमान और भविष्य के लिए जीवन्त संदेश भरे पड़े हैं। देशभक्ति और राष्ट्रीयता का समावेश उनकी सांस्कृतिक निष्ठा का परिणाम है। प्रसाद–युग के नाटकों में ऐतिहासिकता, राष्ट्रीयता और भारतीयता का समावेश सांस्कृतिक चेतना का ही परिणाम है।

प्रसाद की सांस्कृतिक चेतना परम्परागत मानों को स्वीकार करती हुई जो आधुनिकता से सम्पृक्त है। इस सांस्कृतिक चेतना और जीवन–दर्शन का मूलाधार मानवतावादी है। वह मानवतावाद भौतिकवादी जीवन–दर्शन और अध्यात्म के समन्वय से बना है। इनमें विवेकानन्द, रवीन्द्र और गांधी की अनुभूति, निष्ठा और आस्था का समन्वय है। प्रसाद–युग ने इसी सांस्कृतिक चेतना को अपने नाटकों में उतारा है।

1.5.9 भाषा शैली

चन्द्रगुप्त नाटक की भाषा में प्रसाद जी भाषा का प्रयोग भावों के अनुसार करते हैं, पात्रों के अनुसार नहीं। चन्द्रगुप्त की भाषा में वैविध्य है। वह भावों के अनुसार बदलती है, पात्रों में भी भावगत अंतर होने से भाषा बदल जाती है। चाणक्य की भाषा और मालविका की भाषा में अंतर है किन्तु पात्रों की भाषा में एकरसता है। यानी चाणक्य एक ही तरह की भाषा आदि से अन्त तक बोलता है। चन्द्रगुप्त भी एक ही तरह की भाषा बोलता है। भाषा की एकरूपता पूरे नाटक में एकरसता ला देती है। प्रसाद जी अलंकृत एवं काव्यमयी भाषा का प्रयोग करते हैं। भाषा में तत्सम शब्दावली का अधिक्य होते हुए भी वह सहज पात्रानुकूल एवं प्रवाहमयी लगती है। अवसर के अनुसार छोटे या बड़े वाक्य, मुहावरे, ओज एवं दीप्ति वाक्यों से झलकती है। चन्द्रगुप्त नाटक में देशी, विदेशी पात्रों का समन्वय होने के कारण भाषा वैविध्य उसे आकर्षक बनाता है। प्रसाद जी की भाषा सहज, सरल, सरस, प्रवाहमयी, रंगमंच के उपयुक्त है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. वररुचि कौन था?
2. चाणक्य का परिचय दीजिए?
3. नंद कौन था?
4. चन्द्रगुप्त कौन था?
5. सिकन्दर कौन था?

1.6 सारांश

चन्द्रगुप्त प्रसाद का ऐतिहासिक नाटक है। यह 1931 में प्रकाशित हुआ। ऐतिहासिक अनुसंधान से प्राप्त सामग्री का प्रयोग कर प्रसाद ने इस ऐतिहासिक तथा काव्यात्मक नाटक की रचना की है। ऐतिहासिक घटनाओं के व्यापक संदर्भ में राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत इस नाटक की रचना प्रसाद की नाट्य कला की क्षमता तथा उनके कवित्व का महत्त्वपूर्ण आयाम है। नाटक की विस्तृत भूमिका, बड़ी घटनावली तथा दीर्घ अवधि तक निर्वाह ऐसे नाटकीय तत्त्व थे जो बहुत समय तक आलोचकों के लिए चर्चा का विषय बने रहे। किन्तु अब पक्ष–विपक्ष और आरोप–प्रत्यारोप का समय समाप्त हो चुका है। चन्द्रगुप्त की आलोचना में ठहराव आ गया है, इसलिए तटस्थ दृष्टि से इस नाटक पर विचार किया जा सकता है।

चार अंकों के इस नाटक के प्रथम अंक का प्रारंभ तक्षशिला के गुरूकुल से होता है। जहाँ नाटक का सबसे प्रभावशाली पात्र चाणक्य अपनी गुरु–दक्षिणा के स्थान पर अर्थशास्त्र का अध्यापन कार्य कर रहा है। मगध का

चन्द्रगुप्त और मालव–राजकुमार सिंहरण उसके शिष्य हैं। तक्षशिला के राजकुमार आम्भीक से विवार हो जाने के कारण गुरु के आदेश से दोनों इस स्थान का परित्याग कर देते हैं। आम्भीक, पर्वतेश्वर से विरोध हो जाने के कारण, यवनों का साथ देने का निश्चय करता है।

मगध की राजधानी कुसुमपुर में नन्द भोग विलास में डूबा हुआ है। सुवासिनी की ओर वह आकृष्ट है। मगध में प्रजा पर अत्याचार हो रहे हैं तथा जन–समुदाय त्रस्त और दुखी है। चाणक्य मगध लौट कर यह सब देखता है। अत्याचार की भट्ठी में उसका और शकटार का परिवार झोंक दिया गया है। उसके पिता को निर्वासन का दण्ड मिल चुका है और शकटार के कुल को अन्धकूप में डाल दिया गया है। उसकी कन्या सुवासिनी को राज–दरबार में नर्तकी का काम करना पड़ता है। मगध की राजकुमारी कल्याणी भी ब्रह्मचारियों के मुंह से नन्द के अत्याचार सुन कर दुखी होती है। मगध की राजसभा में पर्वतेश्वर के प्राच्य देश की राजकुमारी कल्याणी से विवाह न करने के कारण क्रोध और क्षोभ का वातावरण छाया हुआ है। तक्षशिला से लौटे स्नातकों की स्पष्ट बातों तथा चाणक्य को चणक–पुत्र ब्राह्मण जान कर नन्द क्षुब्ध होता है। चर से यवनों के युद्ध की सूचना मिलती है। कल्याणी इस युद्ध में सम्मिलित होना चाहती है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों पर्वतेश्वर को सहायता देने के पक्ष में हैं, पर नन्द अपमानित होने के कारण उनकी बात नहीं मानता। उन्हें अपमानित कर निर्वासित कर देता है। चाणक्य प्रतिज्ञा करता है कि जब तक नन्द–वंश का समूल नाश नहीं कर लूंगा, शिखा नहीं बांधूंगा। चाणक्य को बन्दी बना लिया जाता है।

तक्षशिला में युवराज आम्भीक पर्वतेश्वर से प्रतिशोध लेने के लिए यवनों की सहायता करते हैं, यहाँ तक कि उद्‌भाण्ड में सिंधु पर बनते सेतु का स्वयं निरीक्षण कर रहे हैं। अलका की सहायता से सिंहरण उस सेतु के मानचित्र को ले कर मालविका के साथ मालव को प्रस्थान करता है। अलका आम्भीक का यवनों का साथ देने पर विरोध करती है और पिता से आज्ञा पाकर गान्धार में विद्रोह कराने के लिए निकल पड़ती है।

मगध में चाणक्य, चंद्रगुप्त की सहायता से बन्दीगृह के बाहर आता है। वह पर्वतेश्वर से मगध के विरूद्ध सैनिक सहातयता के लिए अनुरोध करता है। चाणक्य और पर्वतेश्वर में इस प्रश्न पर मतभेद हो जाता है। चाणक्य यहाँ से भी निष्कासित होता है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य वन–पथ में सेल्यूकस के संपर्क में आते हैं। प्रथम अंक के अंतिम दृश्य में दाण्डयायन के आश्रम में सिकन्दर का चन्द्रगुप्त से परिचय होता है और वह चन्द्रगुप्त को भारत का सम्राट होने का आर्शीवाद देते हैं।

चन्द्रगुप्त नाटक के दूसरे अंक का प्रारम्भ 'कार्नेलिया' से होता है। चन्द्रगुप्त फिलिप्स के आक्रमण से कार्नेलिया के सतीत्व की रक्षा करता है तथा प्रथम दृश्य में ही सिकन्दर के सामने चन्द्रगुप्त उसके सैनिकों को घायल करता हुआ निकल जाता है तथा यवन–रणनीति से वह परिचित हो जाता है। पर्वतेश्वर और सिकन्दर के युद्ध में कल्याणी के कहने पर चन्द्रगुप्त मगध की सेना की टुकड़ी का नेतृत्व करता है। चाणक्य की नीति–कुशलता के कारण अलका और सिंहरण को बन्दीगृह में भी सब समाचार मिलते रहते हैं। चन्द्रगुप्त शूद्रक और मालवों की सम्मिलित सेना का सेनापति नियुक्त होता है। चाणक्य की दूरदर्शिता से प्रभावित होकर राक्षस, मगध की सेना के साथ विपाशा–तट की रक्षा करता है। कल्याणी भी रुक जाती है। सिकन्दर मानव–दुर्ग पर आक्रमण करता है। अलका और मालविका दुर्ग के भीतर हैं। चन्द्रगुप्त नदी–तट से यवन–सेना के पृष्ठ भाग पर आक्रमण करने वाला है। अलका तीर–धनुष ले कर यवर सैनिकों को दुर्ग में उतरने से रोकती है। सिकन्दर दुर्ग के भीतर प्रवेश कर पाता है। सिंहरण के आक्रमण से वह आहत हो जाता है। चन्द्रगुप्त सेल्येकस को सुरक्षित निकल जाने के लिए मार्ग दे कर कृतज्ञता के बोध से उऋण हो जाता है।

प्रस्तुत नाटक का तीसरा अंक विपाशा–तट के सैन्य शिविर से आरंभ होता है। जहाँ राक्षस, चाणक्य के

जाल में फंसा हुआ, टहल रहा है। अलका सिंहरण के ब्याह में सिकन्दर भी स्वेच्छा से सम्मिलित होता है। वृद्ध गान्धार नरेश भी संयोग से भटकता हुआ उसमें सम्मिलित होता है।

चाणक्य की आज्ञा पाकर मगध की राजकुमारी कल्याणी कुसुमपुर लौट जाती है। चाणक्य, सुवासिनी से मिलाने का प्रलोभन दे कर राक्षस से उसकी 'मुद्रा' प्राप्त कर लेता है, जिसका उपयोग वह समय आने पर मगध में विद्रोह कराने के लिए करता है। सिकन्दर के भारत से चले जाने के बाद चाणक्य, मगध में नन्दवंश को नष्ट करने में लग जाता है। चन्द्रगुप्त उत्तरापथ की स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए वहीं रूका रहता है। राक्षस मगध उस समय पहुंचता है, जब नन्द सुवासिनी के साथ बलात्कार करने का प्रयास करता है। चन्द्रगुप्त के माता–पिता बन्दी हैं। नन्द की नृशंसता से नागरिकों में सर्वत्र रोष और असंतोष फैला हुआ है। चाणक्य मालविका को नर्तकी के रूप में नन्द की रंग–शाला में भेजता है और उससे कहता है कि यह पत्र और अंगूठी उसे राक्षस और सुवासिनी के विवाह के एक घण्टे पूर्व दे दे। पत्र पाकर नन्द क्रुद्ध होता है और उसको बंदी बनाने का आदेश देता है। चाणक्य नन्द के शत्रु शकटार से जो भूमि–सन्धि तोड़ कर प्रकट होता है मैत्री करता है। चन्द्रगुप्तभी फिलिप्स को द्वन्द्व–युद्ध में मार कर सार्थवाह के रूप में सैनिकों के साथ मगध पहुंचता है। इसी समय सभी बन्दी मौर्य, मालविका, शकटार, वररुचि, चन्द्रगुप्त की माता गुफा द्वार से बाहर पहुंचते हैं। चाणक्य की योजनानुसार पर्वतेश्वर चुने हुए अश्वारोहियों के साथ नगर द्वार पर आक्रमण करने के लिए प्रस्तुत है। विद्रोहियों और क्षुब्ध नागरिकों का नेतृत्व चन्द्रगुप्त करता है। राक्षस और सुवासिनी को अन्धकूप में डालने की आज्ञा से विद्रोह भड़क उठता है। उत्तेजित नागरिक न्याय की मांग करते हैं। क्षुब्ध जन–समूह को देखकर नन्द विद्रोहियों को बंदी बनाने का आदेश देता है, पर वह प्रजा की इच्छा से राज्य–संचालन करने के लिए विवश हो जाता है। इसी समय चन्द्रगुप्त वहाँ पहुँच जाता है। चाणक्य नन्द के प्रतिकूल सभी अभियोगों को प्रस्तुत करता है, तभी शकटार उसका वध कर देता है। चन्द्रगुप्त को सभी लोग मगध का सम्राट स्वीकार करते हैं।

चौथे अंक में चाणक्य का ध्यान चन्द्रगुप्त के राज्य को निष्कण्टक करने की ओर आकृष्ट होता है। इस अंक के प्रथम दृश्य में कल्याणी पर्वतेश्वर का वध करती है और सब ओर से निराश तथा दुखी हो कर आत्महत्या कर लेती है। कल्याणी की मृत्यु से नागरिकों में असंतोष पैदा होता है। चाणक्य विजयोत्सव रोक देता है। मतभेद होने पर चन्द्रगुप्त के अनुकूल छोड़ कर वह सीमा–प्रान्त की ओर चला जाता है। वहाँ की स्थिति को चन्द्रगुप्त के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता है। अलका की देश–सेवा और निष्ठा का स्मरण दिला कर चाणक्य, आम्भीक को चन्द्रगुप्त के अनुकूल बना लेता है। सुवासिनी को ग्रीक–शिविर में भेज कर कार्नेलिया के हृदय में चन्द्रगुप्त के प्रति प्रेम उद्दीप्त करता है तथा राक्षस को अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न करता है। युद्ध में सिल्यूकस चाणक्य की रणनीति के कारण ही बन्दी होता है। कार्नेलिया से चन्द्रगुप्त का परिणय हो जाने से दो देशों में मैत्री हो जाती है। चाणक्य, राक्षस को मंत्रिपद पर नियुक्त कर स्वयं संन्यास ग्रहण कर लेता है।

1.7 मुख्य शब्दावली

शल्य – कांटा

नृशंस – क्रूर

उद्धत – उद्दंड

भवों – भौंहों

मूर्धाभिषिक्त – राज्याभिषेक संपन्न

तपोनिधि – महातपस्वी

विजयवाहिनी – विजय प्राप्त करने वाली सेना

कूटचक्र – कूटनीति का क्रम

श्रेय – कल्याण

सुधासीकर – अमृतकण

दृगजल – आंसू

विकीर्ण – बिखरी हुई

सुवाड़वाग्नि – समुद्र के भीतर की आग

1.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. वररुचि एक ब्राह्मण था। वह मगध सम्राट नंद का मंत्री था। उसकी राक्षस से मित्रता थी। वररुचि का नाम कात्यायन भी था। बौद्ध लोग इन्हें 'मगधदेशीय ब्रह्मबंधु' भी लिखते हैं। पाणिनी के सूत्रों के वार्त्तिककार यही कात्यायन हैं।
2. नीतिशास्त्र विशारद ब्राह्मण चाणक्य के कई नाम हैं– विष्णुगुप्त, कौटिल्य, चाणक्य, वात्स्यायन, द्रुमिल आदि। चाणक्य काले और कुरूप थे। महाराज नंद के शत्रु थे। उनकी जन्मभूमि पाटलिपुत्र थी। वह मगध में नंद की सभा में अपमानित हुए थे। चाणक्य वेद धर्मावलंबी, कूटनीति विशारद, प्रखर, प्रतिभावान एवं हठी थे। उन्होंने नंद को मारकर चन्द्रगुप्त को सम्राट बनाया ऐसा माना जाता है।
3. अशोक (सम्राट) का सबसे बड़ा पुत्र था जो एक नीच जाति की स्त्री से उत्पन्न हुआ था। वह डाकुओं के एक दल में शामिल हो गया था और उनके साथ मिलकर ही उसने पाटलिपुत्र पर चढ़ाई की और राज्य जीत लिया। उसके आठ भाई और थे। नौंवें नंद का नाम घननन्द था। इसी घननंद ने चाणक्य को अपमानित किया और सभा से निकाल दिया। चाणक्य ने उसके विनाश की प्रतिज्ञा की जिसे पुरी कर उसने चन्द्रगुप्त को सम्राट बनाया। नंद विलासी, भोगी, क्रूर और मूर्ख था।
4. राजबन्दी मौर्य–सेनापति का पुत्र था। जो मगध का सम्राट बना।
5. ग्रीक विजेता था। चतुर कूटनीतिज्ञ था। भारत को लूटने आया था।

1.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'चन्द्रगुप्त' नाटक का सारांश लिखिए।
2. 'चन्द्रगुप्त' के स्त्री पात्रों का चरित्र चित्रण कर बताइए कि कौन–सा पात्र प्रभावशाली है और क्यों?
3. 'चन्द्रगुप्त' के पुरुष पात्रों में से दो प्रभावशाली पुरुषों की चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
4. 'चाणक्य' और 'चन्द्रगुप्त' पात्रों पर विस्तार से टिप्पणी करें।
5. 'चन्द्रगुप्त' नाटक किन राज्यों, राजाओं और किन परिस्थितियों को लेकर लिखा गया है? विस्तार से विवेचना कीजिए।

6. 'चन्द्रगुप्त' नाटक की गीत–श्रृखला पर टिप्पणी कीजिए कि ये गीत कितने और क्यों उपयुक्त तथा प्रभावशाली हैं?
7. 'चन्द्रगुप्त' नाटक में स्त्रियों की देशभक्ति और पुरुष पात्रों की देशभक्ति के रूपों पर चर्चा करते हुए उनके प्रभाव एवं परिणाम भी स्पष्ट कीजिए।
8. चाणक्य कूटनीति विशारद होने के साथ एक सामान्य पुरुष की तरह कोमल संवेदनाएँ एवं इच्छाएँ रखता है। उदाहरण देकर सिद्ध कीजिए।
9. 'चन्द्रगुप्त' नाटक के स्त्री पात्र न केवल कोमल हृदया प्रेमिकाएँ हैं बल्कि साहसी, बुद्धिमान योऋा के गुण भी रखती हैं, सिद्ध कीजिए।
10. 'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रसाद जी की कथानक, भाषा–शैली और शिल्प अद्‌भुत है। टिप्पणी कीजिए?
11. चरित्र चित्रण कीजिए चाणक्य, चन्द्रगुप्त, सिंहरण, आम्भीक, पर्वतेश्वर, नंद, राक्षस, वररुचि, शकटार, सिकंदर, अलका, कल्याणी, सुवासिनी, मालविका, कार्नेलिया, दाण्ड्यायन।
12. प्रसाद जी भारत को 'अरुण यह' और 'मधुमय देश' क्यों कहते हैं?
13. 'बढ़े चलो' कविता (गीत) का भावार्थ लिखिए?
14. 'बढ़े चलो' में स्वतंत्रता को 'स्वयंप्रभा' और 'समुज्ज्वला' क्यों कहा गया है?
15. 'बढ़े चलो' में नागरिकों का उत्साह वर्द्धन किस तरह किया गया है?
16. मनुष्य की हृदय भूमि से किस तरह की भाव लीलाओं का चित्रण इस नाटक में किया गया है?
17. पुरुष की प्रकृति पर कटाक्ष करते हुए भौरे की कौन–कौन सी विशेषताओं की ओर नायिका संकेत करती है?
18. भारत के प्राकृतिक सौंदर्य एवं श्रेष्ठ संस्कारों का चित्रण करते हुए कार्नेलिया की मानसिकता का चित्रण कीजिए?
19. अलका, कल्याणी और आम्भीक की चरित्रगत विशेषताएँ बताते हुए सिद्ध कीजिए कि माता–पिता और संतानों की मानसिकता में किस तरह अंतर पाया जाता है?

1.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डॉ0 मीना पिंपलापुरे – 'चन्द्रगुप्त' – प्रकाशन संस्थान दिल्ली – 1989
2. डॉ0 भगवती प्रसाद शुक्ल – प्रसादयुगीन हिंदी नाटक, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 1971
3. प्रसाद युगीन नाटक – डॉ0 रमेश खनेजा – तक्षशिला नाट्य माला, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली–1981
4. प्रसाद के नाटक : स्वरूप और संरचना–गोविन्द चातक, इन्द्रप्रसस्थ साहित्य भारती, दिल्ली।
5. हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास, डॉ0 दशरथ ओझा, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली।

इकाई 2

आधे–अधूरे (मोहन राकेश)

इकाई की रूपरेखा

2.0 परिचय

2.1 इकाई के उद्देश्य

2.2 नाटकों की विकास यात्रा

2.3 पात्र परिचय

2.4 व्याख्यात अंश

2.5 चरित्रचित्रण

- 2.5.1 महेंद्रनाथ
- 2.5.2 अशोक
- 2.5.2 सावित्री
- 2.5.3 बिन्नी

2.6 आलोचना

- 2.6.1 कथानक
- 2.6.2 अभिनेयता
- 2.6.3 प्रयोगधर्मिता
- 2.6.4 भाषा शैली

2.7 आधे–अधूरे : आधुनिकता

2.8 सारांश

2.9 मुख्य शब्दावली

2.10 'अपनी प्रगति जाँचिए के उत्तर

2.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 परिचय

मोहन राकेश ने 1968 में आधे–अधूरे नाटक का प्रणयन किया। स्वातंत्र्योत्तर भारत के मध्यवर्गीय समाज में व्यक्ति के संघर्ष, टूटते परिवार, तनाव एवं द्वंद्व को जीवंत करने वाला यह अद्‌भुत नाटक है। स्त्री–पुरुष के मन की अतृप्ति एवं अधूरापन उन्हें किस तरह पथभ्रष्ट करता है, रिश्तों में आई दरार और पतित होते युवा वर्ग को दर्शाकर मोहन राकेश मध्यवर्गीय परिवार की जीवंत झाँकी प्रस्तुत करते हैं।

2.1 इकाई के उद्देश्य

टिप्पणी

आधे–अधूरे नाटक को पढ़कर विद्यार्थी

मध्यवर्गीय परिवार के अभावों एवं संघर्ष को जानेंगे;

अति महत्त्वाकांक्षा के चलते स्त्री के पतन एवं परिवार की बर्बादी का साक्षात्कार करेंगे;

युवा पीढ़ी के पथ भ्रष्ट होने के कारणों से अवगत होंगे;

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में रिश्तों के नवीन स्वरूप का बोध करेंगे।

2.2 नाटकों की विकास यात्रा

हिंदी नाटक का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है। भारतेन्दु एवं उनके सहयोगियों ने गद्य के माध्यम से हिंदी साहित्य को सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। निबंध इसमें अग्रणी था। हिंदी नाटक को प्रेरणा पश्चिम से नहीं बल्कि भारतीय भाषा बंगला के नाटकों 'कुलीन कुलसर्वस्व' (रामनारायण तर्करत्न), नील दर्पण (दीन–बंधु मित्र) आदि से प्राप्त हुई। 1857 की असफल क्रान्ति भी हिंदी नाटक का प्रेरणास्रोत थी। इन नाटककारों ने विदेशी शासन से संघर्ष के पूर्व अपनी सामाजिक दुर्बलताओं से संघर्ष करना आवश्यक समझा है। यही कहा जा सकता है कि हिंदी नाटक संघर्ष की मानसिकता की उपज है।

हिंदी नाटक के संघर्ष के क्षेत्र दोहरे थे। एक ओर वह पारसी व्यावसायिक रंगमंच की भ्रष्ट किंतु लुभावनी परंपरा से संघर्षरत था दूसरी ओर उसे अपने समाज की आंतरिक विकृतियों और अन्यायों से मुकाबला करना पड़ रहा था। पारसी व्यावसायिक रंगमंच से निपटने के लिए उसे मंच–विधान को गौण बनाकर कथ्य को प्रधानता देने की आवश्यकता थी। लोक–नाट्य मंच ने इसका रास्ता सुझाया। कथ्य को प्रधानता देते समय दूसरे उद्देश्य की पूर्ति के भी प्रयास किए गए। आमतौर पर इस काल के नाटकों में समाज की आंतरिक विकृतियों तथा अन्यायों के विरूद्ध संघर्ष करने के उपरांत ही, भारतीय जन की निराशा को दूर कर, आदर्शों के लिए संघर्ष करने की शक्ति प्रदान करने का उद्देश्यपूर्ण समाज चिंतन साफ पहचान में आता है। लोक–नाट्य में यह समय सबसे अधिक समाज सुधार के स्वर लेकर चलता है। आंतरिक विकृतियों तथा अन्यायों से मुक्त समाज विदेशी शासन के विरूद्ध अधिक सक्रिय और सफल संघर्ष कर सकता था इसलिए इस समय के नाटक एक सबल सामाजिक संरचना में प्रयासरत देखे जा सकते हैं। धार्मिक कुरीतियों, सामाजिक अन्यायों, अशिक्षा और अंधविश्वासों के विरूद्ध जेहाद में इन नाटककारों को व्यंग्य सबसे कारगर हथियार के रूप में दिखाई दिया।

भारतेन्दु युगीन नाटकों में व्यंग्य की प्रहार क्षमता में विश्व–नाट्य साहित्य में किसी से कमजोर नहीं है। बाद में कलापूर्ण तथा साहित्यिक दृष्टि से उत्तम नाटकों में भी यह क्षमता कम नहीं हुई। डॉ॰ रामविलास शर्मा के अनुसार, ''वास्तव में ऐसा सजीव और यह चेतन युग हिंदी साहित्य में एक बार ही आया है।'' भारतेन्दु युगीन नाटकों में पहला मौलिक नाटक भारतेन्दु बाबू का 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (1873 ई0) मूलतः एक व्यंग्य प्रधान

नाटक है। इसमें धार्मिक अंधविश्वासों तथा सामाजिक कुरीतियों पर कड़े व्यंग्य प्रहार किए गए हैं। संस्कृत के प्रहसन एकांकी होते थे तथा उनमें सामाजिक चेतना कदाचित ही रहती थी। भारतेन्दु का प्रहसन चार अंकों का है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र पारम्परिक शैली के प्रहसन के बजाय युगीन आवश्यकता के अनुकूल रचना का उद्देश्य लेक चलते हैं। इसमें उन्होंने व्यंग्य से रचनायात्रा आरंभ की। भारतेन्दु युग के रचनाकारों ने परवर्ती रचनाओं में भी अपने इसी संकल्प को अभिव्यक्ति दी है। भारतेन्दु युगीन प्रहसन वस्तुगत एवं शिल्पगत दोनों दृष्टियों से नया है तथा यह पहले कहे गए दुहरे संघर्ष की उपज है।

भारतेन्दु का नाटककार मित्र–समुदाय उनके निर्देश पर सामाजिक प्रश्नों को अपने नाटकों के माध्यम से उठाता है। प्रायः उनकी चेष्टाएँ गंभीर ही रही हैं किंतु दो–तीन नाटककारों ने व्यंग्य की प्रहार क्षमता को पहचान उसके कुशल उपयोग किए हैं। इन नाटककारों में पं0 देवकीनन्दन त्रिपाठी सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। त्रिपाठी जी ने जनेऊ (1886ई.) और कलियुगी–विवाह (1892 ई.) प्रमख हैं। इसी दौरान पं0 प्रतापनारायण मिश्र का 'जुआरी खुआरी' सामान्य स्तर पर किन्तु लोकप्रिय व्यंग्य–नाटक था। पं0 राधाचरण गोस्वामी ने ऐतिहासिक नाटकों के साथ–साथ अच्छे व्यंग्य–नाटक भी लिखे। राधाचरण गोस्वामी के एकांकियों में 1887 में प्रकाशित 'बूढ़े मुंह मुंहासे', 1890 में प्रकाशित 'सती चंद्रावली' तथा 'तन–मन–धन श्री गुसाई जी के अर्पण', 1892 में प्रकाशित 'भंगतरंग', 1894 में प्रकाशित 'अमरसिंह राठौर' तथा 1904 में प्रकाशित 'श्रीदामा' आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी मुख्य विशेषता इनमें निहित हास्य–व्यंग्य प्रधान दृष्टिकोण है जिसके मूल में सुधारपरक दृष्टिकोण विद्यमान है। 'बूढ़े–मुंह मुंहासे', 'तन–मन–धन गुसाई जी के अर्पण' तथा 'भंग तरंग' शीर्षक प्रहसनों में व्यंग्य भावना मुखरित हुई है। धर्म का जो विकृत रूप तत्कालीन समाज में व्याप्त था उसका चित्रण भी इनकी रचनाओं में हुआ है। मिथ्या प्रदर्शनों का ढोंग करने वाले पात्रों का चित्रण भी इनकी रचनाओं में मिलता है। समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति तीव्र विरोध की भावना इनकी रचनाओं में मिलती है। इन व्यंग्य नाटकों के अनेक सफल मंचन किए जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। राधाचरण गोस्वामी इस अर्थ में अत्यंत श्लाघनीय हैं कि उन्होंने अपने समाज, गोस्वामी समाज के अनाचारों को निर्ममता से उद्घाटित कर एक विद्रोही समाज सुधारक की भूमिका का निर्वाह किया है।

भारतेन्दु युगीन व्यंग्य नाटकों में शिल्प कौशल की अपेक्षा कथ्य पर अधिक ध्यान दिया गया है। इस वजह से इनमें नाट्य–प्रहार–क्षमता विलक्षण है। पश्चिमी देशों में इब्सन, गार्ल्सवर्दी और बर्नार्ड शॉ के नाटकों में व्यंग्य का जो पैनापन दिखाई देता है भारतेन्दु युगीन व्यंग्य नाटकों की धार उससे अधिक है।

द्विवेदीयुगीन साहित्य सोद्देश्यता को गंभीर मुद्रा में बांधकर चलता है। उल्लेखनीय है कि इस काल के दो दशकों में नाट्य रचना अत्यंत मंथर गति से हुई। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के नाटक 'महात्मा ईसा' और माखनलाल चतुर्वेदी के पौराणिक नाटक 'कृष्णार्जुन युद्ध' के अतिरिक्त कोई उल्लेखनीय नाट्यकृति इस दौरान दिखाई नहीं देती। यद्यपि अनेक नाटक लिखे गए किंतु उनमें भारतेन्दु युगीन पैनापन और आक्रामकता नहीं है। भगवती प्रसाद का 'वृद्धविवाह' (1905 ई.), रूद्रदत्त शर्मा का 'कण्ठी जनेऊ विवाह' (1906 ई0), हरिशंकर शर्मा का 'बुढ़ऊ–विवाह' (1909 ई0), बद्रीनाथ भट्ट का 'हिंदी की खींचातानी' (1916 ई0) तथा 'चुंगी की उम्मीदवारी' (1919 ई0) जैसे नाटक इस दौरान चर्चित एवं लोकप्रिय रहे। यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युगीन नाटकों की तरह इस युग में भी स्त्री की अस्मिता एवं विवाह जैसे प्रश्न महत्वपूर्ण दिखाई देते हैं।

जी. पी. श्रीवास्तव के नाटकों में हास्य ही प्रमुख तत्त्व है। व्यंग्य तो उनमें यदा–कदा ही दिखाई देता है। 'मार–मार कर हकीम' तथा 'मरदानी औरत' जैसे नाटक तो प्रसिद्ध फ्रांसीसी नाटककार मौलियर के नाटकों के रूपान्तरण ही हैं। इसीलिए उनमें भारतीय सामाजिक प्रश्न उस तरह उभरकर नहीं आते जिस तरह मौलिक नाटकों में उभरते हैं। दूसरी विचारणीय बात यह है कि द्विवेदीयुगीन अनुशासनों में बंधे नाटककारों के व्यक्तित्व वैसे कुंठाहीन नहीं हैं जैसे कि भारतेन्दु बाबू तथा उनके मंडल लेखकों के हैं। व्यंग्य लेखन के लिए अपेक्षाकृत अधिक

उन्मुक्त व्यक्तित्त्व की आवश्यकता होती है। इसलिए द्विवेदी युग व्यंग्य रचना की दृष्टि से अपेक्षाकृत कम उर्वरयुग दिखाई देता है।

द्विवेदीयुगीन के पश्चात लगभग दो दशक भावात्मक आदर्शवाद के वर्ष हैं। जयशंकर प्रसाद के श्रेष्ठ नाटक द्विवेदी–युग के समाप्त होने के बाद ही लिखे गए। प्रसाद मूलतः भावुक और अपेक्षाकृत अधिक एकान्तप्रिय व्यक्ति थे। उनके नाटकों में सांस्कृतिक अभियान प्रमुख हैं, यद्यपि इनके माध्यम से प्रसाद जी अंततः अपने युग से ही जुड़े हैं। गंभीर दार्शनिक विवेचन, काव्यात्मक तथा अनुभूति संपन्न उक्तियों की इन नाटकों में प्रचुरता है। इस कारण से इन नाटकों में गंभीरता है तथा व्यंग्य के लिए अनुकूल परिस्थितियों की कमी है। तब भी प्रसाद यदा–कदा अपने देश और समाज में व्याप्त अनाचारों से व्यथित होकर गंभीर चिंतन व्यक्त करते हैं।

1927 में 'कामना' में प्रसाद जी भौतिक संपत्ति के पीछे पागलपन का चित्रण करते हुए व्यंग्य का प्रयोग करते हैं। वे लिखते हैं, 'लाल रक्त गिराने से पीला सोना मिलने लगा, कैसा अच्छा खेल है?' 1929 ई. में रचित 'अजातशत्रु' यद्यपि एक गम्भीर नाटक है तब भी सूक्ति रूप में व्यंग्य की उपस्थिति यहाँ प्राप्त होती है। वे एक स्थान पर लिखते हैं– 'मेरी समझ में मनुष्य होना राजा होने से अच्छा है।' 'स्कंदगुप्त' जैसी गंभीर नाट्यकृति में प्रसाद जी की अधिक आक्रामक वृत्ति देखने को मिलती है।

'चन्द्रगुप्त' (1931) गंभीर ऐतिहासिक नाटक है तथा सिकन्दर से स्वार्थवश संधि करनेवाले आम्भीक के देशद्रोह से क्षुब्ध सिंहरण अनेक व्यंग्य प्रहार करता है। क्रुद्ध आम्भीक खड़ग निकालता है तब चन्द्रगुप्त उसे कोश में रखने को कहता है। इस पर सिंहरण व्यंग्य करता है, ''वह तो स्वर्ण से भर गया है।'' नन्द से अपमानित चाणक्य ने नन्द के सर्वनाश तक शिखा न बांधने की प्रतीज्ञा की थी। जब नन्द का पराभव होता है तब बन्दी नन्द को चाणक्य अपनी खुली हुई शिखा दिखाता है। उल्लेखनीय बात यह है कि इस अवसर पर भी चाणक्य नन्द को क्षमा करने के लिए भरपूर प्रयास करता है। यहाँ नाटक में दर्शित व्यंग्य में प्रतिहिंसा का भाव नहीं है। 'चन्द्रगुप्त' में अन्यत्र भी प्रसाद हल्के व्यंग्यों का उपयोग करते हैं, किन्तु क्या यह स्मरणीय नहीं है कि इनमें से एक भी विदेशी यूनानी संस्कृति के प्रति है। प्रसाद जी 'चन्द्रगुप्त' में व्यंग्य का उपयोग अपने ही समाज के दुष्ट आचरण में संलग्न व्यक्तियों को अनावृत करने के लिए करते हैं अथवा सही काम करने में हिचकिचाहट प्रदर्शित करने वाले को निःशंक करने के लिए करते हैं। यह व्यंग्यपूर्ण भर्त्सना संबंधित व्यक्ति को उत्तेजित कर उसको हिचक से मुक्त करती है। चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया के परिणय के लिए पुरोहित बनने में कात्यायन की हिचक दूर करने के लिए चाणक्य भर्त्सनापूर्ण व्यंग्य का प्रयोग करता है। प्रसाद सर्वत्र अपने व्यंग्य का सोद्देश्य उपयोग करते हैं।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक संक्षिप्त होते हुए भी तीखे व्यंग्य की झलक दिखाता है। लगभग सभी व्यंग्य ध्रुवदेवी की असहाय स्थितियों के चित्रण के समय प्रयुक्त हैं। अपने अंतिम दो नाटकों 'चन्द्रगुप्त' तथा 'ध्रुवस्वामिनी' में प्रसाद अधिक निर्मम दिखाई देते हैं। इसीलिए इन दो नाटकों में व्यंग्य की धार अधिक प्रखर दिखाई देती है। पूर्ववर्ती नाटकों में प्रसाद का रचनात्मक व्यक्तित्व अपेक्षाकृत गम्भीर तथा ऐकांतिक लगता है, जबकि अंतिम दो नाटकों में उनका दृष्टिकोण अधिक सामाजिक तथा खुला हुआ लगता है। उनकी पूर्ववर्ती मान्यता–''संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यंग्य है। हृदय में जितना यह घुसता है उतनी कटार नहीं। वाक्–संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है।'' कालान्तर में प्रसाद रचना धर्मिता अधिक मुखर हैं। फिर भी प्रसाद जी ने किसी भी अवसर पर पूर्ण आक्रामकता को स्वीकार नहीं किया। अपने सम्पूर्ण रचना कार्य में वे कहीं भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समान निर्मम नहीं हो पाते। कैसी अद्‌भुत बात है कि हिंदी के सबसे बड़े नाटककार ने व्यंग्य को विशेष महत्त्व नहीं दिया। परिणाम यह हुआ कि समाज परिवर्तन का सबसे अधिक धारदार और कारगर अस्त्र जो कि भारतेन्दुयुगीन नाटकों की मुख्य स्पिरिट था, कोने में जंग खाने को पटक दिया गया। साहित्यिक दृष्टि से भले हिंदी नाटक शिखर पर जा पहुँचा किन्तु अन्याय, शोषण और विद्रूप के विरूद्ध जारी संघर्ष में उसका रवैया उदासीन ही दिखाई देता है।

प्रसादोत्तर युग में संभवतः एकांकी नाटकों की विकास गति तीव्रत्तम है। यद्यपि आरम्भिक एकांकियों में सामाजिक चेतना के स्वर तीव्र नहीं हैं किन्तु शीघ्र ही वे गुरु गंभीर होते नजर आते हैं। प्रारम्भ में भुवनेश्वर के, कुंठाग्रस्त मानसिकता और बिखराव के शिकार व्यक्तियों के निरूपक एकांकी कलात्मक दृष्टि से सर्वोत्तम थे। इसी समय प्रसाद की नाट्यशैली की छाया लिए रामकुमार वर्मा के एकांकी अपनी भावुक शैली के लिए चर्चित हो रहे थे। यही समाज सुधार की पूर्व पीठिका से प्रभावित एकांकियों का समय आरम्भ होता है। शीघ्र ही उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीशचन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, भगवतीचरण वर्मा और सत्येन्द्रशरद के सोद्देश्य एकांकी नाट्य–प्रेमियों को प्राप्त होते हैं।

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् हुए सबसे महत्त्वपूर्ण नाटककारों में मोहन राकेश का नाम नए हिंदी नाटक की सुदृढ नींव रखने वालों में लिया जा सकता है किंतु जहाँ तक उनकी रचनाओं में व्यंग्य की प्रवृत्तियों का प्रश्न है, निःसंकोच हम कह सकते हैं कि वे अत्यंत सूक्ष्म हैं। मोहन राकेश के तीन पूरे तथा एक अधूरे (पैरों तले जमीन) नाटकों में से दो 'अषाढ़ का एक दिन तथा 'आधे–अधूरे 'ट्रैंड–सैंटर कहे जा सकते हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' (1985) में व्यंग्य बहुत ही सूक्ष्म हैं। कालिदास से विपरीत चरित्र विलोम द्वारा कालिदास के चरित्र पर प्रश्न चिह्न ही नहीं लगता बल्कि उनके उदात्त चरित्र में निहित कमजोरियों पर व्यंग्य बन गया है। कालिदास अपने काव्य को महत्त्व दिलाने के लिए गांव तथा प्रेयसी मल्लिका को छोड़कर राजधानी जाता है। राजधानी काव्य–रचना के लिए नैसर्गिक वातावरण नहीं दे पाती। न ही उसकी काव्य–प्रेरणा मल्लिका की कमी को उसकी पत्नी पूरा कर पाती है। गाँव लौटने पर वह पाता है कि अभावों से परास्त उसकी काव्य–शक्ति की मूल प्रेरणा मल्लिका उसके विपरीत चरित्र विलोम को समर्पित हो चुकी है। मल्लिका की ट्रैजेडी कालिदास की महत्वाकांक्षा, उसके व्यक्तित्व, उसके समझौतों सभी पर एक गहरे व्यंग्य के रूप में उभरी है। कालिदास की महानता अन्ततः टूटे हुए कालिदास के द्वारा मानो व्यंग्य से ढ़क गई है।

जनवरी 1969 में प्रकाशित मोहन राकेश का नाटक 'आधे–अधूरे' पारिवारिक जीवन की एक बहुत बड़ी ट्रैजेडी को अंकित करता है। यह ट्रैजेडी न्यूनाधिक रूप में असंख्य जन की है। इस नाटक के सावित्री और महेन्द्र स्वयं में बहुत बड़े व्यंग्य बन गए हैं। सावित्री पौराणिक सावित्री से विपरीत है जो दूसरा पति करने के प्रयास में संलग्न है। महेन्द्रनाथ अपने नाम के ठीक विपरीत लुंज–पुंज व्यक्तित्त्व वाला चरित्र है। वैसे तो सभी प्राणी किसी न किसी रूप में आधे–अधूरे होते हैं। नायिक सावित्री भी ऐसी ही है किन्तु दूसरों के अधूरेपन पर, विशेषतः पति और बच्चों के अधूरेपन पर वह खीझती है। यहाँ व्यंग्य एक बिल्कुल अलग अंदाज लेकर सामने आया है। 'आधे–अधूरे' वस्तुतः लेखक का स्वयं पर किया गया व्यंग्य है। सावित्री जैसे खुद मोहन राकेश का परिवर्तित अहं (आल्टर ईगो) बन गई है। 'आधे–अधूरे' की ट्रैजेडी अतिरंजित रूप में ही सही हमारी सामाजिक मानसिकता पर किया गया व्यंग्य है। समाज के अभिन्न अंग के नाते स्त्री और पुरुष मूलतः एक दूसरे के पूरक होते हैं किन्तु पश्चिमी प्रभावों के कारण एक नयी विकृति भारतीय समाज में प्रतिफलित होती दिखाई देती है। वह है स्त्री–पुरुष के बीच निरंतर बढ़ता हुआ अविश्वास। स्त्री पुरुष को सुविधाएँ जुटाने वाला साथी मानने लगी है और पुरुष नारी को दैहिक संबंधों तक सीमित करने लगा है। सनातन पुरुष और सनातन नारी आपस में मिल ही नहीं पाते। 'आधे–अधूरे' का यह व्यंग्य समाज पर है जिसके अंग दोनों हैं। जब शरीर ही विकृत है तो अंग कैसे स्वस्थ होंगे। समाज में विकसित मानसिकता से अभिशप्त उसके सदस्य जब आत्म–केन्द्रित और असामाजिक बनते हैं तो समाज शब्द ही विकृत अथवा अर्थहीन हो जाते हैं। आज यही विडंबना विकसित होती दिखाई दे रही है।

प्रसादयुग से आज तक अनेक नाटककारों ने नाट्य रचना के क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जैसे बद्रीनाथ भट्ट, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, गोविंद दास, सुदर्शन, लक्ष्मीनारायण लाल, हमीदुल्ला, सुरेन्द्र वर्मा, शरद जोशी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मणि मधुकर, भुवनेश्वर, धर्मवीर भारती आदि। नाटकों ने सामाजिक परिवर्तन में

निरंतर महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है और करते रहेंगे। जैसे–जैसे पाश्चात्य प्रभाववश सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन हुए और हो रहे हैं। स्त्री–पुरुष संबंधों में, शिक्षा में, वर्ग वैषम्य में परिवर्तन हुए हैं, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों में परिवर्तन हुए हैं। नाटककारों ने इन परिवर्तनों, इनके प्रभाव एवं परिणामों को अपने नाटक की कथा वस्तु बनाकर उसे प्रभावी तरीके से जन–साकान्य के सामने प्रस्तुत किया है। नाटकों में मंचन की सुविधा के कारण इसका उत्तरदायित्व अधिक बढ़ जाता है, औचित्य एवं अनौचित्य का ध्यान रखते हुए इसे समाज के सामने प्रस्तुत किया जाता है। यह समाज से सीधा संवाद स्थापित करने वाली विधा है। अतः सामाजिक सरोकारों को आत्मसात कर नाटककार इसे जीवंत अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है। नाटकों का आकर्षण सदैव बना रहा है। सामाजिक परिवर्तनों के साथ–साथ इसके परिवर्तित तेवरों, रूप–रंग, प्रस्तुति इसे और अधिक आकर्षक, प्रासांगिक और उपयोगिता पूर्ण बनाते रहेंगे। नाटकों के अनेक प्रकार हैं– ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, हास्य–व्यंग्य प्रधान नाटक आदि। सभी अपनी–अपनी विशेषताओं के साथ पठनीय और उपयोगी होते हैं। आधुनिक नाटककारों ने हर तरह के नाटकों की रचना की है और कर रहे हैं।

2.3 पात्र–परिचय

पुरुष एक	–	महेन्द्रनाथ (सावित्री का पति)
पुरुष दो	–	सिंघानिया
पुरुष तीन	–	जगमोहन
पुरुष चार	–	जुनेजा
स्त्री	–	सावित्री
बड़ी लड़की	–	बिन्नी
छोटी लड़की	–	किन्नी–सावित्री एवं महेन्द्रनाथ के तीन बच्चे
लड़का	–	अशोक

पुरुष एक के रूप में महेन्द्रनाथ : पतलून–कमीज। जिन्दगी से अपनी लड़ाई हार चुकने की छटपटाहट लिये। पुरुष दो के रूप में सिंघानिया पतलून और बन्द गले का कोट। अपने आपसे संतुष्ट, फिर भी आशंकित। पुरुष तीन के रूप में जगमोहन–पतलून–टीशर्ट। हाथ में सिगरेट का डिब्बा। लगातार सिगरेट पीता। अपनी सुविधा के लिए जीने का दर्शन पूरे हाव–भाव में। पुरुष चार के रूप में जुनेजा पतलून के साथ पुरानी काट का लम्बा कोट पहने। चेहरे पर बुजुर्ग होने का खासा अहसास। काइयांपन।

स्त्रीः उम्र चालीस को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष। ब्लाउज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरूचिपूर्ण।

बड़ी लड़कीः उम्र बीस से ऊपर नहीं। भाव में परिस्थितियों से संघर्ष का अवसाद और उतावलापन। कभी–कभी उम्र से बढ़कर बड़प्पन। साड़ी : माँ से साधारण : पूरे व्यक्तित्व में एक बिखराव।

छोटी लड़की : उम्र बारह और तेरह के बीच। भाव, स्वर चाल–हर चीज में विद्रोह : फ्रॉक चुस्त, पर एक मोजे में सूराख।

लड़का : उम्र इक्कीस के आस–पास। पतलून और अन्दर दबी भड़कीली बुश्शर्ट धुल–धुलकर घिसी हुई। चेहरे से, यहाँ तक कि हंसी से भी, झलकती खास तरह की कड़वाहट।

2.4 व्याखाएँ

पुरुष एक : वह छः महीने बाहर रहकर आया है। जो सकता है, कोई नया कारोबार चलाने की सोच रहा हो जिसमें मेरे लिए.....

स्त्री : तुम्हारे लिए तो पता नहीं क्या–क्या करेगा वह जिन्दगी में! पहले ही कुछ कम नहीं किया है। इतनी गर्द भरी रहती है हर वक्त इस घर में! पता नहीं कहाँ से चली आती है।

पुरुष एक : तुम नाहक कोसती रहती हो उस आदमी को। उसने तो अपनी तरफ से हमेशा मेरी मदद की है।

स्त्री : न करता मदद, तो उतना नुकसान तो न होता जितना उसके मदद करने से हुआ है।

पुरुष एक : (कुढ़कर सोफे पर बैठता) तो नहीं जाता मैं! अपने अकेले के लिए जाना है मुझे! अब तक तकदीर ने साथ नहीं दिया तो इसका यह मतलब तो नहीं कि....।

स्त्री : यहाँ से उठ जाओ! मुझे झाड़ लेने दो जहा। उस कुर्सी पर चले जाओ, वह साफ हो गई है। (बड़बड़ाती) पहली बार प्रेस में जो हुआ सो हुआ। दूसरी बार फिर क्या हो गया? वही पैसा जुनेजा ने लगाया, वही तुमने लगाया। एक ही फैक्टरी लगी, एक ही लगह लमाखर्च। फिर भी तकदीर ने उसका साथ दे दिया, तुम्हारा नहीं दिया।

पुरुष एक : (गुस्से से उठता है), तुम तो ऐसी बात करती हो जैसे....।

स्त्री : खड़े क्यों हो गए?

पुरुष एक : क्यों, मैं खड़ा नहीं हो सकता?

स्त्री : (हलका वकफा लेकर तिरस्कारपूर्ण स्वर में) हो तो सकते हो, पर घर के अन्दर ही।

संदर्भ – प्रस्तुत संवाद मोहन राकेश के नाटक आधे–अधूरे से लिया गया है।

प्रसंग – यहाँ पुरुष एक के रूप में महेन्द्रनाथ तथा स्त्री के रूप में उसकी पत्नी सावित्री के बीच जुनेजा नामक मित्र को लेकर तीखी झड़प हो रही है जिसका चित्रण किया गया है।

व्याख्या:

महेन्द्रनाथ अपनी पत्नी सावित्री से कहता है कि उसका मि जुनेजा जो कारोबार के सिलसिले में बाहर गया था, छह महीने बाद लौटकर आया है। हो सकता है कि वह किसी नए कारोबार के संबंध मे कोई योजना बना रहा हो जो मेरे लिए भी लाभदायक हो, तो मैं उससे मिलने जा रहा हूँ। सावित्री–जुनेजा से नफरत करती है वह सोचती है कि जुनेजा अपने अन्य सहयोगियों के साथ मिलकर उसके पति से काम निकलवाता है, उसका शोषण करता है और उसे ऐसी शिक्षा देता है कि वह अपने घर–परिवार को महत्त्व न दे। सावित्री का मानना है कि जब कारोबार में लाभ होता है तो वह जुनेजा को रखता है और उसके पति को बराबर का हिस्सेदार होने पर भी उसका हिस्सा नहीं मिलता। इसलिए वह जुनेजा से मिलने जाते हुए पति पर व्यंग्य करती है कि आओ उसे देने के लिए पैसे नहीं हैं, बेरोजगार बैठे हो तो कम से कम उसे मुँह दिखा ही सकते हो। महेन्द्रनाथ कहता है कि तुम उस आदमी से बेवजह चिढ़ती हो उसने मेरी बहुत मदद की है। सावित्री बातें करते हुए कुर्सियाँ साफ करती जाती है और बड़बड़ाती है कि इस घर में इतनी गर्द हर वक्त भरी रहती है, पता नहीं कहाँ से आती है, यह गर्द घर घर में चौबीसों घंटे चलने वाले कलह और तनाव का प्रतीक है। सावित्री कहती है कि जुनेजा को तुम मददगार कहते हो लेकिन उसने अगर मदद न की होती तो अच्छा होता, उसके मदद करने से अधिक नुकसान हुआ है। महेन्द्रनाथ कुढ़ता हुआ बैठ जाता

है और कहता है मैं अपने लिए उसके पास नहीं जा रहा था। किसी व्यवसाय की बात करने जा रहा था ताकि तुम सब के लिए कुछ कर सकूं। पहले जो भी नुकसान हुआ भाग्य का लिखा था वही घटा। सावित्री कहती है – पहली बार प्रेस में जो हुआ उसे भाग्य माना जा सकता है लेकिन दूसरी बार तो सरासर बेईमानी थी। एक ही फैक्टरी थी, तुम दोनों ने बराबर पैसा लगाया। फिर तकदीर ने उसका साथ दिया तुम्हारा नहीं यह कैसे हो सकता है? वह झाड़न से कुर्सी साफ करती हुई महेन्द्र के पास पहुँचती है तो वह खड़ा हो जाता है – वह कहती है – खड़े क्यों हो गए? वह चिढ़ कर कहता है– क्यों, मैं खड़ा नहीं हो सकता? तब सावित्री व्यंग्य पूर्ण स्वर में कहती है– तुम केवल घर के अंदर खड़े हो सकते हो, बाहर नहीं। अर्थात् तुम घर में पुरुषार्थ का प्रदर्शन करते हो लेकिन बाहर जाकर हर बात में जुनेजा का सहारा लेते हो, स्वयं निर्णय लेने की शक्ति तुममें नहीं रहती। पत्नी–पति के बीच की बहस को राकेश जी ने जीवंत प्रस्तुति दी है।

2 स्त्री : वजह का पता तुम्हें होगा या तुम्हारे लड़के को। वह भी तीन–तीन दिन दिखाई नहीं देता घर पर।

पुरुष एक : तुम मेरा मुकाबला उससे करती हो?

स्त्री : नहीं, उसका मुकाबला तुमसे करती हूँ। जिस तरह तुमने ख्वार की अपनी जिन्दगी, उसी तरह वह भी....।

पुरुष एक : और लड़की तुम्हारी? उसने अपनी जिंदगी ख्वार करने की सीख किससे ली है? (अपने जाने भारी पड़ता) मैंने तो कभी किसी के साथ घर से भागने की बात नहीं सोची थी।

स्त्री : (एकटक उसकी आंखों में देखती) तुम कहना क्या चाहते हो?

पुरुष एक : कहना क्या है? जाकर चाय बना लो, पानी हो गया होगा।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – इस दृश्य में पति–पत्नी एक दूसरे के चरित्र पर छींटाकशी कर रहे हैं।

व्याख्या : सावित्री अपने पति महेन्द्रनाथ से कहती है कि अब जुनेजा बाहर से लौट आया है तो फि पहले की ही तरह बिना बताए तुम तीन–तीन दिन के लिए घर से बाहर उसके साथ रहोगे ही। महेन्द्रनाथ सफाई देते हुए कहता है कि मैं अगर बाहर रहता भी हूँ तो उसका कोई कारण होता है, तुम जानती हो। सावित्री कहती है– कारण मैं नहीं जानती, तुम जानते हो या तुम्हारा बेटा क्योंकि वह भी घर से बिना बताए तीन–तीन दिन तक बाहर रहना सीख गया है। यह शिक्षा तुम्हारी ही है जिस पर चल कर वह तुम्हारी तरह ही अपनी जिंदगी बर्बाद कर लेगा। सावित्री का आरोप सुनकर महेन्द्रनाथ तिलमिला जाता है और कहता है– तुम मेरी बराबरी उस लड़के से कर रही हो? अर्थात् बेटा तो बच्चा है, गैर जिम्मेदार है, आवारागर्दी करता है और तुम उससे मेरी बराबरी कर रही हो। सावित्री कहती है– नहीं, तुम्हारी बराबरी उससे नहीं, उसकी बराबरी तुमसे कर रही हूँ, क्योंकि वह भी तुम्हारी तरह बर्बादी की राह पर चल रहा है। महेन्द्रनाथ कुढ़ जाता है और कहता है– ठीक है बेटा मेरी तरह बर्बाद हो रहा है, लेकिन बेटी के संबंध में तुम्हारी क्या राय है? वह भी तो तुम्हारे पद–चिन्हों पर चल रही है। मैंने बेटे को यह नहीं सिखाया कि किसी लड़की को लेकर भाग जा। तुम्हारी बेटी किसी लड़के के साथ भाग गई, उसे यह शिक्षा कहाँ से मिली? सावित्री तिलमिलाकर सवाल पूछती है तो महेन्द्रनाथ विवाद खत्म करने की दृष्टि से कहता है – इस संबंध में कुछ नहीं कहना है, जो है, तुम जानती हो।

जाओ चाय बना लाओ।

प्रस्तुत अंश में बाहरी दबाओं और परिस्थितिजन्य कुंठा से ग्रस्त पति–पत्नी के संबंध का संकेत है, साथ ही पूरे परिवार की व्यक्तिगत जटिलताओं तथा पारस्परिक संबंधों का भी। आधुनिक समाज के अंतर्विरोधों और

विसंगतियों का भी। मोहन राकेश ने नाटक में आम आदमी की छवि को आम आदमी के तेवर भाषा एवं लहजे में उभारा है।

3. पुरुष एक : हांऽऽ सिंघानिया तो लगवा ही देगा जरूर। इसीलिए बेचारा आता है यहाँ चलकर।

स्त्री : शुक्र नहीं मानते कि इतना बड़ा आदमी, सिर्फ एक बार कहने भर से।

पुरुष एक : मैं नहीं शुक्र मानता? जब–जब किसी नए आदमी का आना–जाना शुरु होता है यहाँ, मैं हमेशा शुक्र मनाता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था। फिर मनोज आने लगा था।

स्त्री : (स्थिर दृष्टि से उसे देखती) और क्या–क्या बातें रह गयी हैं कहने को बाकी? वह भी कह डालो जल्दी से।

पुरुष एक : क्यों.... जगमोहन का नाम मेरी जबान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गुम होने शुरू हुए?

स्त्री : (गहरी वितृष्णा के साथ) जितने नाशुक्रे आदमी तुम हो, उससे तो मन करता है कि आज ही मैं....।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – महेन्द्रनाथ सावित्री और उसके बॉस सिंघानिया के बीच संबंधों को संदिग्ध दृष्टि से देखते हुए सावित्री पर व्यंग्य कर रहा है।

व्याख्या : सावित्री ने कहा कि सिंघानिया आने वाला है वह मेरा बॉस है, बड़ा आदमी है लेकिन इतना भला है कि मेरे एक बार कहने पर ही घर आ रहा है। मैंने उसे इसलिए बुलाया है कि उससे संबंध बन जाएं तो वह लड़के की कहीं नौकरी लगवा देगा इसलिए तुम सब लोग उसके आने पर उसका स्वागत करो उससे मिलो। महेन्द्रनाथ व्यंग्यात्मक अंदाज में कहता है– हाँ, बेचारा सिंघानिया लड़के की नौकरी लगवाने के लिए ही तो यहाँ आता है, और कुछ नहीं। वैसे भी जिस नए व्यक्ति का घर में आना जाना आरंभ होता है मैं शुक्र ही मानता हूँ कि चलो एक और बड़ा आदमी इस घर में आने लगा। पहले जगमोहन आता था, फिर मनोज और सिंघानिया। सावित्री तिलमिलाकर कहती है कि और भी जो–जो कहना है कह डालो क्योंकि तुम अहसान फरामोश हो, मैं जिसको भी बुलाती हूँ तुम लोगों के भले के लिए बुलाती हूँ ताकि बड़े लोगों से संबंध बनाकर कुछ लाभ इस घर के लिए कमा सकूँ। लेकिन उसका आशय स्पष्ट है कि तुम संदेह करते हो तो मन करता है कि आज ही यह घर और तुम्हे छोड़कर उस आदमी अर्थात् सिंघानिया के साथ चली जाऊँ।

4. बड़ी लड़की: वजह सिर्फ वह हवा है जो हम दोनों के बीच से गुजरती है।

पुरुष एक : (उस ओर देखकर) क्या कहा.....हवा?

बड़ी लड़की: हाँ, हवा।

पुरुष एक : (निराश भाव से सिर हिलाकर, मुंह फिर दूसरी तरफ करता) यह वजह बतायी है इसने..... हवा।

स्त्री : (बड़ी लड़की के चेहरे को आंखों से टटोलती) मैं तेरा मतलब नहीं समझी।

बड़ी लड़की: (उठती हुई) मैं शायद समझा नहीं सकती (अस्थिर भाव से कुछ कदम चलती) (सहसा रूककर) ममा, ऐसा भी होता है क्या कि.....?

स्त्री : कि?

बड़ी लड़कीः कि दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहें, एक हवा में सांस लें, उतना ही ज्यादा अपने को एक–दूसरे से अजनबी महसूस करें।

संदर्भ – पूर्ववत

प्रसंग – बड़ी लड़की बिन्नी अपने पति के घर से अचानक मायके आ गई है। सावित्री और महेन्द्रनाथ को संदेह है कि यह बार–बार पति से लड़ कर यहाँ आती है, इसलिए वे उससे अचानक आने का कारण पूछते हैं और बिन्नी अपने अंदाज में उत्तर देती है।

व्याख्या – सावित्री पूछती है बिन्नी से – ऐसी क्या वजह है कि तू बार–बार पति को छोड़कर यहाँ भाग आती है। विवाह तो तूने उसके (मनोज) के साथ भागकर अपनी इच्छा से किया है फिर क्या समस्या है। माता–पिता द्वारा तय किए गए रिश्तों से समस्या हो सकती है। क्योंकि लड़का–लड़की एक दूसरे को पहले से जानते नहीं हैं लेकिन बिन्नी ने मनोज के साथ भागकर शादी की, फिर क्या वजह है कि वह उसे छोड़कर यहाँ आए। बिन्नी कहती है–मनोज से उसे शिकायत नहीं है। वह इच्छा पति है, प्रेमी है उसका ध्यान रखता है लेकिन कुछ है हमारे बीच कि हम कुछ देर साथ रहने के बाद असहज हो जाते हैं। हमारे बीच से गुजरने वाली 'हवा' ही वह वजह है अर्थात् हमारे बीच का कुछ अनजाना सा तत्त्व। वह माँ से कहती है कि क्या ऐसा होता है कि दो लोग जितना अधिक एक–दूसरे के साथ रहें, एक हवा में साँस लें उतना ही ज्यादा वे एक–दूसरे के लिए अजनबी बनते जाते हैं। माँ पूछती है क्या तुम दोनों ऐसा अनुभव करते हो? बिन्नी कहती है– कम से कम मैं तो करती हूँ। तात्पर्य यह कि पहले दूर–दूर रहकर दो लोग एक दूसरे के प्रति आकर्षित तो होते हैं किंतु दूसरे के व्यक्तित्त्व को परिपूर्णता में नहीं जानते, साथ रहने पर दो व्यक्तित्त्व आपस में टकराते हैं जिसके कारण वे दूसरे से दूर होते जाते हैं। बिन्नी इसी द्वंद्व से गुजर रही है।

प्रस्तुत अंश में व्यक्तित्त्वों की टकराहट और अंतर्संबंधों की जटिलता को एक गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दिखाया गया है। व्यक्ति संबंध निभाना भी चाहता है लेकिन अपनी व्यक्तिगत सत्ता, अपनी अस्मिता से समझौता भी नहीं करना चाहता। आज के समाज के अनुधनिक व्यक्ति की यही विसंगति है। मोहन राकेश ने अपने नाटकों में व्यक्तिगत संबंधों की इसी जटिलता को बड़ी बारीकी से उभारा है।

5. बड़ी लड़की : पर कौन सी अड़चन? उसके हाथ में छलक गयी चाय की प्याली, या उसके दफ्तर से लौटने में आधा घंटे की देर–ये छोटी–छोटी बातें अड़चन नहीं होतीं, मगर अड़चन बन जाती है। एक गुबार सा है जो हर वक्त मेरे अन्दर भरा रहता है और मैं इन्तजार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे उसे बाहर निकाल लूँ। और आखिर....। आखिर वह सीमा आ जाती है जहाँ पहुंचकर वह निढाल हो जाता है। ऐसे में वह एक ही बात कहता है।

स्त्री : क्या?

बड़ी लड़कीः कि मैं इस घर से ही अपने अन्दर कुछ ऐसी चीज लेकर गई हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देती।

स्त्री : (जैसे किसी ने उसे तमाचा मार दिया हो) क्या चीज?

बड़ी लड़कीः मैं पूछती हूँ क्या चीज, तो उसका एक ही जवाब होता है।

स्त्री : वह क्या?

बड़ी लड़कीः कि इसका पता मुझे अपने अन्दर से या इस घर के अंदर से चल सकता है। वह कुछ नहीं बता सकता।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – उपयुक्त अंश एक आधुनिक विवाहिता स्त्री की दुविधा, उसकी अस्मिता और उससे की जाने वाली अपेक्षाओं के द्वंद्वों को व्यक्त करता है और टूटते हुए परिवारों की विसंगति को भी। प्रस्तुत व्याक्यांश में परिवार की बड़ी पुत्री जो पति का घर छोड़कर आ गई है, माँ से अपनी मनःस्थिति व अपने पति के बीच में आई दूरी का जिक्र कर रही है। लेखक ने यहाँ उसकी मानसिकता को माता–पिता के व्यक्ति संबंधों में आई दरारों और परिवार की कुंठाओं और क्लेश से भी जोड़ा है। सावित्री अपने बेटी बिन्नी से कहती है कि अगर तुम अपने पति के साथ रहते हुए भी अजनबी जैसा अनुभव करती हो तो इसके पीछे कोई अड़चन होगी। तब बिन्नी उत्तर देती है।

व्याख्या – बिन्नी सावित्री से कहती है कि कोई अड़चन या बाधा ऐसी नहीं है जिसके कारण हम पति–पत्नी के बीच के संबंध असहज हो जाते हैं। उसके हाथ से चाय छलक जाए या वह दफ्तर से आधा घंटा देर से आए ये तो छोटी–छोटी बातें हैं, ये अड़चन नहीं होती, लेकिन बन जाती है जिसका कारण मैं हूँ। इन छोटी–छोटी बातों को भी बहाना बनाकर मैं अपने भीतर का गुबार निकालती रहती हूँ क्योंकि कोई कारण न होने पर भी मेरे भीतर एक गुबार सा हर वक्त भरा रहता है और मैं बहाना या मौका ढूंढती रहती हूँ कि कब अपनी भड़ास मनोज पर निकालूँ और अंततः जब उसकी कोई कमी नजर नहीं आती तो ऐसे छोटे–छोटे कारणों को लेकर ही मैं उस पर बरस पड़ती हूँ। वह समझाता है लेकिन अंततः वह भी थककर हथियार डाल देता है, लेकिन ऐसे अवसरों पर वह यही कहता है कि– इसमें मेरी कोई गलती नहीं है – मेरे परिवेश की है कि मैं इस घर यानि मायके से ही कोई ऐसी चीज लेकर गई हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे सहज और स्वाभाविक नहीं रहने देती। सावित्री को धक्का लगता है जैसे किसी ने उसे तमाचा मार दिया हो क्योंकि वह जानती है कि आज जो उसका दामाद है बीते कल में उसका मित्र या प्रेमी था और वह उसकी असंतुष्ट प्रवृत्ति को जानता है। शायद यह अतृप्ति या असंतुष्टि ही वह चीज है जो न मुझे सहज रहने देती थी न उसकी बेटी को। लेकिन वह अपने मनोभाव छिपाकर पूछती है कि मनोज किस चीज का जिक्र करता है। बिन्नी कहती है– मुझे पता नहीं, मनोज भी नहीं बताता। कहता है कि वह चीज जो तुम्हें सहज, स्वाभाविक नहीं रहने देती उसका पता तुम्हें अपने अंदर से यानि अपने भीतर झाँकने से या अपने घर के संबंध में सोचने पर मिल सकता है। क्योंकि हर मनुष्य यह जानता है कि वह क्या है।

बड़ी लड़कीः क्योंकि मुझे नहीं लगता है कि...कैसे बताऊँ, क्या लगता है? वह जितने विश्वास के साथ यह बात कहता है, उससे मुझे अपने से अजब सी चिढ़ होने लगती है। मन करता है....मन करता है, आसपास की हर चीज को तोड़–फोड़ डालूँ। कुछ ऐसा कर डालूँ जिससे....।

स्त्री : जिससे?

बड़ी लड़कीः जिससे उसके मन को कड़ी–से–कड़ी चोट पहुँचा सकूँ। उसे मेरे लंबे बाल अच्छे लगते हैं। इसलिए सोचती हूँ, इन्हें जाकर कटा आऊँ। वह मेरे नौकरी करने के हक में नहीं है। इसलिए चाहती हूँ कहीं भी, कोई भी छोटी–मोटी नौकरी ढूँढकर कर लूँ। कुछ भी ऐसी बात जिससे एक बार तो वह अंदर से तिलमिला उठे। पर कर मैं कुछ भी नहीं पाती और जब नहीं कर पाती, तो खीझकर..।

स्त्री : यहाँ चली आती है?

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – मनोज जब हर बार बिन्नी से कहता है कि वह अपने घर से कोई ऐसी चीज लेकर आई है जो उसे स्वाभाविक, सहज नहीं रहने देती तो बिन्नी खिन्न होकर जो प्रतिक्रिया व्यक्त करती है उसका चित्रण किया गया है।

व्याख्या – सावित्री बिन्नी से कहती है कि तुम मनोज से क्यों नहीं पूछतीं कि वह किस चीज के संबंध में बात कर रहा है। तब बिन्नी कहती है कि मुझे नहीं लगता कि मनोज गलत कह रहा है क्योंकि मुझे भी ऐसा लगता है कि कुछ है ऐसा मेरे भीतर जो मुझे सहज वातावरण में भी सहज नहीं रहने देता। वह जितने विश्वास से यह बात कहता है उस पर अविश्वास करने का प्रश्न ही नहीं उठता बल्कि मुझे अपने–आपसे चिढ़ होने लगती है। लगता है अपने आस–पास की हर चीज नष्ट कर दूँ, तोड़ फोड़ दूँ कुछ ऐसा करूँ कि मनोज दुखी हो, परेशान हो, उसके मन को चोट पहुँचे वह भी मेरी तरह असहज हो जाए तो मुझे चैन मिले। मैं हर काम उसकी इच्छा के विरूद्ध करना चाहती हूँ ताकि वह चिढ़े, दुखी हो। उसे मेरे लम्बे बाल पसंद हैं, इसलिए चाहती हूँ इन्हें कटवा दूँ ताकि उसके मन को आघात लगे, वह मेरा नौकरी करना पसंद नहीं करता इसलिए लगता है कि कोई भी छोटी–मोटी नौकरी करने के लिए घर से निकलूँ ताकि वह दुखी हो। मेरे सामने हार जाए। लेकिन मैं ऐसा नहीं कर पाती इसलिए खीझकर यहाँ चली आती हूँ।

यहाँ कुछ विशेष प्रकार की अधिसंख्य स्त्रियों की उस मनोवृत्ति को प्रकट किया गया है जहाँ वे छोटी–मोटी बातों को लड़ाई का बहाना बनाती हैं और पति को नीचा दिखाने का प्रयास करती है।

7. बड़ी लड़की: मेरा अपना घर... हाँ। और मैं आती हूँ। कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूँ कि क्या चीज है वह इस घर से जिसे लेकर बार–बार मुझे हीन किया जाता है। (लगभग टूटते स्वर में) तुम बता सकती हो ममा कि कया चीज है वह? और कहाँ है वह? इस घर के खिड़कियों–दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुममें? डैडी मैं? किन्नी में? अशोक में? कहाँ छिपी है वह मनहूस चीज जो वह कहता है मैं इस घर से अपने अन्दर लेकर गयी हूँ? (स्त्री की दोनों बांहें हाथ में लेकर) बताओ ममा, क्या है वह चीज? कहाँ पर है इस घर में?

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – बिन्नी सावित्री से कहती है कि मैं इस घर में बार–बार इसलिए आती हूँ ताकि मनोज के कथानानुसार उस चीज को ढूंढ सकूँ जो मुझे सहज और स्वाभाविक नहीं रहने देती।

व्याख्या – बिन्नी सावित्री से कहती है कि हर बार पति के सामने मन का गुबार निकाल कर मुझे यही सुनना पड़ता है कि मैं इस घर से ही ऐसी चीज लेकर गई हूँ जो मुझे सहज और स्वाभाविक नहीं रहने देती तब मैं लड़कर यहाँ आती हूँ। अपने घर में बार–बार आती हूँ यह खोजने कि वह चीज क्या है? कहाँ है? जिसका उल्लेख करके मनोज बार–बार मुझे नीचा दिखाता है, हीन साबित करता है। बिन्नी दुखी, उदास होकर कहती है तो लगता है वह भीतर से टूट चुकी है। वह माँ से पूछती है कि बताओ वह चीज क्या है? कहाँ है? इस घर के खिड़की दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुममे? डैडी है बिन्नी और अशोक में? कहाँ है? किसमें छिपी है वह मनहूस, अशुभ चीज भाव या तत्त्व जिसे अपने साथ लेकर मैं यहाँ से गई हूँ? वह माँ का हाथ पकड़कर झकझोरते हुए जिद करती है कि वह उस चीज का पता बताए ताकि उस चीज का पता लगते ही वह उसे नष्ट कर अपने गृहस्थ जीवन को सुखी बना सके। वह नहीं जानती कि असंतुष्ट, अतृप्ति, असंतोष ही वह चीज, भाव, या संस्कार हैं जो वह अपनी माँ से इस घर से लेकर गई है जो उसे असहज बनाये रखते हैं। यह सारी परिस्थिति उन महिलाओं के क्षुद्र भावों की ओर संकेत करती है जिनके मूल में उनके पैतृक परिवार की, पीहर का परिवेश काम कर रहा होता है।

8. पुरुष एक : किसे सुना सकता हूँ? कोई है जो सुन सकता है? जिन्हें सुनना चाहिए, वे सब तो एक रबड़–स्टैंप के सिवा कुछ समझते नहीं मुझे। सिर्फ जरूरत पड़ने पर इस स्टैंप का ठप्पा लगाकर...।

स्त्री : यह बहुत बड़ी बात नहीं कह रहे तुम?

लड़का : (उसे रोकने की कोशिश में) ममा.....!

स्त्री : मुझे सिर्फ इतना पूछ लेने दे इनसे कि रबड़–स्टैंप के माने क्या होते हैं? एक अधिकार, एक रुतबा, एक इज्जत–यही न?

पुरुष एक : किसी माने में नहीं। मैं इस घर में एक रबड़–स्टैंप भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ बार–बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वजह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में?

संदर्भ – पूर्ववत

प्रसंग – महेन्द्रनाथ अपनी उपेक्षा से पीड़ित होकर पत्नी, बच्चों के सामने निम्न पंक्तियों में अपने मन का गुबार निकाल रहा है।

व्याख्या – महेन्द्रनाथ अपनी पत्नी सावित्री और बच्चों के सामने जोर–जोर से कहता है कि कितने साल का हो गया मैं? कितने साल से परिवार की देखरेख कर रहा हूँ लेकिन इस घर में हर कोई मेरी उपेक्षा करता है, मुझ पर व्यंग्य करता है मेरा यहाँ कोई सम्मान है या नहीं? उसकी बात सुनकर सावित्री चिढ़ कर कहती है कि यह रोना किसे सुना रहे हो? तब सावित्री की बात का उत्तर देते हुए महेन्द्रनाथ कहता है कि किसे सुनाऊँगा? इस घर के लोग मुझे केवल रबर स्टैंप समझते हैं। जैसे किसी कागज को, लेख को प्रमाणित करना हो तो लोग रबर स्टैंप निकालकर संबंधित अधिकारी या कार्यालय की सील लगा देते हैं फिर रबर स्टैंप को टेबल या आलमारी के किसी कोने में लापरवाही से डाल देते हैं। स्टैंप लगाते ही कागज मूल्यवान हो जाता है, लेकिन जिस स्टैंप ने इस कागज को मूल्यवान और अस्तित्त्ववान बनाया उसको उपेक्षित पड़ा रहने देते हैं। महेन्द्रनाथ का यही तात्पर्य है कि पिता हैं और पति हैं यह प्रमाणित करने के लिए ही उसका अस्तित्त्व है, वरना कोई उसे सम्मान नहीं देता। सावित्री चिढ़ कर कहती है कि रबर स्टैंप का मतलब–एक रुतबा, एक इज्जत, एक अधिकार है, लेकिन यह सब घर के लोगों को इन्होंने कब दिया? तात्पर्य यह है कि तुम रबर स्टैंप भी नहीं हो। महेन्द्रनाथ कहता है– हाँ, मैं रबर स्टैंप नहीं बल्कि रबर का एक टुकड़ा हूँ, बेकार जिसे रोज–रोज घिसा जाता है। मैं अस्तित्वहीन हूँ तो मुझे घर में नहीं रहना चाहिए। क्योंकि मेरे घर में रहने की कोई वजह नहीं है। मैं रहूँ तब भी, न रहूँ तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता। अपने ही परिवार में उपेक्षित पति की मनोदशा को ये शब्द मुखर कर रहे हैं।

9. पुरुष एक : (सिर हिलाता) हाँ....छोटी सी बात ही तो है यह। अधिकार, रुतबा, इज्जत–यह सब बाहर के लोगों से मिल सकती है इस घर को। इस घर का आज तक कुछ बना है, या आगे बन सकता है, तो सिर्फ बाहर के लोगों के भरोसे! मेरे भरोसे तो सब–कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही बिगड़ सकता है (लड़के की तरफ इशारा करके) यह आज तक बेकार क्यों घूम रहा है? मेरी वजह से। (बड़ी लड़की की तरफ इशारा करके) यह बिना बिताये एक रात घर से क्यों भाग गयी थी? मेरी वजह से। (स्त्री के बिलकुल सामने आकर) और तुम भी? तुम भी इतने सालों से क्यों चाहती रही हो कि.....?

स्त्री : (बौखलाकर, शेष तीनों से) सुन रहे हो तुम लोग?

पुरुष एक : अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी जिन्दगियाँ चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ, घरघुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।

स्त्री : मैं नहीं जानती, तुम सचमुच ऐसा महसूस करते हो या...?

पुरुष एक : सचमुच महसूस करता हूँ। मुझे पता है मैं एक कीड़ा हूँ जिसने अन्दर ही अन्दर इस घर को खा लिया है (बाहर के दरवाजे की तरफ चलता) पर अब पेट भर गया है मेरा। हमेशा के लिए भर गया है (दरवाजे के पास रुककर) और बचा भी क्या है जिसे खाने के लिए और रहता रहूँ यहाँ?

संदर्भ – पूवर्वत।

प्रसंग – घर में अपनी उपेक्षा से तिलमिलाया हुआ महेन्द्रनाथ पत्नी के सामने मन का गुबार निकालते हुए उसकी चारित्रिक कमजोरियों पर प्रकाश डाल रहा है।

व्याख्या – महेन्द्रनाथ कहता है कि रबरस्टैंप यानि– अधिकार, रुतबा और इज्जत। अगर मैं यह भी नहीं दे सकता, पिता और पति का सम्मान मिलना तो दूर जब मुझे रबर स्टैंप भी नहीं समझा जाता तो मैं इस घर में क्यों रहूँ। यह सब चीजें इस घर को सदा बाहर के लोगों से मिलती रही है। वे ही इस घर को अधिकार, रुतबा, इज्जत देते, दिलाते रहे हैं और आगे भी ऐसा ही होगा। वह सावित्री के पुरुष मित्रों के साथ अनैतिक संबंधों पर व्यंग्य करता है। कहता है मेरे कारण तो इस घर में सब कुछ बिगड़ता ही रहा है। लड़का बेकार, आवारा होकर घूम रहा है। लड़की किसी के साथ घर से भाग गई और तुम भी इतने वर्षों से यही चाहती रही हो कि कोई ऐसा मिल जाए जिसके साथ तुम संतुष्ट हो सको और घर छोड़कर जा सको। मैं अपनी, तुम्हरी, बेटा–बेटी की सबकी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार हूँ, तो मुझे इस घर में रहने का क्या अधिकार है? लेकिन मैं पड़ा हूँ यहीं, क्योंकि मैं आरामतलब हूँ, घरघुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लग गया है मैं काम करने के लिए बाहर जाकर परिश्रम नहीं करना चाहता तुम्हारी कमाई खाकर ऐश करता हूँ।

सावित्री हस्तक्षेप करते हुए कहती है कि मुझे नहीं मालूम कि तुम ऐसा अनुभव करते हो। सावित्री महेन्द्रनाथ को नकारा के साथ आत्मसम्मानहीन पुरुष समझती है। महेन्द्रनाथ कहता है कि मैं अनुभव करता हूँ। जैसे मैं एक कीड़ा हूँ घुन हूँ जिसने अंदर–अंदर ही परिवार के सुखी लहलहाते वृक्ष को खाकर, खोखला कर दिया है। लेकिन अब मेरी सहनशक्ति खत्म हो गई है, मेरा पेट भर गया है, अब यहाँ इस घर में और नहीं रह सकता। वह दुखी और आहत भाव से घर से निकल जाता है।

10. स्त्री : तू ठहर मुझे बात करने दे। (लड़के से) दिलचस्पी तो मेरी सिर्फ तीन चीजों में है– दिन भर ऊँघने में, तसवीरें काटने में और घर की यह चीज वह चीज ले जाकर....।

लड़का : (कड़वी नज़र से उसे देखता) इसे घर कहती हो तुम?

स्त्री : तो तू इसे क्या समझकर रहता है यहाँ?

लड़का : मैं इसे...।

बड़ी लड़की : (उसे बोलने न देने के लिए) देख अशोक, ममा के यह सब कहने का मतलब सिर्फ इतना है कि....।

लड़का : मैं नहीं जानता मतलब? तू चली गयी है यहाँ से, मैं तो अभी यहीं रहता हूँ।

स्त्री : (हताश भाव से) क्यों नहीं तू भी फिर....?

बड़ी लड़की : (झिड़कने के स्वर में) कैसी बात कर रही हो, ममा।

स्त्री : कैसी बात कर रही हूँ? यहाँ पर सब लोग समझते क्या हैं मुझे? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा–पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है? मगर किसी के मन में जरा सा भी ख्याल नहीं है इस चीज के लिए कि कैसे मैं...।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – महेन्द्रनाथ के घर से जाने के बाद अशोक और सावित्री यानि माँ–बेटे के बीच बहस हो रही है। अशोक घर को घर नहीं मानता जिससे सावित्री आहत होती है।

व्याख्या – सावित्री का बेटा अशोक बेकार है और आवारा गर्दी करता है। वह जिस लड़की से प्रेम करता है उसे घर की चीजें ले जाकर दे देता है। बिना बताए कई दिनों तक घर से गायब रहता है। सावित्री उसे डांटते हुए कहती है कि तू नौकरी नहीं करना चाहता, तेरी किसी चीज में दिलचस्पी है भी या नहीं? तुझे तीन ही चीजों में दिलचस्पी दिखाई देती है– दिन–भर ऊँघने में, तसवीरें काटने में और घर की चीजें ले जाकर उस लड़की को देने में। अशोक तिलमिलाकर कहता है– इस घर को घर कहती हो तुम? सावित्री पूछती है कि तू उसे घर नहीं समझता तो क्या समझकर यहाँ रहता है। बहन को भी अशोक कड़ा उत्तर देता है कि तू तो यहाँ से चली गई, मैं यहाँ रहता हूँ इसलिए मैं सब देखता हूँ समझता हूँ। दूसरे पुरुषों के साथ भटकती माँ, नाकारा पिता, कलह का वातावरण, अभाव इन सबके बीच शांति और सुख खो गए हैं जो घर को घर बनाते हैं। घर के सदस्य मुँह खोलते ही एक–दूसरे पर व्यंग्य बाण चलाते हैं। प्रेम की छाया भी जिस जगह न हो उसे अशोक घर नहीं मानता। वह सोचता है ऐसे दमघोंटू वातावरण से घबराकर ही उसकी बहन दूसरे लड़के के साथ भाग गई। बेटे के तात्पर्य को समझकर सावित्री भीतर से लज्जित होती हुई भी अपने आचरण को सही ठहराने के लिए कहती है कि – बहन चली गई, महेन्द्रनाथ भी आरोप लगाकर घर से चला गया, तू भी क्यों नहीं चला जाता अगर तेरा दम घुट रहा है तो। क्या घर के ऐसे वातावरण के लिए मैं ही उत्तरदायी हूँ जो सभी मुझ पर आरोप लगा रहे हैं। मैं दिन–रात काम करके घर चला रही हूँ, मेरी थकान और आवश्यकताओं का किसी को ध्यान नहीं है। सब मुझे मशीन समझते हैं जो सबके लिए दिन–रात आटा–पीसकर सबका पेट भरती है। कोई यह समझता ही नहीं कि इस घर को चलाने के लिए मुझे क्या–क्या करना पड़ता है।

11. लड़का : जिनके आने से हम जितने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नज़र में।

स्त्री : (कुछ स्तब्ध होकर) मतलब?

लड़का : मतलब वही जो मैंने कहा है। आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने, किस वजह से बुलाया है?

स्त्री : तू क्या समझता है, किस वजह से बुलाया है?

लड़का : उसकी किसी बड़ी चीज की वजह से। एक को कि वह इन्टलैक्चुअल बहुत बड़ा है। दूसरे को कि उसकी तनख्वाह पाँच हजार है। तीसरे को कि उसकी तख्ती चीफ कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं–उसकी तनख्वाह को, नाम को, रुतबे को बुलाया है।

स्त्री : तू कहना क्या चाहता है इससे? कि ऐसे लोगों के आने से इस घर के लोग छोटे हो जाते हैं।

लड़का : बहुत–बहुत छोटे जो जाते हैं।

स्त्री : और मैं उन्हें इसलिए बुलाती हूँ कि...।

लड़का : पता नहीं किसलिए बुलाती हो, पर बुलाती सिर्फ ऐसे ही लोगों को हो। अच्छा तुम्हीं बताओ, किसलिए बुलाती हो?

स्त्री : इसलिए कि किसी तरह इस घर का कुछ बन सके। कि मेरे अकेली के ऊपर बहुत बोझ है इस घर का। जिसे कोई और भी मेरे साथ ढोने वाला हो सके। अगर मैं कुछ खास लोगों के साथ संबंध बनाकर रखना चाहती हूँ तो अपने लिए नहीं, तुम लोगों के लिए। पर तुम लोग इससे छोटे होते हो, तो मैं छोड़ दूंगी कोशिश। हाँ, इतना कहकर कि मैं अकेले दम इस घर की जिम्मेदारियाँ नहीं

उठाती रह सकती और एक आदमी है जो घर का सारा पैसा डुबोकर सालों से हाथ पर हाथ धरे बैठा है। दूसरा अपनी कोशिश से कुछ करना तो दूर, मेरे सिर फोड़ने से भी किसी ठिकाने लगना अपना अपमान समझता है। ऐसे में मुझसे भी नहीं निभ सकता। जब और किसी को यहाँ दर्द नहीं किसी चीज का, तो अकेली मैं ही यों अपने को चीखती रहूँ रात–दिन? मैं भी क्यों न सुर्खरू होकर बैठी रहूँ अपनी जगह? उससे तो तुममें से कोई छोटा नहीं होगा।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – सावित्री का बॉस घर आता है। सावित्री अशोक को उससे मिलवाना चाहती है ताकि अशोक को कहीं नौकरी दिलवा दे। लेकिन अशोक बॉस की खिल्ली उड़ाता है, उपेक्षा करता है और उसका वन मानुष जैसा कार्टून बनाता है। बॉस के जाने के बाद दोनों माँ बेटे में बहस होती है।

व्याख्या – अशोक कहता है माँ से कि तुम हमेशा ऐसे लोगों को क्यों बुलाती हो जिनके आने से हम छोटे लोग और छोटे हो जाते हैं। वे अपना बड़प्पन दिखाते हैं और हमारा हीनताबोध गहरा जाता है। एक को तुमने उसकी पाँच हजार तनख्वाह के कारण , दूसरे को उसके इन्टलैक्चुअल होने के कारण, तीसरे को उसके चीफ कमिश्नर होने के कारण घर पर बुलाया। तुम आदमी को नहीं उसकी तनख्वाह को, नाम को, रुतबे को बुलाती हो, जिसके कारण हमारी हीनभावना बढ़ जाती है इसलिए मैं ऐसे लोगों से नहीं मिलना चाहता। वे दाता के भाव में बात करते हैं और हमें भिखारी समझते हैं।

सावित्री कहती है कि मैं ऐसे लोगों को इसलिए बुलाती हूँ कि इनसे संबंध अच्छे बने रहें। ताकि इनसे लाभ उठाकर इस घर का कुछ भला कर सकूँ। तुम्हारे नाकारा पिता को ही कोई काम दिला दें या तुम्हें नौकरी दिलवा दें शायद ये लोग, ताकि इस घर का भार जो मुझे अकेले ढोना पड़ रहा है कुछ हल्का हो जाए, बंट जाए। लेकिन अगर तुम्हें इनके आने से हीनताबोध अनुभव होता है तो नहीं बुलाऊंगी। लेकिन अब मैं भी अकेले इस घर का भार नहीं ढो सकती। सभी अपना–अपना इंतजाम कर लो। महेन्द्र व्यवसाय में वर्षों की कमाई गंवा कर हाथ–पर–हाथ धरे बैठें हैं, न स्वयं कुछ करते हैं घर के लिए, न मेरी सहायता से कोई काम बन रहा हो तो उसे स्वीकार करते हैं, उल्टा आरोप लगाते हैं। जब सभी निश्चिंत बैठे हैं इस घर में और सबके जीवन से आंखें मूंदकर तो मैं ही क्यों हैरान रहूँ। मैं भी ठाठ से बैठी रहूँगी। किसी की नौकरी की चिंता में बॉस को नहीं बुलाऊंगी ताकि तुम लोग हीनता बोध अनुभव न करो। अब से मैं भी घर परिवार की चिन्ता छोकड़कर केवल अपने सुख और आराम के बारे में सोचूँगी। संकेत इस ओर है कि स्त्री यदि किसी बाहरी पुरुष से चाहे नेक इरादे से ही संबंध बढ़ाए तो उसका चरित्र संहेहास्पद हो जाता है। केवल पति ही नहीं अपितु पुत्र भी उसके इस व्यवहार को नहीं सह पाता।

12. लड़का : और मैं ही शायद इस घर में सबसे ज्यादा नाकारा हूँ।... पर क्यों हूँ?

बड़ी लड़की : यह... यह मैं कैसे बता सकती हूँ?

लड़का : कम से कम अपनी बात तो बता ही सकती है। तू यह घर छोड़कर क्यों चली गयी थी?

बड़ी लड़की : (अप्रतिभ होकर) मैं चली गयी थी.... चली गयी थी...क्योंकि....।

लड़का : क्योंकि तू मनोज से प्रेम करती थी! खुद तुझे ही यह गुट्टी बहुत कमजोर नहीं लगती?

बड़ी लड़की : (रुआंसी पड़कर) तो तू मुझसे...मुझसे भी कह रहा है कि...?

लड़का : मैंने कहा था तुझसे...मत कर बात।

स्त्री : (अत्यधिक गंभीर) तुझे पता है न, तूने क्या बात कही है? पता है न? तो ठीक है। आज से मैं सिर्फ अपनी जिन्दगी को देखूंगी...तुम लोग अपनी–अपनी जिन्दगी को खुद देख लेना।

मेरे पास अब बहुत साल नहीं हैं जीने को। पर जितने हैं, उन्हें मैं इसी तरह और निभाते हुए नहीं

काटूंगी। मेरे करने से जो कुछ हो सकता था इस घर का, हो चुका आज तक, मेरी तरफ से यह अन्त है उसका...। निश्चित अन्त।

संदर्भ – उपरोक्त।

प्रसंग – सावित्री कहती है कि मैं अकेले अब इस घर का भार नहीं ढो सकती। अशोक कहता है बिन्नी से कि जब इनसे अकेले नहीं निभता तो क्यों निभा रही हैं? बेटे की बात से सावित्री आहत होती है तथा तीनों के बीच निर्णयात्मक संवाद होता है।

व्याख्या – सावित्री को सुनाते हुए अशोक बिन्नी से कहता है कि ये कई बार इस बात को कह चुकी है कि अकेले भार ढो रही हैं, अब नहीं निभता, तो क्यों निभा रही हैं? किसके लिए और क्यों कर रही है? बिन्नी हस्तक्षेप करते हुए कहती है कि ममा ये सब स्वयं के लिए नहीं बल्कि इस घर के लोगों के लिए कर रही हैं। किन्नी के लिए... डैडी के लिए तेरे और मेरे लिए कर रही हैं। अशोक कहता है– गलत है। तेरे लिए करती तो तू इस वातावरण से घबराकर घर छोड़कर न भागती। तू चली गई और कलह से घबराकर डैडी भी चले गए। किन्नी दिनों–दिन बिगड़ती जा रही है। न उसकी शिक्षा की ओर, न संस्कारों की ओर इनका ध्यान है। माँ होने के नाते जो इन्हें करना चाहिए वह करतीं तो घर क्या इस रूप में होता। एक मैं ही नकारा हूँ, इसके पीछे वही घुटन है जो तेरे घर छोड़कर जाने के पीछे थी। बिन्नी कहती है– मैं घुटन के कारण घर से नहीं भागी बल्कि इसलिए गई क्योंकि मैं मनोज से प्रेम करती थी। अशोक उसका मजाक उड़ाते हुए कहता है कि तेरी यह दलील झूठी है, कमजोर है, यह तू भी जानती है। क्योंकि तू मनोज से प्रेम नहीं करती थी बल्कि उसने तुझे प्रेम किया और उज्ज्वल भविष्य का सपना दिखाया। तुझे लगा घर के इस घुटन भरे वातावरण से निकलने का यही एक रास्ता है और तू चली गई। अशोक और बिन्नी की बहस सुनकर सावित्री आहत होती है। बेटे के मन में उसके लिए इतनी कड़वाहट, अपमान और उपेक्षा है यह जानकर वह गहन दुख का अनुभव करती है और अशोक से कहती है –तूने आज बहुत बड़ी बात कह दी, इसे ध्यान रखना। अब तुम सब अपना–अपना ध्यान रखो, मेरी तरफ से इस उत्तरदायित्व का आज निश्चित अंत हो गया समझो। मेरी बची हुई थोड़ी सी जिन्दगी है उसे अब मैं अपन लिए अपने तरीके से जीऊँगी। घर के लिए जितना कर सकती थी किया और जो पाया वह देख रही हूँ। इसलिए अब मैं स्वयं को सारे उत्तरदायित्वों से मुक्त करती हूँ। अपनी मर्यादाओं को भंग करने वाले लोगों का परिवार अंततोगत्वा किस प्रकार टूटने की ओर बढ़ता है, वह परिस्थिति यहाँ उभरकर सामने आई हैं।

13. पुरुष चार : तुम किसी तरह छुटकारा नहीं दे सकतीं उस आदमी को?

स्त्री : छुटकारा? मैं? उन्हें? कितनी उलटी बात है!

पुरुष चार : उलटी बात नहीं है। तुमने जिस तरह बांध रखा है उसे अपने साथ..।

स्त्री : उन्हें बाँध रखा है? मैंने अपने साथ? सिवा आपके कोई नहीं कह सकता था यह बात।

पुरुष चार : क्योंकि और कोई जानता भी तो नहीं उतना जितना मैं जानता हूँ।

स्त्री : आप हमेशा यही मानते आये हैं कि आप बहुत ज्यादा जानते हैं। नहीं?

पुरुष चार : महेन्द्रनाथ के बारे में, हाँ। और जानकर ही कहता हूँ कि तुमने इस तरह शिकंजे में कस रखा है उसे कि वह अब अपने दो पैरों पर चल सकने लायक भी नहीं रहा।

स्त्री : अपने दो पैरों पर! अपने दो पैर कभी थे भी उसके पास?

पुरुष चार : कभी की बात क्यों करती हो? जब तुमने उसे जाना, तब से दस साल पहले से मैं उसे जानता हूँ।

स्त्री : इसलिए शायद जब मैंने जाना, तब तक अपने दो पैर रहे ही नहीं थे उसके पास।

पुरुष चार : मैं जानता हूँ सावित्री, कि तुम मेरे बारे में क्या–क्या सोचती और कहती हो...।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – पुरुष चार अर्थात् जुनेजा और सावित्री के बीच सावित्री के गृहस्थ जीवन और महेन्द्रनाथ को लेकर वार्तालाप हो रहा है।

व्याख्या – जुनेजा सावित्री से कहता है कि मेरा मित्र महेन्द्रनाथ गलत नहीं है। उसका भाग्य उसका साथ नहीं दे रहा है। वह तुम्हें और इस घर को बहुत चाहता है इसलिए तुम लोगों की उपेक्षा और अपमान पाकर भी तुमसे बंधा हुआ है। तुम अपनी अतृप्ति और सब कुछ पा लेने की महत्वाकांक्षा में कहाँ–कहाँ जाती हो, वह सब जानता है फिर भी तुमसे बंधा है। तुम उसे छोड़ क्यों नहीं देती? उसे छुटकारा दे दोगी तो वह फिर से एक नए विश्वास के साथ अपने पैरों पर खड़ा हो सकेगा। अभी बार–बार तुम्हारे ताने सुनकर, उसका आत्मविश्वास खो गया है। उसे छोड़ दो। सावित्री कहती है कि कितनी उलटी बात कर रहे हो। मैं क्यों उन्हें बांध कर रखूंगी। वे मेरे पति हैं लेकिन तुम्हारे मित्र अधिक हैं इसलिए तुम मुझसे ज्यादा उन्हें जानते हो शायद। रही बात पैरों पर खड़े होने की तो मुझे नहीं लगता कि उनके पास कभी खुद के दो पैर थे। अर्थात् वे हमेशा तुम्हारी बैसाखी लेकर चलते रहे स्वयं कोई निर्णय लेने की क्षमता उनमें थी ही नहीं। पहले भी तुझसे पूछकर हर कार्य करते थे आगे भी मुझसे ज्यादा उन्हें तुम्हारी आवश्यकता होगी और ऐसा ही तुम लोग चाहते हो। जुनेजा सावित्री के व्यंग्य बाणों को सुन कर कहता है कि तुमसे विवाह के दस वर्ष पहले से मैं महेन्द्र को जानता हूँ। तुमने ही उसे ऐसा बनाया है पहले वह ऐसा नहीं था। लेकिन तुम मुझ पर ही आरोप लगा रही हो। मैं जानता हूँ मेरे संबंध में तुम बहुत कुछ सोचती हो और कहती हो लेकिन मैं बुरा नहीं मानूंगा। सामान्य स्त्री स्वभाव के अनुसार सावित्री को अपना पति नाकारा व निकम्मा प्रतीत हो रहा जबकि जुनेजा के विचार में विवाह बंधन के कारण उसकी यह दशा हुई है।

14. स्त्री : (खड़ी होती) मुझे उस असलियत की बात करने दीजिए जिसे मैं जानती हूँ।.. एक आदमी है। घर बसाता है। क्यों बसाता है? एक जरूरत पूरी करने के लिए। कौन–सी जरूरत! अपने अन्दर के किसी उसको ...एक अधूरापन कह लीजिए उसे... उसको भर सकने की। इस तरह उसे अपने लिए.. .अपने में....पूरा होना होता है। किन्हीं दूसरों को परा करते रहने में ही जिन्दगी नहीं काटनी होती। पर आपके महेन्द्र के लिए जिन्दगी का मतलब रहा है... जैसे सिर्फ दूसरों के खाली खाने भरने की ही एक चीज है वह। जो कुछ वे दूसरे उससे चाहते हैं, उम्मीद करते हैं या जिस तरह वह सोचते हैं उनकी जिन्दगी में उसका इस्तेमाल हो सकता है।

पुरुष चार : इस्तेमाल हो सकता है?

स्त्री : नहीं? इस काम के लिए और कोई नहीं जा सकता, महेन्द्रनाथ चला जाएगा। इस बोझ को और कोई नहीं ढो सकता, महेन्द्रनाथ ढो लेगा। प्रेस खुला, तो भी। फैक्टरी शुरू हुई, तो भी। खाली खाने भरने की जगह पर महेन्द्रनाथ और खाने भर चुकने पर? महेन्द्रनाथ कहीं नहीं। महेन्द्रनाथ अपना हिस्सा पहले ही ले चुका है, पहले ही खा चुका है और उसका हिस्सा। (कमरे के एक–एक सामान की तरफ इशारा करती) ये ये ये दूसरे–तीसरे–चौथे दरजे की घटिया चीजें, जिनसे वह सोचता था, उसका घर बन रहा है।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग–महेन्द्रनाथ को लेकर जुनेजा और सावित्री के बीच बहस हाती है। इन पक्तियों में सावित्री महेन्द्रनाथ और उसके मित्रों की वास्तविक मनःस्थिति पर प्रकाश डाल रही है।

व्याख्या – सावित्री जुनेजा पर आरोप लगाते हुए कहती है कि तुम जैसे मित्रों ने महेन्द्र का इस्तेमाल अपने लाभ के लिए किया लेकिन महेन्द्र इस बात को समझता ही नहीं। वह हर बात तुमसे पूछे बिना नहीं मानता, हर काम करने के लिए तुमसे पूछता है कि यह सही है या नहीं। जो तुम सही कहो, वही उसके लिए सही है।

सावित्री कहती है– आदमी अपनी जिन्दगी का अधूरापन मिटाने, खालीपन भरने के लिए विवाह करता है, घर बसाता है लेकिन महेन्द्रनाथ के लिए पत्नी और घर से अधिक महत्वपूर्ण था मित्रों के खालीपन को भरना। जब प्रेस का काम शुरू हुआ, जब फैक्टरी शुरू हुई तब भी जहाँ कोई काम करने के लिए नहीं है उसे तुमने महेन्द्र के ऊपर डाल दिया और जब उस जगह पर कोई आ गया तो महेन्द्र को निकाल दिया और निर्णय भी दे दिया कि महेन्द्र ने जितना रुपया लगाया था उतना हिस्सा वह ले चुका है, और वह हिस्सा था तीसरे–चौथे दर्जे की घटिया कुर्सियाँ, मेजें...। महेन्द्र इस सामान के रूप में अपना हिस्सा लाकर घर में रखता था और सोचता था कि उसका घर बन रहा है। वह बेवकूफ बनता रहा। काम वह करता था और लाभ तुम लोग उठाते थे और उसे यह कहा गया कि उसके हिस्से का पैसा डूब गया उसे नुकसान हुआ और तब से वह नकारा घूम रहा है, जिसके उत्तरदायी तुम लोग हो। सावित्री जुनेजा को धिक्कारती है कि उसके पति और गृहस्थी को बर्बाद करने वाले कोई और नहीं उसके मित्र ही हैं, जिन्होंने मित्र बनकर शत्रुओं जैसा कार्य किया।

15. वही महेन्द्र जो दोस्तों के बीच दब्बू–सा बना हलके–हलके मुस्कराता है, घर आकर एक दरिंदा बन जाता है। पता नहीं, कब किसे नोंच लेगा, कब किसे फाड़ खायेगा! वह ताव में अपनी कमीज को आग लगा लेता है। कल वह सावित्री की छाती पर बैठकर उसका सिर जमीन से रगड़ने लगता है। बोल, बोल, चलेगी उस तरह कि नहीं जैसे मैं चाहता हूँ? मानेगी वह सब कि नहीं, जो मैं कहता हूँ? पर सावित्री फिर भी नहीं चलती। वह सब नहीं मानती। वह नफरत करती है इस सबसे–इस आदमी के ऐसा होने से। वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिए–एक...पूरा... आदमी। गला फाड़कर वह यह बात कहती है। कभी इस आदमी को ही वह आदमी बना सकने की कोशिश करती है। कभी तड़पकर अपने को इससे अलग कर लेना चाहती है। पर अगर उसकी कोशिशों से थोड़ा भी फर्क पड़ने लगता है इस आदमी में, तो दोस्तों में इसका गम मनाया जाने लगता है। सावित्री महेन्द्र की नाक में नकेल डालकर उसे अपने ढंग से चला रही है। सावित्री बेचारे महेन्द्र की रीढ़ तोड़कर उसे किसी लायक नहीं रहने दे रही है। जैसा कि आदमी न होकर बिन हाड़–माँस का पुतला हो वह एक–बेचारा महेन्द्र!

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – सावित्री जुनेजा पर आरोप लगाती हुई महेन्द्रनाथ के बर्बाद होने के लिए उसकी मित्र मंडली को दोषी ठहराती है।

व्याख्या – सावित्री जुनेजा से कहती है कि महेन्द्र ने मुझसे विवाह करके अच्छे गृहस्थ की तरह जीना आरंभ किया तो तुम लोगों को बुरा लगा। तुम्हें लगा तुम्हारे मित्र को मैंने छीन लिया। अब वह तुम्हारा मनोरंजन और बेगार करने के लिए खाली नहीं था इसलिए तुमने उसे शिक्षा देना शुरू किया और उसे मेरी जिन्दगी और गृहस्थी से विमुख कर दिया। परिणाम यह हुआ कि महेन्द्र मित्रों के बीच दब्बू और सीधा सादा शालीन बना मुस्कुराता रहता है लेकिन घर के अंदर घुसते ही दरिंदा बन जाता है। चीखता है, चिल्लाता है, मार–पीट करता है, पत्नी की छाती पर चढ़कर उसके बाल नोंचता है, सिर दीवार से रगड़ देता है लगता है जैसे सबको फाड़ कर खा जाएगा। पत्नी को अपने अनुसार चलने के लिए विवश करता है। ऐसे चलो, ऐसे पहनो, ऐसे खाओ, ऐसे मिलो, बात करो। पर नहीं, वह हार जाता है। मैं उसकी दरिंदगी से डरकर उसके अनुसार चलने से मना कर देती हूँ। मैं नफरत करती हूँ ऐसे दरिंदे आदमी से। मुझे एक पूरा आदमी चाहिए। ऐसा आदमी जो आदमियत की और पति की, प्रेमी की, हर कसौटी पर खरा उतरे। मैंने कभी महेन्द्र को ऐसा आदमी बनाने का प्रयत्न किया भी लेकिन नहीं बना सकी तो हार कर उससे अलग होने का प्रयत्न भी किया, वह भी नहीं कर पाई हूँ। जब कभी महेन्द्र में थोड़ा परिवर्तन आया, उसे मुझसे और

घर से लगाव हुआ, उसने मुझे और घर को समय देना शुरू किया तो उसके मित्रों में दुख की लहर फैल गई कि बेचारा महेन्द्र कठपुतली बन गया है। बीबी उसे नकेल डालकर नचा रही है। उसकी कमर तोड़कर उसे नकारा बना रही है। अर्थात् मित्रों की दृष्टि में पत्नी और घर को समय देना पुरुषार्थ के विरूद्ध माना जाता मित्रों की इन टीका टिप्पणियों से प्रभावित होकर महेन्द्र फिर बदल जाता– और मित्र प्रसन्न हो जाते कि उनका बेगार ढोने वाला वापस आ गया है। सावित्री जुनेजा को सीधे सीधे अपनी गृहस्थी की बर्बादी का जिम्मेदार ठहराती है।

16. पुरुष चार : असल बात इतनी ही है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिंदगी में, तो साल–दो साल बाद, तुम यही महसूस करतीं कि तुमने गलत आदती से शादी कर ली है। उसकी जिंदगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्र, कोई जुनेजा, काई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचतीं, यही सब महसूस करतीं। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है– कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना कुछ भी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करतीं, तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहतीं। वह आदमी भी इसी तरह तुम्हें अपने आसपास सिर पकड़ता और कपड़े फाड़ता नजर आता...और तुम।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – सावित्री के द्वारा लगाए गए आरोप सुनकर जुनेजा अत्यंत गंभीरता के साथ उसे उसके वास्तविक चरित्र से परिचित कराता है और कहता है कि सावित्री अपनी बर्बाद गृहस्थी के लिए तुम स्वयं उत्तरदायी हो।

व्याख्या – सावित्री अपनी पथभ्रष्टता को न्यायसंगत ठहराने के लिए जुनेजा पर आरोप लगाती है कि उसने यदि उसके पति का शोषण करके उसे नाकारा और आत्मविश्वासहीन न बनाया होता तो गृहस्थी चलाने के लिए उसे उतना परिश्रम न करना पड़ता, जितना वह कर रही है। इस पर जुनेजा उत्तर देता है कि तुम अपने आप को सही सिद्ध करने के लिए महेन्द्र को दोषी ठहरा रही हो लेकिन वास्तव में दोषी तुम हो। तुम अतृप्त हो, कुंठित हो, महत्वाकांक्षी हो, तुम एक साथ सब कुछ पा लेना चाहती हो। किसी एक आदमी में सब कुछ मनचाहा पा लेना स्वाभाविक नहीं है लेकिन यह बात तुम न समझती हो, न मानती हो इसलिए महेन्द्र तुम्हें अपूर्ण लगता है और पूर्णता की खोज में तुम एक पुरुष से दूसरे और दूसरे से तीसरे के पास भटकती रही हो लेकिन पूर्णता और स्थायित्व तुम्हें कहीं–नहीं मिला, मिल भी नहीं सकता क्योंकि किसी मनुष्य को सब कुछ नहीं मिलता। महेन्द्र की जगह कोई भी आदमी होता, जुनेजा, जगमोहन, शिवजीत, तुम उससे विवाह के साल–दो–साल बाद यही सोचती जो आज सोच रही हो। तुम्हें एक साथ सब कुछ एक ही जगह नहीं मिलता और तुम इसी तरह खाली, अपूर्ण और अतृप्त अनुभव करतीं। वह आदमी भी तुम्हें महेन्द्र की तरह दरिंदा, कपड़े फाड़ता, सिर फोड़ता नज़र आता। तुम इसी तरह उसकी अपूर्णता की शिकायत करतीं।

जुनेजा का तात्पर्य है कि अपूर्णता, असंतुष्टि सावित्री के अंदर है वह सत्य को स्वीकार न करने एक असंभव सी चीज पूर्णता को पाने के लिए एक पुरुष से दूसरे पुरुष की यात्रा करती हुई पतित हो रही है और गृहस्थी बर्बाद कर रही है जिसका आरोप वह पति पर मढ़ रही है। वैवाहिक संबंधों में एक दूसरे को अपने सांचे में ढालने की कोशिश प्रायः पति–पत्नी को असफलता ही हाथ लगती है, इस तथ्य की कटुता इन शब्दों में नाटककार ने अत्यंत कुशलतापूर्वक चित्रित की है।

2.5 चरित्र चित्रण

आधे–अधूरे के सभी पात्र भारतीय संस्कृति से भटके और पाश्चात्य संस्कृति से संक्रमित दिखाई देते हैं।

महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने में लगी स्त्री सावित्री पथभ्रष्ट प्रतीत होती है तो पुरुष महेन्द्रनाथ और अशोक नकारा, अकर्मण्य, आलसी और परजीवी प्रतीत होते हैं। आत्मसम्मान और पौरुष से हीन दिखाई देते हैं। किन्नी, बिन्नी, सावित्री सभी असंतुष्ट, अंदर के अधूरेपन को भरने के लिए बेचैन, गलत मार्ग पर चलती हुई, कुंठित, हीनता–ग्रंथि का शिकार और अपने–अपने वक्त में एकाकी दिखाई देती हैं। मोहन राकेश ने अन्य पुरुष पात्रों–सिंघानिया, जगमोहन, जुनेजा, मनोज सभी को भोग–विलास में रत, स्वार्थी, शोषक एवं कुसंस्कारी दिखाकर पाश्चात्य सभ्यता से आच्छादित समाज के प्रतिनिधियों की ओर संकेत किया है जो भावनाओं का, मित्रता का लाभ उठाकर केवल स्वयं का भला करते हैं। यह नाटक असंतुष्ट अधूरेपन से ग्रस्त पात्रों का दस्तावेज है। कथा के अनुकूल पात्रों का चयन किया गया है, जिनकी वेशभूषा, भाषा, संवाद एवं प्रवृत्ति प्रभावशाली है जो नाटक को जीवंत बनाती है। आधुनिक मध्यवर्गीय समाज में जो विशेष रूप से महानगरों में बसते हैं, ऐसे चरित्रों की भरमार है। अनेक सावित्रियाँ, किन्नियाँ, महेन्द्रनाथ और अशोकों से समाज भर गया है। असंतुष्टि, आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति, ज्यादा पाने की होड़, कम समय और कम मेहनत कर सब कुछ एक साथ ज्यादा से ज्यादा पाने की होड़ में लगे भटकते अशोकों, सावित्रियों से समाज पटा पड़ा है। यह पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के दुष्परिणाम हैं जिनको दिखाने के लिए ही संभवतः मोहन राकेश ने ऐसे पात्रों का चयन किया जो कथा की कसौटी पर खरे उतरते हैं। चरित्रों के चयन की दृष्टि से भी यह सफल नाटक है।

2.5.1 महेन्द्रनाथ

महेनद्रनाथ नाटक का मुख्य परुष पात्र है। यह सावित्री का पति है तथा बिन्नी, किन्नी और अशोक का पिता है। व्यवसाय में मित्रों पर निर्भरता और विश्वास के कारण सारा धन गंवाकर अब बेकार बैठा है। यह निकम्मा और दब्बू प्रतीत होता है क्योंकि सावित्री की कमाई पर पलता है और उसके पुरुष मित्रों से उसकी निकटता देखकर यदा–कदा व्यंग्य करता है। बहस करता है और दो–दो, तीन–तीन दिन के लिए घर से गायब होकर मित्रों के घर पड़ा रहता है। महेन्द्रनाथ गैर जिम्मेदार है वह न घर संभालने की जिम्मेदारी उठाता है न बच्चों की। अगर वह बच्चों को प्यार, अनुशासन एवं संस्कार सिखाता तो घर इतना बिखरा हुआ और तनावग्रस्त नहीं होता। नौकरी से लौटने पर सावित्री बच्चों को पिता के साथ बैठकर पढ़ते देखती, घर को व्यवस्थित देखती तो उसके अंदर कार्य करने की लगन और उत्साह बढ़ जाता। वह सारी थकान भूलकर पति और बच्चों के प्यार तथा सहानुभूति से जीवंतता का अनुभव करती। लेकिन महेन्द्रनाथ घर का मुखिया होते हुए भी इस दायित्व को नहीं समझता। उसे यहाँ–वहाँ भटकते, बिगड़ते बच्चों की चिंता नहीं है। उसकी खीझ का एक मात्र केन्द्र सावित्री है। महेन्द्रनाथ पत्नी को अमानवीय तरीके से पीटता, प्रताड़ित करता हुआ क्रूर पुरुष भी है जो असफल पुरुषार्थ की हीनता को कम करने के लिए पत्नी को प्रताड़ित करता है। लेकिन वह हार जाता है क्योंकि उसकी प्रताड़ना के कारण उसके अमानवीय व्यवहार के कारण उसके चरित्र का खोखलापन उजागर होता है, जिससे पत्नी और बच्चे न केवल दूर हो जाते हैं बल्कि कोई उसका सम्मान भी नहीं करता। सावित्री खुले आम एक के बाद एक पुरुषों के साथ घूमती है। उसे दूसरे पुरुषों के साथ संबंध बनाकर महेन्द्र को हीन दिखाने में मजा आने लगता है। वह घर छोड़कर जाने के लिए उतावली है और बार–बार कहती है कि जिस दिन कोई ठीक–ठीक आधार मिल गया वह चली जाएगी। आधार से तात्पर्य ऐसा पुरुष जो पूर्ण हो, सक्षम हो, जो सावित्री की कामनाओं की कसौटी पर खरा उतरे। जब सावित्री किसी पुरुष मित्र को घर बुलाती है तो महेन्द्रनाथ नपुंसक की तरह किसी काम का बहाना करके घर से बाहर चला जाता है। गृहस्वामी होते हुए भी उसका व्यवहार नौकर से भी बदत्तर है। वह स्वयं खीझ कर कहता है कि उसकी हैसियत एक रबर के टुकड़े के समान है। महेनद्रनाथ में निर्णय लेने की क्षमता नहीं है। वह हर निर्णय अपने मित्रों से पूछ कर करता है। उसमें आत्मदृढ़ता भी नहीं है, वह बार–बार बहस करके घर छोड़कर जाता है, लेकिन फिर सावित्री के पास लौट आता है, क्योंकि वह उससे प्रेम करता है। अपनी कमजोरियों को महेन्द्रनाथ समझता है इसलिए वह कहता है कि – मैं कीड़ा हूँ जो इस घर को खोखला कर रहा हूँ। मैं सबके पतन के लिए जिम्मेदार हूँ। मेरी

हड्डियों में जंग लग गयी है इसलिए पत्नी और बच्चों की उपेक्षा तथा तिरस्कार सहकर भी इस घर में पड़ा रहता हूँ। महेन्द्रनाथ के अंदर जीवन में कुछ भी हासिल न कर पाने की पीड़ा और कुंठा है। वह ऐसा पुरुष है जिसने पत्नी को अपने अनुसार चलाने में ही अपना पुरुषार्थ समझा, पत्नी को अपने हाथों की कठपुतली बनाना चाहा लेकिन बुरी तरह हार गया। न केवल पत्नी बल्कि बच्चे भी उसके हाथ और अधिकार क्षेत्र से निकल गए। वह असंतुष्ट और निराश व्यक्ति है तथा पलायनवादी है। संघर्ष करके सब कुछ पा लने का प्रयत्न करने के बजाय वह सिगरेट और शराब में डूबा गम गलत करता है। महेन्द्रनाथ कमजोर व्यक्ति है, उसकी आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति, स्वार्थ परता उसे आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति का प्रतिनिधि घोषित करती है। वह न अच्छा पति है न अच्छा पिता बल्कि वह श्रेष्ठ मनुष्य भी नहीं लगता। राकेश जी ने आधे–अधूरे के इस पात्र के माध्यम से मध्यवर्गीय, अभावग्रस्त, महत्वाकांक्षी लेकिन अकर्मण्य पुरुष की छवि को प्रभावशाली तरीके से अभिव्यक्त किया है। पूरे नाटक में यह पात्र अपने लिजलिजेपन से केवल खीझ उत्पन्न करता है, सहानुभूति अर्जित नहीं करता। यह आधुनिक परिवेश के विकारों से ग्रस्त पात्र है।

2.5.2 अशोक

यह सावित्री और महेन्द्रनाथ का बेटा है। नाटक में यह एक अल्पशिक्षित, आवारा, निकम्मा और उद्दण्ड पात्र है जो अपनी माँ से मर्यादाहीन वार्तालाप करके अपनी खराब छवि प्रस्तुत करता है। संघर्ष करती हुई माँ का सहारा बनने की बजाय यह उसके कार्यों को गलत सिद्ध करता हुआ उस पर आरोप लगाता है। यह एक कृतघ्न पात्र है जो माँ के सारे अहसानों पर पानी फेर देता है यह कहता हुआ कि ये जो कुछ करती हैं स्वयं के सुख के लिए करती हैं। वह कहता है किन्नी दिनोंदिन बिगड़ रही है, बिन्नी मनोज के साथ घर से भाग गयी, पिता लड़कर घर से चले गए, मैं नकारा घूम ही रहा हूँ। अगर सावित्री बच्चों और घर के लिए ही संघर्ष कर रही होती तो घर का और बच्चों का यह हाल न होता। वह कटु भाषा में संवाद करता है। अशोक स्वयं कुछ कमाता नहीं, घर से उसे जेबखर्च मिलता नहीं, इसलिए वह जिस लड़की से प्रेम करता है उसे उपहार देने के लिए घर की चीजें उठा–उठाकर ले जाता है। वर्तमान में आधुनिक युवा पीढ़ी स्वयं परिश्रम करने से बचती है तथा माता–पिता से अपेक्षा करती है कि वे उसकी जिंदगी को ऐशो–आराम युक्त बनाने के साधन उपलब्ध कराएँ। ऐसा न हो पाने पर वह माता–पिता के प्रति क्रूरता, असभ्यता से भरा व्यवहार करती है। अशोक ऐसा ही युवा है जो आलसी और अकर्मण्य है। पढ़ने में उसकी रूचि नहीं है न ही वह कोई काम करना चाहता है। माँ अपने अधिकारियों, पुरुष मित्रों से मिलवाकर उसे काम दिलाना चाहती है तो वह उनसे नहीं मिलना चाहता बल्कि माँ को चरित्रहीन समझता है और स्वयं को श्रेष्ठ और स्वाभिमानी प्रदर्शित करता है। अशोक अपने पिता की ही तरह गैर जिम्मेदार है। वह अपने परिवार के प्रति किसी दायित्व को निभाना आवश्यक नहीं समझता। उसके मन में परिवार के लिए प्रेम भी दिखाई नहीं देता क्योंकि प्रेम होता तो वह जिम्मेदारी भी समझता। किन्नी को बिगड़ने से बचाता। माँ का सहयोग करता। अशोक एक स्वार्थी युवा है। अपने अधूरेपन को भरने के लिए भी गलत रास्तों पर चल रहा है। अपने समवयस्क युवाओं के साथ रहने पर हीनता से ग्रस्त होने के कारण संभवतः वह कुंठित एवं विकृत आचार–विचार का प्रदर्शन करता है। वह सावित्री के बॉस का कार्टून बनाता है, व्यंग्य करता है इससे यह तो पता चलता है कि वह बुद्धिमान है, लेकिन वह अपनी बुद्धि का प्रयोग नकारात्मक कार्यों में करता है। वह भी पिता की तरह घर में किसी को बताए बिना कई–कई दिनों तक घर से गायब रहता है।

'आधे–अधूरे' नाटक के हर पात्र की तरह अशोक भी असंतुष्ट भटकता, एकाकीपन से ग्रस्त पात्र है। कमरे में बैठकर फिल्मी अश्लील पत्रिकाएँ पढ़ना तथा चित्र–काट–काटकर रखना उसका शौक है। उसे घर में घुटन का अनुभव होता है। वह मानता है कि इसी घुटन से तंग आकर उसकी बहन बिन्नी मनोज के साथ भाग गयी। वह स्पष्ट वक्ता है बोलते समय यह नहीं सोचता कि उसके शब्दों से किसी का मर्म आहत हो सकता है। इसके दो उदाहरण दिए जा सकते हैं– एक तो वह बिन्नी से कहता है कि तू घर से इसलिए नहीं गई कि तुझे मनोज से प्रेम

हो गया था बल्कि मनोज के रूप में तुझे एक खिड़की मिली कि तू इस घर से बाहर जाकर चैन की साँस ले सके। दूसरा वह माँ के लिए कहता है कि बार–बार कहती हैं कि अब अकेले जिम्मेदारी नहीं सम्भाली जाती मुझसे, अब केवल अपने लिए जीऊंगी तो क्यों नहीं छोड़ देतीं जिम्मेदारी निभाना, हमें हमारे हाल पर छोड़कर जाए जहाँ जाना हो। अशोक की कटूक्तियों में कहीं सच्चाई भी दृष्टिगोचर होती है तब लगता है कि भले ही वह आवारा घूमता है, पढ़ता नहीं, कोई काम नहीं करता लेकिन परिस्थितियों को समझने और विश्लेषण करने की उसमें भरपूर क्षमता है। यह नाटक वर्तमान समाज के मध्यवर्गीय परिवार में व्याप्त संघर्ष, तनाव, द्वंद्व, कुंठा के बीच पलती पीढ़ी के आक्रोश एवं मनोवृत्तियों को सफलतापूर्वक दर्शाता है। अशोक एक नकारात्मक छवि को प्रस्तुत करने वाला पात्र है जिसके परिप्रेक्ष्य में सावित्री के प्रति सहानुभूति बढ़ती है। दूसरी ओर यदि सकारात्मक दृष्टि से देखा जाए तो यही एक पात्र है जो माँ के चरित्र के अनुरूप अपने चरित्र/व्यवहार का औचित्य सिद्ध करता है।

2.5.3 सावित्री

सावित्री एक मध्यवर्ग की आधुनिक नारी है। 'आधे–अधूरे' में सावित्री नाटक का मुख्य आधार है। वही प्रमुख स्त्री है जिसे नायिका कहा जा सकता है। उसके अनेक संबंध हैं; पति महेन्द्रनाथ और बॉस सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा– जिन्हें क्रमशः एक, दो, तीन, चार पुरुष कहा गया है। सावित्री के जीवन में ये आते–जाते हैं। सावित्री के माध्यम से राकेष आधुनिक स्त्री को चित्रित करना चाहते हैं जिसकी कई भूमिकाएँ हैं। आर्थिक रूप में कई बा रवह परिवार की धुरी हैं। घर के लिए वह कमा कर लाती है, पर गृहस्थी भी उसे ही देखनी पड़ती है, बच्चों की सारी जिम्मेदारी भी उसी के कन्धों पर है। कई पात्र उसके जीवन में आते हैं जिसका कारण उसका असन्तोष तो है ही, पर वह परिवार को भी उठाना चाहती है, जैसे बॉस सिंघानिया से बेटे अशोक की नौकरी के लिए निवेदन। नाटक में वह आदि से लेकर अन्त तक सक्रिय है और घटनाचक्र उसी के इर्ध–गिर्द घूमता रहा है तो इसके लिए समाजशास्त्रीय कारण तो है ही, उसका अहं भी है, परिस्थितियाँ भी हैं। वह माँ है और अपने बेटे–बेटियों को भी ऊपर उठाना चाहती है। यह बात दूसरी है कि वह सफल नहीं हो पाती।

सावित्री के माध्यम से राकेश एक कामकाजी महिला को सामने लाते हैं, और इस दृष्टि से वह आधुनिक नारी है। राकेश ने आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर इस प्रकार के पात्र अपनी अन्य रचनाओं में भी प्रस्तुत किए हैं। सावित्री आधुनिक नारी के रूप में अपना स्वतन्त्र आर्थिक आधार रखती है। वह नौकरी करती है और इस आधार पर स्वतन्त्र सामाजिक संबंध भी बनाना चाहती है। पति महेन्द्रनाथ बेकार है, सावित्री को नौकरी करने की यही विवशता नहीं है, स्वभाव से भी वह आर्थिक स्वतन्त्रता चाहती है। आधुनिक भारतीय नारी के विषय में सोचा गया कि यदि वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो जाए तो उसकी स्थिति बेहतर हो सकती है। पर यह अधरी दृष्टि है। नारी अपने शरीर में तो दुर्बल है ही, भारत में जब तक सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से नारी सम्मानित नहीं होती, स्थिति में परिवर्तन सम्भव नहीं। अब भी जैसे आधनिकता के नाम पर हम मध्यकाल के सामन्ती समाज में जी रहे हैं; दहेजप्रथा, अनमेल विवाह, बलात्कार, स्त्री के प्रति निरादर भाव आदि आम बातें हैं। इन स्थितियों में आधुनिक भारतीय नारी ने आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होना चाहा तो क्या उसके 'स्टेटस' में सामाजिक दृष्टि से कोई गुणात्मक परिवर्तन हुआ? सम्भवतः नहीं। क्योंकि स्थितियाँ बार–बार बदलीं, ऊपर–ऊपर–मानसिकता में अधिक परिवर्तन नहीं आया और नारी के प्रति दृष्टि में प्रायः वही पिछड़ापन मौजूद है।

सावित्री के माध्यम से राकेश जिस आधुनिक नारी का चित्रण करते हैं, वह साधारण मध्यमवर्ग की है, और परिवार के साथ तमाम उम्र समझौते करती है। तथाकथित 'इण्टलेक्चुअल' मध्य वर्ग की नारी आर्थिक रूप से स्वतन्त्रता पाने के प्रयत्न में काफी हद तक सफल हुई, पर राकेश प्रश्न उठाते हैं कि वह सन्तुष्ट है क्या? सम्भवतः नहीं। सावित्री की 'ट्रैजिडी' ही यह है कि वह आर्थिक आधार बनाकर अपने जीवन को स्वतन्त्रता देना चाहती है, पर ऐसा हो नहीं पाता। वह स्वयं भी टूट–बिखर जाती है, तरह–तरह के दबावों में रहती है और परिवार तो विघटन के

कगार पर है ही। आधुनिक नारी के रूप में उसकी सीमा यह है कि वह परिवार को अपने ढंग से चलाना चाहती है– पति से लेकर बेटा, बेटी और तथाकथित मित्रों तक को, पर यह सम्भव नहीं, क्योंकि आजादी तो सभी चाहते हैं– स्कूल में पढ़नेवाली छोटी बेटी तक। सावित्री चाहती है कि घर ठीक–ठाक रहे, और ऐसा न होते देखकर झुंझलाती है, चीखती है। पति महेन्द्रनाथ से कहती है; 'पता नहीं यह क्या तरीका है इस घर का? रोज आने पर पचास चीजें यहाँ–वहाँ बिखरी मिलती हैं।' आधुनिक प्रवृत्ति के कारण सावित्री घर को यन्त्रवत् चलाना चाहती है, व्यवस्था चाहती है, पर यह संभव नहीं होता और वह खीझती चली जाती है और इस क्रम में लगातार टूटती है।

सावित्री आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होना चाहती है, चाहे अपनी इच्छा से अथवा विवशता में, पर यह उसके जीवन का प्रमुख प्रश्न है। उस पर पूरे परिवार का बोझ है जिसके कारण उसे यथार्थ से समझौते करने पड़ते हैं। उसकी स्वाभाविक इच्छा है कि पति महेन्द्रनाथ कुछ काम करे, निठल्ले न बैठे रहें। अशोक को अच्छी नौकरी मिल जाए और बेटियों को अच्छे पति। सावित्री की इच्छाओं को हम आधुनिक प्रवृत्ति से प्रेरित व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा भर नहीं कह सकते, इसके मूल में उसके पारिवारिक दायित्व हैं। वह बड़ी लड़की से दर्द से कहती हैः– ''...यहाँ पर परिवार में सब लोग समझते क्या है, मुझे? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा पीस–पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है।'' सावित्री यदि समझौता करती है और उसमें स्खलन दिखायी देता है तो इसीलिए कि वह परिवार के लिए खटती है। पुरुष दो (सिंघानिया) सावित्री के साथ विचित्र व्यवहार करता है। बार–बार कहता है कि : ''तुम (सावित्री) आओगी ही घर पर।'' सावित्री यह यातना सह जाती है क्योंकि उसे अपने बेटे अशोक के लिए नौकरी चाहिए। अशोक इस पुरुष दो (सिंघानिया) को 'वनमानुष' कहता है, पर माँ के रूप में सावित्री को बेटे–बेटियों के भविष्य की चिन्ता है, मूल्य कुछ भी चकाना पड़े। इस दृष्टि से सावित्री समाज की सहानुभूति की भी अधिकारिणी है।

सावित्री परिवार की चिन्ता में है और जैसे अकेली ही लड़–झगड़ रही है। जब बेटा अशोक कहता है कि ऐसे गलत लोगों को क्यों बुलाती हो? तो सावित्री का उत्तर है, ''इसलिए कि किसी तरह इस घर का कुछ बन सके। मेरे अकेली के ऊपर बहुत बोझ है इस घर का जिसके कोई और भी मेरे साथ ढोनेवाला हो सके।'' कितनी चिन्ताएँ लेकर चल रही है सावित्री! निठल्ला पति, विद्रोही सन्तान, वह भी आपस में सौमनस्यरहित। बेटा अशोक छोटी बहिन को पीट देता है क्योंकि वह पड़ोस की लड़की सुरेखा से स्त्री–पुरुष संबंधों पर बात करती है। छोटी लड़की भाई के प्रेम–प्रसंग की चर्चा करती है कि ये अपनी प्रेमिका वर्षा के चक्कर लगाते हैं। परिवार का भार वहन करने वाली नारी के रूप में सावित्री अपने पति महेन्द्रनाथ से पूर्णरुपौण असन्तुष्ट है, वह किसी काम का नहीं। सावित्री में एक गहरा विक्षोभ है कि वह परिवार के लिए अकेली ही पिस रही है, फिर भी उसे टूटने–बिखरने से बचा नहीं पा रही है। परिवार में जैसे सब गैरजिम्मेदार हैं, सारा बोझ उसी पर। बड़े दर्द से सावित्री कहती है : ''मेरे पास अब बहुत साल नहीं हैं जीने को। पर जितने हैं, उतने में इसी तरह और निभाते हुए नहीं काटूँगी। मेरे रने से जो कुछ हो सकता था, इस घर का, हो चुका आज तक। मेरी तरफ से अब अन्त है उसका–निश्चित अन्त।''

सावित्री अपने पारिवारिक दायित्वों की ओर ध्यान देती है पर उसके व्यक्तित्व में संग्रंथन, संयोजन सबको साथ लेकर चल सकनेवाले नेतृत्व की कमी हो सकती है। इसके कारण समाजशास्त्रीय हैं और आर्थिक हैं। औद्योगिक, शहरी समाज बन रहे हैं, पारिवारिक इकाइयों का टूटना एक स्वाभाविक परिणति है। पहले टूटते हैं सामन्ती समाज के बने बड़े संयुक्त परिवार, फिर छोटे परिवार भी व्यक्तियों में बंट जाते हैं, छोटी–छोटी आत्मकेन्द्रित इकाइयों में से यहाँ तक कि पति–पत्नी, माता–सन्तान, भाई–बहिन आदि संबंध भी टूट जाते हैं। सावित्री पर और वह इसे निभाने में ही टूटती है। यह बात दूसरी है कि उनके पास 'गोदान' की धनिया का जुझारू ग्राम–व्यक्तित्व न होकर मध्यवर्ग की शहरी मानसिकता है, इसलिए वह भीतर–भीतर टूटती है। इसमें मनोग्रन्थियाँ बनतती हैं, पर जहाँ तक उसके जीवन का प्रश्न है, इसमें सन्देह नहीं कि पारिवारिक दायित्व उसे थकाते हैं। वह अपने बेटे से पीड़ा के साथ कहती है : ''ऐसे में मुझसे नहीं निभ सकता। जब और किसी को यहाँ दर्द नहीं किसी चीज का, तो

अकेली मैं ही क्यों अपने को चीथती रहूँ रात–दिन? मैं भी क्यों न सुर्खरू होकर बैठी रहूँ, अपनी जगह?''

सावित्री महेन्द्रनाथ का वरण पति के रूप में करती है, पर स्वभाव से दोनों भिन्न–भिन्न दिखायी देते हैं। इनमें कुछ तो अपनी बनावट का रोल है और कुछ परिस्थितियों की भी भूमिका है। कुल मिलाकर जो मानव व्यक्तित्व बनता है, उसमें व्यक्ति एवं समाज दोनों का योग होता है, अर्थात् सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव। सावित्री महेन्द्रनाथ को फिजूल का आदमी समझती है बेकार का, जो निठल्ला बैठा रहता है, कुछ करना ही नहीं चाहता। वह न खुद चलता है और न दूसरों को ही चलने देता है – 'नामुराद मोहरे' की तरह है। पुरुष एक, महेन्द्रनाथ पत्नी से खीझकर कहता है– ''अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ, क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ, घर–घुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।'' सावित्री महेन्द्रनाथ के साथ रहती तो है, पर मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। सावित्री महेन्द्रनाथ के साथ–साथ रहने के लिए विवश है, जैसे। यह आज के ठण्डे, तनावपूर्ण स्त्री–पुरुष–संबंधों की एक झांकी है।

पति–पत्नी एक दूसरे को सही ढंग से समझना नहीं चाहते। महेन्द्रनाथ कहीं काम पर लगने की कोशिश में है– जुनेजा के पास आता–जाता है, पर सफल नहीं होता। सावित्री धीरे–धीरे मानसिक स्तर पर पति से दूर होती जाती है, उन दोनों में जैसे भावात्मक गायब हो जाते हैं– एक संवादहीन स्थिति। उनमें बातें होती हैं तो जली–कटी, आक्रोष भरी जैसे हर वक्त लड़ झगड़ रहे हों। कुछ संवाद है :

''पुरुष एक : (महेन्द्रनाथ) तुम लड़ना चाहती हो?

स्त्री (सावित्री) : तुम लड़ भी सकते हो इस वक्त, ताकि उसी बहाने चले जाओ घर से।....वह आदमी (पुरुष दो, सिंघानिया) आयेगा। तो जाने क्या सोचेगा कि क्यों हर बार इसके (सावित्री के) आदमी को कोई न कोई काम हो जाता है बाहर। शायद समझे कि मैं जान–बूझकर ही भेज देती हूँ।

पुरुष एक : वह मुझसे तय करके तो नहीं आता कि मैं उसके लिए मौजूद रहा करूं घर पर!

स्त्री : कह दूंगी, आगे से तय करके आया करे तुमसे। तुम इतने बिजी आदमी हो, पता नहीं कब किस बोर्ड की मीटिंग में जाना पड़ जाय (तीखा व्यंग्य, महेन्द्रनाथ की बेकारी पर)

पुरुष एकः तुम तो बस, आमादा ही रहती हो हर वक्त।

स्पष्ट है कि 'आधे–अधूरे' में मोहन राकेश, सावित्री–महेन्द्रनाथ के माध्यम से स्त्री–पुरुष के तनाव भरे संबंधों पर टिप्पणी करते हैं। उन पति–पत्नी में वह सौमनस्य नहीं जो दाम्पत्य जीवन को, अभावों के बावजूद भी पूर्णता देता है, इसलिए वे स्वतंत्र हैं और घर भी टूट रहा है। सावित्री अपने असन्तोष में कई पुरुषों से बंधती दिखायी देती है। – जुनेजा, जगमोहन और विवष स्थिति में बॉस सिंघानिया भी। सावित्री खोजती क्या है? पूर्ण मनुष्य! पर वह तो कल्पना है, दार्शनिकों की, कवियों की। महेन्द्रनाथ को आधा–अधूरा व्यक्ति करार देते हुए वह कहती है : ''आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शखशियत हो?... जबसे मैंने उसे जाना है, हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी न किसी का सहारा ढूंढते पाया है।'' जैसे वह आधा–अधूरा आदमी है। एक पत्नी के रूप में सावित्री असन्तुष्ट है, भटकती है, पर उसे परितृप्ति नहीं मिलती। पूर्णत्व की इस मृग–मचीचिका के पीछे दौड़क रवह हताश सी हो गयी है। यह हमारे आज के मध्यवर्गीय स्त्रीपुरुष संबंधों पर तीखी टिप्पणी है।

सावित्री–महेन्द्र के तनावपूर्ण संबंधों का प्रभाव पूरे घर पर पड़ता है। पूरा परिवार जैसे इस तनाव के कारण टूटता चरमराता दिखायी देता है। बेटे अशोक में तीव्र आक्रोश है, वह विद्रोह पर उतारू है, बेकार होकर भी

वर्षा से प्रेम करता है। विचित्र संस्कार हैं उसके–आवारापन के। बड़ी लड़की बिन्नी मनोज के साथ भाग जाती है, फिर पछताती है। छोटी लड़की किन्नी हर चीज से असन्तुष्ट है। भाई–बहन में कोई प्रेम भाव नहीं इसलिए कि परिवार के अभिभावक सावित्री–महेन्द्रनाथ में सौमनस्य नहीं है। बच्चे भी जानते हैं कि माँ के कहाँ–कहाँ, कैसे संबंध हैं? कौन आता–जाता है। परिवेश का प्रभाव परिवार पर पड़ना स्वाभाविक है, इसे राकेश ने नाटक में भलीभाँति दिखाया है। बिन्नी (बड़ी लड़की) एक स्थान पर पुरुष चार (जुनेजा) से कहती हैः ''मैं तो बयान नहीं कर सकती कि कितने–कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने।'' वह घर को ''चिड़ियाघर का पिंजड़ा'' कहती है। इस तरह पारिवारिक तनावों के कारण सभी सदस्य असन्तुष्ट हैं – आधे–अधूरे।

मोहन राकेश ने सावित्री का चरित्र मध्यवर्ग से उठाया है और उसे एक परिवार का दायित्व दिया। पति को निठल्ला बनाया और सन्तान भी इस अर्थ में लापरवाह कि माँ में कोई रुचि नहीं। राकेश ने सावित्री को शरीर अथवा यौन स्तर पर भटकती साधारण नारी के रूप में चित्रित नहीं किया, उसे एक व्यक्तित्त्व देने की कोशिश की। एक प्रकार से 'रैशनलाइज' किया है कि सावित्री पूर्णता चाहती है जो मिलना असंभव है। इस दृष्टि से सावित्री की यात्रा 'सही संबंधों की खोज की यात्रा है। वह गृहस्थी की त्रासदी भी झेलती है और अपने मन की यातना भी। वास्तव में सावित्री व्यक्ति नारी नहीं है कि राकेश उसमें 'अषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका अथवा ;लहरों के राजहंस' की सुन्दरी जैसी चारित्रिक रेखाएँ भरने का अधिक सावधान प्रयत्न करते हैं। 'आधे–अधूरे' में उन्होंने सावित्री को एक स्त्री माना है और यह मध्यवर्ग की इन परिस्थितियों की कोई भी स्त्री हो सकती है। विवाह के पूर्व महेन्द्रनाथ उसका प्रिय था, विवाह के अनन्तर ऐसा क्या कुछ बदल गया कि सावित्री का मन उससे तिक्त हो जाता है। उसकी बातों में तिक्तता, कड़वाहट और व्यंग्य है, स्नेह बिल्कुल नहीं। क्यों ये संबंध धीरे–धीरे ठण्डे, व्यर्थ होते गए हैं? राकेश ने उसके लिए सावित्री को घर–गृहस्थी के तनाव से गुजारा है– घर से लेकर बाहर तक।

मोहन राकेश 'आधे–अधूरे' में एक ओर मध्यवर्ग की त्रासदी दिखाते हैं– पारिवारिक स्तर पर, दूसरी ओर यह भी बताते हैं कि जैसे सबको सही संबंधों की खोज है और उसका सबसे अधिक प्रयत्न सावित्री में है। नाटक के लगभग अन्तिम दौर में पुरुष नं0 चार, जुनेजा आता है और बड़ी लड़की बिन्नी से उसकी काफी बातचीत होती है जिससे सावित्री–महेन्द्र के संबंधों के बिखराव का पता चलता है। जब सावित्री स्वयं रंगमंच पर उपस्थित होती है तो जुनेजा के सामने वह लम्बे वक्तव्य देती है, जहाँ उसकी मानसिकता उजागर होती है। सावित्री कहती है– ''एक आदमी है, घर बसाता है, क्यों बसाता है? एक जरूरत पूरी करने के लिए। कौन सी जरूरत? अपने अन्दर के किसी उसको एक अधूरापन कह जीलिए उसे.... उसको भर सकने के लिए। इस तरह उसे अपने लिए...अपने में....पूरा होना होता है।'' इस क्रम में, अपने बहुत लम्बे वक्तव्य में सावित्री बोलती चली जाती है लगातार और कहती है कि अपने ढंग से जीना चाहती है, सही संबंधों की तलाश है उसे। उसके शब्द हैं–''वह एक पूरा आदमी चाहती हैं अपने लिए. ... एक.... पूरा आदमी।'' और मोहन राकेश ने चुना है सावित्री को, पूर्णता की तलाश के लिए। सावित्री की भटकन हर उस व्यक्ति की भटकन हो सकती है जिसे पूर्णता की खोज है– यही सावित्री की 'ट्रैजिडी' है।

2.5.4 बिन्नी

बिन्नी सावित्री की बड़ी लड़की है और किन्नी छोटी। बिन्नी भी माँ की तरह पूर्णता की खोज में है। राकेश दिखाते हैं कि बिन्नी उस मनोज के साथ भाग निकलती है जो उसकी मां का प्रेमी था। पर प्रेम और विवाह में अन्तर है विवाह करके बिन्नी भी माँ की तरह असन्तुष्ट है, कहती है, ''एक गुबार सा है जो हर वक्त मेरे अन्दर भरा रहता है. .. ''या ''मन करता है कि आसपास की हर चीज को तोड़–फोड़ डालूँ''। ऐसा क्यों होता है कि जिस व्यक्ति का स्वयं वरण किया, उसी के साथ असंतोष। नागरिक समाज में उपजे एकाकीपन, अलगावपन, अतृप्ति आदि का संकेत मोहन राकेश अपने पात्रों के मायम से करते हैं। बिननी निस्संकोच है, अपना असंतोष माँ से लेकर अजनबी तक के सामने व्यक्त करती है।

यदि केवल यह कह दिया जाये कि बेटी ने माँ के संस्कार पाये हैं, तो अधूरी बात होगी। यह एक पक्ष है। स्थिति यह है कि पारिवारिक परिवेश में माता–पिता में जो तनाव बिन्नी ने देखा है, यदि उस पर उसका प्रभाव है तो यह चेष्टा भी होनी चाहिए कि वह उससे मुक्त भी हो। पर ऐसा नहीं हो पाता। एक क्षण ऐसा भी आता है जब माँ–बेटी, एक–दूसरे को सहानुभूति देती है जैसे उनके जीवनवृत्त एक जैसे हों। दोनों की प्रतिक्रियाओं में कई बार समानता मिल जाती है। माता–पिता दोनों बिन्नी से पूछते हैं कि वह मनोज के साथ खुश तो है न? पहले तो वह टालती है, फिर माँ के सामने खुल जाती है, कहती है– ''शादी से पहले मुझे लगता था कि मनोज को बहुत अच्छी तरह जानती हूँ, पर अब आकर....अब आकर लगने लगता है कि वह जानना, वह जानना, बिल्कुल जानना नहीं था। इससे बिन्नी के मन का द्वंद्व पता चल पाता है। माँ तरह–तरह के प्रश्न पूछती है, पर बेटी के पास कोई तर्कसंगत उत्तर नहीं है। छोटी–छोटी बातों पर तनाव क्यों हो जाता है? फालतूपन क्या? बिन्नी छोटी–मोटी नौकरी करना चाहती है– क्यों? ''कुछ भी ऐसी बात जिससे एक बार तो वह (मनोज) अंदर से तिलमिला उठे।'' फिर खीझती है और कुछ नहीं कर पाती।

बिन्नी मध्यवर्ग की नारी है, अपनी विसंगतियों से गुजरते हुए परेशान होती है। माता–पिता के संबंधों को देखकर उसमें भय जागता है। सोचती है– ''क्या यही नियति उसकी भी है?'' और त बवह टूटते स्वरों में माँ से कहती है....''एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूँ कि क्या चीज है इस घर में, जिसे लेकर बार–बार मुझे हीन किया जाता है?'' और स्थिति यह है कि इस पूर्णता की तलाश माँ को भी है और बेटी को भी। यहाँ दोनों में समानता है, पर बिन्नी का एक शुभ पक्ष है कि वह मनोज के साथ होकर भी माता–पिता, भाई–बहिन से जुड़ी है। माता–पिता का तनाव उसे खलता है, वह अपने दुःख को व्यक्त करती है, पर कोई कारगर भूमिका निभाने में स्वयं को असमर्थ पाती है। खुद तनाव से गुजरते हुए प्रायः इन्सान दूसरों के सुख–दुःख से अन्यमनस्क हो जाता है। पर बिन्नी ऐसी नहीं है। इसलिए नाटककार राकेश ने उसे नाटक में काफी स्थान दिया है। बड़ी लड़की बिन्नी माँ की सहेली जैसी हो जाती है और इसी तरह का व्यवहार करती है। माँ के साथ सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहती है– ''जब से बड़ी हुई हूँ, तभी से देख रही हूँ, तुम सब कुछ सहकर भी रात दिन अपने को इस घर के लिए हलाक करती रही हो।'' पिता के प्रति भी उसकी सहानुभूति है, पर चाहने से तनाव नहीं मिट सकते। भाई को ममता देती है और छोटी बहिन को भी। यह बिन्नी के व्यक्तित्त्व की प्रौढ़ता को भी सूचित करता है कि वह बातों को ठीक समझती है।

2.6 आलोचना

2.6.1 कथानक

यह नाटक मध्यवर्गीय जीवन की शुष्क, विनाशकारी रिक्तता का प्रखर दस्तावेज है और विकृत मूल्यों, भ्रान्तियों एवं दोगली नैतिकता का निर्गम अनावरण, जो उस रिक्तता के कारण है। इसके केन्द्र में पत्नी के वे प्रयत्न हैं, जो वह अपने बिखरते परिवार को बांधने के लिए करती है।

आधे–अधूरे नाटक का विश्लेषण करते हुए उसकी बनावट और भावों पर त्रिपुरारी शर्मा लिखते हैं– 'आधे–अधूरे' नाटक का ढाँचा बहुत सावधानी से बनाया गया है और बहुत ही बारीक विशिष्ट बुनावट है। नाटक के हर वाक्य, हर शब्द में दर्द, क्षोभ और विडम्बना संवारों से झांकती है। नाटक उकसाता भी है और जबरन हमें अपने से जोड़ लेता है। अक्सर मन करता है विरोध करने का, कुछ कहने का, अपनी फटेहाल अधूरी जिन्दगी को पूरा करने का, हाँ शहरी जिन्दगी के रोजमर्रा जीवनयापन और आपसी व्यवहार का इस नाटक से गहरा नाता है। एक स्तर पर नाटक एक ऐसे परिवार के बारे में है जिसकी जड़ें कहीं नही ंजम पाई, यह एक ऐसी संस्कृति के बारे में भी है, मध्यवर्गीय परिवार धीरे–धीरे जिस पर आश्रित हो गए, ऐसी आकांक्षाओं की संस्कृति। इसमें दो गर्माहट व आश्वासन नहीं जो निश्चिंतता से पैदा होती है। अविकासशील समाज को सहारा देनेवाले ढांचे अभी तक तैयार नहीं

हुए। अकेलेपन की भयानकता और बदलाव को यह नाटक पकड़ता है साथ ही एक विशेष परिवर्तन को भी रेखांकित करता है। सावित्री के माँ–बाप का कहीं कोई जिक्र नहीं फिर भी जब कभी बिन्नी अपनी शादीशुदा जिन्दगी से लौटना चाहती है तो उसके पास लौटने की एक जगह है। हालांकि यह वही घर है जिसने उसे ऐसा बनाया, फिर भी यही आसरा भी और आदि बिन्दु भी। टूटता हुआ सा घर फिर भी मजबूत है कि हर किसी को वापस खींचता है। एक मजबूरी और निर्भरता सबको एक दूसरे से बांधती है, वे अपनी कमजोरी से नफरत करते हैं इसलिए एक–दूसरे की आजादी को तोड़ते रहते हैं। एक सुखी परिवार के मिथक को यह नाटक साफ तौर पर तोड़ देता है। स्थिरता का आधार विवाह है, इस बात पर गहरे प्रश्न हैं, तीव्र विवाद है। कई अर्थों में यह आदमियत के अधूरेपन का नाटक है, सीमाहीनता और व्यक्तिवादिता और असहिष्णुता है सब पर काबिज है दूसरों की कमियों के साथ। जबकि खुद अपनी भी कोई गहरी पहचान नहीं। खुशी पैदा करने की नालायकी उतनी ही बड़ी है जितनी कि खुशी पाने की ख्वाहिश, कोशिशों की नाकामयाबी में एक अजब व्यंग्य है लेकिन जिन्दगी के सबक की तरह उसे हर पीढ़ी को उसका तजुर्बा व पहचान खुद ही करनी पड़ती है।

यह नाटक अपने आप में एक पूरा संसार है, एक ऐसा संसार जो व्यक्ति ने रचाया है काले लिबास वाले व्यक्ति ने, जिसके तजुर्बे और जिसकी नज़र का रंग इस संसार पर काबिज है। चूंकि उसने काला चुना है तो यह सारे स्थान में फैल जाता है। इसी में बाकी के पात्र स्थापित किए गए हैं, हालांकि सभी पुरुष इस मानसिकता के प्रतीक हैं, यह औरत सावित्री भी कई औरतों की तरह है उन पुरुषों से व्यवहार करते हुए उनसे रिश्ते कायम करते हुए हर एक पुरुष से पेश आते हुए इस औरत के व्यक्तित्त्व के अलग ही रंग सामने आते हैं, जिससे वो बहुरंगी बन जाती है और उतने ही रंगों में बंट भी जाती है। बीवी, माँ व नौकरीशुदा। वो रूमानियत की भी तलाश करती है और अपनी वकालत भी खुद करती है। इस संसार में वह असह्य है पुरुष से शक्ति प्राप्त करती है, किंतु महेन्द्रनाथ खुद उसकी शक्ति से बंधा है, उसे आश्वासन या शक्ति नहीं दे सकता, जिसकी जरूरत है। वो कमजोर दीखता है लेकिन सावित्री और उस घर पर अपने अधिकारों को वह कायम रखता है, सभी विरोधों के बावजूद उसका दोस्त, उसका वकील, जुनेजा भी उससे हार जाता है। जुनेजा के शब्दों में स्वीकृत नैतिकता, जो सामाजिक रस्म रिवाज से पैदा हुई है, गूंजती है, उसमें दुहरापन है, फिर भी उसका कहना है कि अलग–अलग मुखौटों के नीचे चेहरा एक ही है। इसलिए सावित्री की तलाश बेमानी है। सावित्री नहीं मानती, वह केवल भूमिकाओं से बंधी औरत ही नहीं बल्कि, मानवीय आत्मा है जो अपने सुख की खोज, शांति और सुन्दरता और मंजिल में संतुलन की खोज स्वयं करती है और ऐसा लगता है कि नाटक में होनेवाली घटनाओं का दोष सावित्री का है, लेकिन यह इसीलिए कि वो ही जिम्मेदारी उठाती है औरों से कम भगोड़ी है। हमने उसे परखने की कोशिश की है उसे समझने की, उसकी कुंठाओं, इच्छाओं और टूटन को समझने की कोशिश। इस घर के बच्चे कई अर्थों में संक्रमणकालीन समाज की पैदाइश हैं। अशोक को लगता है कि घर निश्चित रूप से टूटा है। बिन्नी की कोशिश है कि सब कुछ बंधा रह सके, इस प्रक्रिया में वह ऐसी धुरी बन जाती है जिसके इर्द–गिर्द सारी स्थितियाँ घूमती हैं। किन्नी जैसे घर की आत्मा हो, तरसती हुई कि कोई उसे प्यार करे, कोई उसकी तरफ भी ध्यान दे। घर उन सब में प्रमुख है और वह घटनाओं को आकार देता है– यह चक्र चलता रहता है। क्या चलना ही चाहिए? शायद नाटक धीरे से, अस्पष्ट स्वर में यही प्रश्न करता है।

इस नाटक में समकालीन जीवन के अनेक धूप–छां ही चित्र और ढांचे बुने हुए हैं। 'आधे–अधूरे' मोहन राकेश द्वारा एक जीवन्त नाट्य–रूप और हिंदी नाटक–लेखन में नाटकीय संवाद की खोज का चरम–बिन्दु है। यह उनके स्त्री–पुरुष संबंधों के अन्वेषण की एक कड़ी होते हुए भी यहाँ वह एक तरह की स्वीकृति पर पहुँच गए हैं। स्त्री और पुरुष के बीच परस्पर अनुकूलता नहीं है, और उनके संबंधों में एक बुनियादी संघर्ष सदा बना रहता है। मगर फिर भी इस संघर्ष को समझना और इसके साथ–साथ रहना भी पड़ता है, क्योंकि स्त्री और पुरुष पूरी तरह कभी अलग नहीं हो सकते और इस तरह यह चक्र चलता रहता है।

नाटक की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है। इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। शब्दों का चयन, उनका क्रम, उनका संयोजन–सब कुछ ऐसा है, जो बहुत संपूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्त करता है। मोहन राकेश आधुनिक जीवन में व्याप्त अतृप्ति और महत्वाकांक्षाओं की दौड़ में हारते जीवन की व्यथा कथा कहकर यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि संतोष ही परम सुख है। सब कुछ एक साथ नहीं मिलता, सबको सब कुछ नहीं मिलता लेकिन जो मिला है उसे प्यार से सहेजना ही शांतिपूर्ण जीवन की कुंजी है।

2.6.2 अभिनेयता

नाटककार ने एक ही अभिनेता द्वारा पांच पृथक भूमिकाएँ निभाये जाने की दिलचस्प रंगयुक्ति का सहारा लिया है। महेन्द्रनाथ की जगह पर जगमोहन को रख देने से स्थिति में कोई बुनियादी अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि परिस्थितियों के ढांचे में व्यक्ति लगभग समान ढंग से बर्ताव करता है। इसी अनुभव पर बल देने के लिए कुछेक प्रदर्शनों में नाटक की शुरूआत के साथ एक सपाट कमरे में लगे मुखौटे को आलोकित करता था।

'आधे–अधूरे' का कार्य–स्थल मकान का बैठने का कमरा है, जिसमें सोफे, कुर्सियाँ, अलमारी, किताबें, फाइलें आदि हैं। यह कमरा एक समय साफ–सुथरा रहा होगा, पर सालों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण अब सब पर धूल की तह जम गयी है। क्राकरी पर चटखन है। दीवारें मटमैली हो गयी हैं। परिवार का हर सदस्य एक दूसरे से कटा हुआ है। घर की हवा–तक में उस स्थायी तल्खी की गंध है, जो पाँचों व्यक्तियों के मन में भरी हुई है–ऊब, घुटन, आक्रोश, विद्रूप...दम घोंटनेवाली मनहूसियत जो मरघट में होती है।

यह नाटक एक टूटते हुए मध्यवर्गीय परिवार के बारे में है। इसके केन्द्र में है सावित्री, तीन बच्चों की माँ और एक नाकामयाब पुरुष की पत्नी। परिवार को बचाने के लिए सारे उतार–चढ़ाव का सामना करने के साथ–साथ वह सम्पूर्ण पुरुष की भी तलाश में है। उसका सम्पूर्ण मोहभंग और उससे पैदा होने वाली मध्यवर्गीय अस्तित्व के स्तर पर हताशा, एक सुगठित स्थिति में उजागर हुई है जिसमें सावित्री के जीवन में आने वाले चार पुरुषों का अभिनय एक ही अभिनेता से कराने की प्रभावी रंगमंचीय युक्ति का प्रयोग किया गया है। मोहन राकेश 'आधे–अधूरे' के माध्यम से नाट्य लेखन को कई दिशाएँ प्रदान करते हैं, उदाहरणार्थ नाटकीय संघर्ष पैदा करने के लिये उन्होंने अतिनाटकीयता का सहारा न लेकर एक आम, साधारण विषय–वस्तु का चुनाव किया है। 'आधे–अधूरे' में मोहन राकेश द्वारा नाट्य संरचना की दृष्टि से अपनी लोक परम्परा से लिया गया सूत्रधार का प्रयोग, जो सभी चरित्रों का अभिनय करता है, आधुनिक हिंदी नाट्य लेखन में महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस परम्परा का निर्वाह पूरे नाटक की मूल विषय–वस्तु के ताने–बाने में इतने कौशल के साथ किया गया है कि आरोपित न प्रतीत होकर नाटक के कथ्य का एक अनिवार्य अंग बन जाता है।

इस प्रकार 'आधे–अधूरे' की संरचना में सही अर्थों में यथार्थवादी भाषा, विषय–वस्तु, चरित्र–चित्रण, ध्वनियाँ आदि का कुशलता से सामंजस्य किया गया है और इसी जटिल रूप का इस्तेमाल प्रस्तुति में किया गया है। प्रस्तुति में लोक परम्परा को आगे बढ़ाते हुए छः सदस्यों का कोरस भी शामिल किया गया है, जो सूत्रधार का विकसित रूप है को रस चरित्रों की आन्तरिक भाषा को शब्द देता है तथा कई बार मंच निर्देश भी बोलता है। इस प्रकार नाटकीय स्थितियों पर अपनी प्रतिक्रिया तथा प्रबल मनोभावों के प्रति तटस्थ दृष्टि भी प्रदान करता है। अप्रिय एवं कर्कश संगीत का प्रयोग मात्र नाटकीय चरमोत्कर्ष के लिये ही नहीं है, बल्कि चरित्रों के जीवन में व्याप्त कटुता एवं कर्कशता को प्रकट करने के लिए है। संगीत, वातावरण की ध्वनियों से इतना जुड़ा हुआ है कि किसी चरित्र के स्वर से अथवा किसी वस्तु विशेष की आवाज से शुरू या खत्म होता है। कई स्थल पर यथार्थवादी मनोभावनाओं की अतिरंजना के लिये भी शुद्ध ध्वनियों का प्रयोग किया गया है।

इस प्रस्तुति में घोर यथार्थवादी एवं अतिनाटकीय तत्त्वों का सामंजस्य करने का प्रयत्न किया गया है जिसके माध्यम से नाटक का मूल कथ्य अपनी पूरी प्रखरता से उजागर होता है, जिसका संबंध एक मध्यवर्गीय परिवार की भयानक स्थिति, उनका झूठा दिखावा और पारिवारिक संबंधों की असफलताओं के सत्य का सामना न करने की नपुंसकता से है। 'आधे–अधूरे' हमारे यथार्थ का सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब है तथा नाटककार की असमझौतावादी साफगोई की रोशनी में प्रकाशित चरित्रों में दर्शक अपने–आपको देखकर अन्दर ही अन्दर हिल उठता है।

2.6.3 युग–बोध

प्रत्येक रचनाकार अपने युग से प्रभावित होकर रचनाकर्म करता है। तत्कालीन समाज, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्थिति और आवश्यकताएँ उसकी रचना में प्रतिबिम्बित होती है। मोहन राकेश की रचनाओं में भी यह युग बोध अपने रम पर पूरी उत्कृष्टता के साथ दिखाई देता है। वे अपने युग से प्रभावित हैं और युग की नब्ज पकड़ कर चलते हैं। मोहन राकेश की दृष्टि अत्यंत सूक्ष्म एवं गहन तत्त्वों को पकड़ने की क्षमता रखती है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के विकास की प्रक्रिया में हर क्षेत्र विज्ञान तक भौतिकवाद से प्रभावित है। पाश्चात्य संस्कृति को अपनाकर आधुनिक बनने की होड़ में भारतीय समाज का मध्यवर्ग सर्वाधिक पतित हुआ है। मध्यवर्ग वैसे भी हर परिवर्तन के लिए उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए जिम्मेदार माना जाता है। उच्च वर्ग में शामिल होने की उसकी महत्वाकांक्षा उसे पथभ्रष्ट, कुंठित, असंतुष्ट, भटकन एवं एकाकीपन का शाप झेलने के लिए विवश करती है। युवा वर्ग काम करना अशोभनीय मानते हुए सोचता है कि वह काम करता हुआ निम्नवर्गीय लगेगा इसलिए अकर्मण्य हो जाता है। महत्वाकांक्षाएँ उसे कल्पना लोक में घुमाती हैं अतः शिक्षा बुद्धि को अर्थ विकसित करती है। इसलिए वह सुखों की परिभाषा को जान नहीं पाता और अशोक, सावित्री बिन्नी, किन्नी, महेन्द्रनाथ जैसे चरित्रों की सृष्टि होती है। वर्तमान युवा पीढ़ी माता–पिता के प्रति कितनी कटु, अमर्यादित, असभ्य भाषा का प्रयोग कर सकती है यह अशोक के चरित्र से पता चलता है। आत्मनिर्भर स्त्रियों की मानसिकता का पता सावित्री के चरित्र से चलता है। हर मध्यवर्गीय आत्मनिर्भर स्त्री सावित्री नहीं होती, लेकिन समाज में ऐसी असंतुष्ट, भटकती महत्वाकांक्षी स्त्रियों की संख्या बढ़ती जा रही है। मोहन राकेश सात्रि और उसके गृहस्थ जीवन के माध्यम से तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब दिखाते हैं। कलह, अशांति, कटुता, व्यंग्यात्मक संवाद, तनाव, द्वंद्व, असंतुष्टि, पलायनवादी प्रवृत्ति, अकर्मण्यता आदि वर्तमान युग की सर्वाधिक व्याप्त रहने वाली प्रवृत्तियाँ हैं जिन्हें इस नाटक में स्थान मिला है। युग–बोध की अभिव्यक्ति में नाटककार सफल रहा है। नाटक में कथ्य की सफल अभिव्यक्ति है। यह युग के यथार्थ को प्रस्तुत करने वाला नाटक है जिसमें भाषा, ध्वनि, संवाद, पात्र निर्देशन सभी कुछ प्रभावशाली एवं मर्मस्पर्शी है। मोहन राकेश ने सामान्य विषय वस्तु के माध्यम से जटिल यथार्थ को सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। संपूर्णता की तलाश में भटकती स्त्री सावित्री का चरित्र इस युग का सत्य है। कटुता, तनाव, द्वंद्व के कारण नीरस होते पारिवारिक संबंध, बिखरते गृहस्थ जीवन की झाँकी दिखाने वाला यह नाटक बहुत गहरी बात कह जाता है।

2.6.4 प्रयोगधर्मिता

'आधे–अधूरे' नाटक में मोहन राकेश ने एक अनूठा प्रयोग यह किया कि एक मुख्य पुरुष को पाँच भूमिकाएँ करने के लिए नियुक्त किया। पहले वह काले सूट वाला सूत्रधार बनता है फिर एक के बाद एक ऊपी वस्त्र बदल–बदल कर रंगमंच पर आता है– महेन्द्रनाथ, सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा बनकर। किन्नी, बिन्नी, अशोक की वेशभूषा में परिवर्तन नहीं होता केवल सावित्री दूसरे अंक के लिए साड़ी बदलती है। यह खुले एवं बंद नाट्यगृहों दोनों में प्रभावशाली तरीके से मंचित होने वाला नाटक है। मध्यवर्गीय अभावग्रस्त घर को दिखाने के लिए टूटा–फूटा सामान और फर्नीचर प्रयोग किए गए। पात्रों को बिना मेकअप के प्रस्तुत किया गया। ध्वनि, प्रकाश और संवाद का संयोजन अद्‌भुत था। धाराप्रवाह बोले जाने वाली बातों की गहनता भी छूती है और धारावाहिक रूप से बोले जाने वाले छोटे–छोटे वाक्यों का प्रभाव भी अमिट बना रहता है। मोहन राकेश ने मंच और पात्रों की चमक–दमक के स्थान पर

यथार्थ प्रस्तुति देने का प्रयास किया है जो मध्यवर्गीय परिवार के संघर्ष और अनुभूतियों को जीवंत बनाता है। मोहन राकेश प्रयोगधर्मी नाटककार हैं। नाटक के कथ्य को आम जनता तक पहुँचाने के लिए उन्होंने सरल, आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। अतः जहाँ–जहाँ इस नाटक का मंचन हुआ वहाँ उसने सफलता, ख्याति और प्रशंसा प्राप्त की। हिंदी नाटककार समकालीन स्थितियों और जीवन से जुड़े चरित्रों को लेकर एक सफल नाटक लिख सकता है। यह बात मोहन राकेश ने सिद्ध कर दिखायी। तीन बच्चों की माँ सावित्री का चरित्र दर्शकों को गहराई तक झकझोर देता है। असफल, नाकारा पति महेन्द्रनाथ और सावित्री की भटकन दर्शकों को आम जीवन के बीच ले जाती है। कलकत्ता के श्यामानंद जालान लिखते हैं – ''आधे–अधूरे'' मोहन राकेश द्वारा रचित एक जीवन्त नाट्य रूप और हिंदी नाटक लेखन में नाटकीय संवाद की खोज का चरम बिंदु है।'' नाटक में उपस्थित दृश्य, जैसे सामानों पर छाई धूल और सावित्री का उसे झाड़ना संकेतात्मक है कि रिश्तों पर गलतफहमी की धुंध पड़ गयी है जिसे सावित्री साफ करने का प्रयास करती है। फटी पत्रिकाएँ, दीमक लगी फाइलें, टूटी प्लेटें, बिखरा सामान, घर में छाई कुंठा, तनाव और उदासी को व्यक्त करते हैं। कलात्मक दृष्टि से देखने वालों ने इसे दोष भी कहा किन्तु यथार्थ को जानने–परखने की दृष्टि से लैस दर्शकों की भीड़ ने राकेश जी की प्रयोगधर्मिता को सराहा। आधे–अधूरे अपने युग की सफलतम कृति है, जिसे दर्शनीयता और पठनीयता दोनों दृष्टियों से सफल कहा जा सकता है।

2.6.5 भाषा शैली

भाषा और संवाद का विकास इस नाटक में दिखाई देता है। शब्दों का चुनाव और विन्यास। अभिव्यक्ति, बल्कि निश्चित और प्रभावकारी ढंग से सम्प्रेशा की निरंतर ललक। अर्थ और ध्वनि दोनों के माध्यम से न सिर्फ विचार बल्कि भावावेग के सम्प्रेषण की भी। आधे–अधूरे की प्रभावी भाषा उसी खोज की उपलब्धि है, जो 'लहरों के राजहंस' के प्रथम लेखन के बाद शुरू हुई थी और उस नाटक में संशोधित रूप में मौजूद है, और जो 'आधे–अधूरे' में खिलकर आयी है।

'आधे–अधूरे' की बहुत बड़ी विशेषता नाटक की रंगमंच की भाषा के प्रति गहरी समझ है। रंगमंच, दृश्य एवं श्रव्य तत्त्वों का माध्यम है, और इस क्षेत्र में मोहन राकेश नई, जमीन रचते हैं। नाटकीय उपलब्धियों के लिए अमूर्त काव्य आदि साहित्यिक रूढ़ियों का मोह छोड़कर 'आधे–अधूरे' रोजमर्रा के जीवंत यथार्थ को प्रस्तुत करता है। यह यथार्थ अपने आप में जटिल है जो कि सूत्र में बंधना या परिभाषित होना स्वीकार नहीं करता है, किंतु साथ ही अपनी लगातार परिवर्तनशीलता तथा रहस्यात्मक विशेषता के कारण उत्तेजक है। यह अपरिभाषित एवं जटिल यथार्थ केवल इस नाटक के कथ्य का ही नहीं बल्कि इसमें प्रयुक्त भाषा का भी निर्धारण करता प्रतीत होता है। इस प्रकार कथ्य एवं रूप ने एकाकार होकर इस नाटक का रूप जिसके आधार पर इसे आधुनिक यथार्थवादी नाट्य लेखन में 'क्लासिक' की संज्ञा दी जा सकती है।

नाटक की भाषा सादी, सच्ची और एक समान तनाव–भरी है। इसमें एक ओर जहाँ बोलचाल की भाषा की लय और उसकी बुनावट है, वहीं दूसरी ओर सहज प्रवाह एवं स्वतः स्फूर्तता भी है। अनुभूति की सूक्ष्मता को प्रकट करने वाले ध्वनि और मौन के समन्वय की गहरी समझ रखने वाला केवल एक श्रेष्ठ रचनाकार ही वह उपलब्ध कर सकता था, जो राकेश ने किया है। संभवतः मुखर मौन में भी नाटक–तत्त्व अधिक रहता है– संघन संवाद की अपेक्षा अनुच्चरित विचारों में। जैसा कि संगीत में है जो मौन ध्वनि की व्यवस्था का एक भाग होता है। नाटकीय शब्द के लिए राकेश का सम्मोहन उनकी खोज का एक हिस्सा है– अस्तित्त्व के जटिल, गहरे एवं सूक्ष्म स्तरों की अभिव्यक्ति के लिए और उस भाषा को पकड़ने के लिए जिसमें हमारे समय के विखंडित व्यक्तियों के प्रामाणिक स्वर बोल सकें।

इस नाटक की शक्ति घोर साहित्यिक एवं कृत्रिम भाषावली से मुक्त है। यह वो सहज भाषा है जो हम रोजमर्रा की जिन्दगी में बोलते हैं, किंतु जिसमें हमारे सभी अनकहे भावों की कसमसाहट मौजूद है और प्रकटतः बिना काव्यात्मक होते हुए भी जिसमें काव्य का अनुपम सौन्दर्य है।

संप्रेषणीयता के साथ–साथ भाषा में वनियों की सजगता भी शामिल है। ध्वनियाँ, जैसे अशोक की कैंची की ध्वनि, टिनकटर, कप–प्लेटों की या महेन्द्र के फाईल झटकने की आवाजें आदि जो एक ऐसा वातावरण निर्मित करती हैं जिसमें चरित्रों की आन्तरिकता मुंह से बोलने की अपेक्षा अधिक मुखर हो उठती है। इन आवाजों और कुछ दृश्य बिम्बों के अतिरिक्त मोहन राकेश ने, अपने मंच–निर्देश के अनुसार कुछ अन्य रोजमर्रा के हाव–भावों का प्रयोग प्रतीकात्मक रूप से किया है– जैसे सावित्री टेबल कवर को खींच कर उसमें अपना मुंह छिपा लेती है या परेशान सी अपने पर्स को टटोलती है। इन भावों में चरित्र की आन्तरिक वेदना एवं खोयापन अपनी पूरी शक्ति एवं समग्रता से प्रकट होता है।

2.7 आधे–अधूरे : आधुनिकता

'आधे–अधूरे' आधुनिक युग के प्रश्नों को लेकर लिख गया सामाजिक बोध का नाटक है और मध्यवर्गीय नारी–पुरुष संबंधों पर प्रकाश डालता है। पारिवारिक परिवेश में नारी की भूमिका क्या है? उसमें असन्तोष क्यों है वह कैसी पूर्णता चाहती है आदि अनेक प्रश्न नाटक में उठते हैं। उत्तर तलाशने की चेष्टा राकेश नहीं करते, उनके पास कोई 'रेडीमेड' समाधान नहीं है। बड़ी लड़की का प्रश्न है–''अंकल, सचमुच कुछ नहीं हो सकता क्या?'' और चतुर्थ पुरुष जुनेजा का उत्तर हैः ''एक दिन के लिए हो सकता है, शायद दो दिन के लिए हो सकता है, पर हमेशा के लिए नहीं।'' मोहन राकेश का मुख्य प्रयोजन पारिवारिक परिवेश में मध्यवर्गीय नारी की स्थिति और नारी–पुरुष संबंधों पर दृष्टि डालना है और इसके लिए उन्होंने सावित्री को चुना। समानान्तर चरित्र के रूप में उसकी बेटी बिन्नी को रखा और दोनों को द्वंद्व से गुजारा। दोनों असन्तुष्ट हैं और दोनों विक्षुब्ध ! तनाव के कोई बड़े कारण हों, ऐसा भी नहीं है, तनाव है सो है। माँ–बेटी के व्यक्तित्त्व की बनावट के कारण भी ऐसा है और पूरा पारिवारिक परिवेश तो है ही।

जीवन में पूर्णता की तलाश वह भी व्यक्ति के माध्यम से, एक निष्फल खोज है। पुरुष चार जुनेजा, नाटक के लगभग अन्त में नायिका सावित्री का विश्लेषण करते हुए उसी से कहता है– ''असल बात इतनी है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता, तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल–दो साल बाद तुम यही महसूस करतीं कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है– कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ छोड़कर जीना। वह उतना कुछ तुम्हें एक साथ किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती, तुम हमेषा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहतीं। यहाँ राकेश की दृष्टि नारी पक्ष का द्वंद्व उजागर करने में अधिक है, वह भी आज के आधुनिक प्रवृत्ति के सन्दर्भ में। नाटक में नारी का प्रश्न है कि कहाँ है उसका घर, जिसमें वह अपनी निजता को पा सके? कहाँ है वह संबंध, जहाँ वह अपने को सार्थक अनुभव करे? और सबसे बड़ा प्रश्न है कि कहाँ है वह पुरुष जिसमें वह पूर्णता देखे?

आधे–अधूरे की कथा सामायिक है इसलिए यहाँ नारी–पुरुष प्रश्न और भी प्रखरता से उभरे हैं। इसके पूर्व नारी एक निश्चित स्थान था, स्थिर मान्यताएँ थीं और थीं स्त्री के मन में उन मान्यताओं के प्रति दृढ़ आस्था, अटूट विश्वास समय की गति के साथ धारणाएँ बदलीं, आस्था का स्थान विद्रोह ने लिया। नारी–जीवन की मान्यताओं में बदलाव आया और उन आस्थाओं को बन्धनों के रूप में देखा जाने लगा। महत्वाकांक्षाओं में डूबी नारी को नई राह पर चलते–चलते एक असमंजस की स्थिति का सामना करना पड़ा। आरम्भ में तो उस स्वतंत्रता में नारी को कुछ सन्तोष मिला पर शीघ्र ही एक बिखराब आया। सारा ढांचा ही चरमराता प्रतीत होने लगा। पूर्व पश्चिम के जीवन मूल्यों की टकराहट, आर्थिक समस्याएँ, टूटती हुई मान्यताएँ, ढहती आस्था इन सबके मध्य नारी स्वयं अपने को खोने लगी, तनावों और अन्तःसंघर्षों से बिखरने लगी। नायिका सावित्री में यह प्रतिबिम्बित है।

नायिका सावित्री अन्तःसंघर्ष से गुजरती है– एक नारी, पुरुष अनेक। उसकी बड़ी बेटी बिन्नी भी अपने पति मनोज से असन्तुष्ट है। 'आधे–अधूरे' का नायक थका–हारा महेन्द्रनाथ फिर सावित्री के पास लौट आता है।

नाटक में स्थिति यह है कि इस मामले में वर्चस्व नारी का है कि पुरुष बार–बार उसके पास लौटता है, यही उसकी नियति है; जैसे– इन नाटकों का अन्त मार्मिक है। 'आधे–अधूरे' में महेन्द्रनाथ फिर लौटता है लड़खड़ाते पांवों पर, क्योंकि उसे घर की आवश्यकता है और वह सावित्री को छोड़कर कहीं जा नहीं सकता। यह एक ऐसा बन्धन है जिससे चाहकर भी वह मुक्ति नहीं पा सकता। मोहन राकेश का आशय नारी को प्रमुखता देना है, और इस माध्यम से नारी–पुरुष संबंधों का विश्लेषण करना भी।

'आधे–अधूरे' में चार पुरुष हैं: महेन्द्रनाथ सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा। सबके केन्द्र में है सावित्री। नारी और पुरुष के व्यक्तित्व जब इस नाटक में टकराते हैं तो मोहन राकेश नारी को वर्चस्व देते हैं। यहाँ नारी प्रिया है तो संवेदनशील भी है अैर स्त्री है तो प्रभावी, उसका अपना एक व्यक्तित्व है। यह बात दूसरी है कि इसी से द्वंद्व उपजे हैं। यह द्वंद्व, तनाव, अतिरिक्त महतकांक्षा एक साथ थोड़े समय में सब कुछ पा लेने की बेचैनी आधुनिक युग में मिला अभिशाप है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. सावित्री का संक्षिप्त परिचय दीजिए?
2. महेन्द्रनाथ का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. आधे–अधूरे नाटक का परिवेश कैसा है?
4. आधे–अधूरे नाटक में किन भावों की प्रधानता है?
5. आधे–अधूरे नाटक की युवा पीढ़ी पर टिप्पणी कीजिए।

2.8 सारांश

'आधे–अधूरे' महानगरीय आधुनिक भारतीय मध्यवर्गीय परिवार में व्याप्त बिखराव एवं संत्रास की कहानी है। यह स्त्री–पुरुष के बीच लगाव एवं तनाव, आसक्ति एवं विरक्ति का दस्तावेज है, जो आडंबर हीन, अकृत्रिम शैली में प्रस्तुत किया है। इसका कथानक एक मध्यवर्गीय घर पर केन्द्रित है। इस घर में एक स्त्री सावित्री, उसका पति महेन्द्रनाथ तथा तीन बच्चे बिन्नी और किन्नी बेटियाँ तथा अशोक एक बेटा, रहते हैं। वे सभी सदस्य साथ रहते हुए भी एक–दूसरे से कटे हुए, एक–दूसरे को नापसन्द करते हुए, मन से दूर–दूर हैं। ावित्री इस कथा की धुरी है, मुख्य नायिका है। यह संघर्ष करती हुई, अकेली नौकरी करके परिवार का भरण–पोषण करती हुई सहानुभूति की पात्र लगती है लेकिन वहीं दूसरी ओर अनेक पुरुषों के साथ संबंध स्थापित करती हुई वह चारित्रिक दृष्टि से कमजोर महिला दिखाई देती है। पति महेन्द्रनाथ व्यवसाय में सब कुछ गंवाकर बेरोजगार घर में बैठा रहता है। लड़का अशोक भी नाकारा है। वह न शिक्षा में दिलचस्पी लेता है न व्यवसाय में। एक लड़की से प्रेम करता है और घर की चीजें उठा–उठाकर उसे उपहार में दे देता है। फिल्मी पत्रिकाएँ पढ़ना, तस्वीरें काटकर रखना ओर आवारागर्दी करना यही उसके काम हैं वह माँ के व्यवहार से और पिता से भी असंतुष्ट खीझ से भरा दिखाई देता है। बड़ी लड़की बिन्नी मनोज नामक युवक के साथ भागकर विवाह कर लेती है। लेकिन विवाह के बाद भी उसका असंतोष और भटकन समाप्त नहीं होती वह बार–बार भागकर मायके आ जाती है। मनोज अच्छा व्यक्ति है लेकिन पहले वह सावित्री का अर्थात् बिन्नी की माँ का प्रेमी या मित्र हुआ करता था। सावित्री के लिए ही घर आता था, सावित्री उस अपने से आयु में छोटे युवक के भीतर भी अपनी संतुष्टि को तलाशती थी। उसे आश्चर्य हुआ ज बवह उसकी बेटी को लेकर भाग गया और फिर उसके साथ विवाह करके गृहस्थी बसा ली। बिन्नी यह नहीं समझती थी कि उसके पति के साथ उसकी माँ के संबंध कैसे थे। सावित्री की अतश्प्त इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं के संस्कार बिन्नी में भी हैं। वह भी सदैव बेचैन रहती है। मनोज चूँकि माँ और बेटी दोनों के निकट रहा है इसलिए वह दोनों की

असंतोषी प्रवृत्ति को जानता है। अतः बिन्नी जब भी बहस करती है वह कहता है कि – ''तुम इस घर से ही ऐसी चीज लेकर गई हो जो तुम्हें स्वाभाविक नहीं रहने देगी।'' बिन्नी मनोज की बात को सच मानती है, वह जानना चाहती है कि वह ऐसी क्या चीज मेरे भीतर है जो मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देती। वह हर काम मनोज की इच्छा के विरूद्ध करना चाहती है ताकि उसे चोट पहुँचा सके। मनोज को दुखी देखकर उसे चोट पहुँचाकर उसे शांति मिलती है। वह नौकरी करना चाहती है क्योंकि मनोज को यह पसंद नहीं है। वह अपने लम्बे बाल कटवाना चाहती है क्योंकि वे मनोज को पसंद हैं। वह सावित्री से पूछती है कि–दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहें, एक हवा में साँस लें उतना ही ज्यादा वे एक–दूसरे से अजनबी होते जाते हैं क्या?

छोटी बेटी किन्नी स्कूल में पड़ती है। कोई उसकी तरफ ध्यान नहीं देता। न उसके कपड़ों, मोजे, फीस, पढ़ाई के बारे में सोचता। वह लावारिस की तरह घूमती है। भाई की पत्रिकाएँ पढ़ती है। अपनी पड़ोस की, स्कूल की लड़कियों से प्रेम–संबंधों की बातें करती है। एक तरह से उसका मानसिक और बौद्धिक पतन आरंभ हो गया है। वह चाहती है उसे आम बच्चों की तरह माता–पिता, भाई–बहन का प्यार मिले, सभी उसका ध्यान रखें लेकिन यह अभाव उसे विकृत मनोवृत्ति वाला बना देता है। आर्थिक अभाव के साथ–साथ आपसी सौमनस्य का अभाव उस घर में केवल तनाव और टूटन को जन्म देता है और दिलचस्प बात यह है कि सबके आरोपों का केन्द्र बिन्दु सावित्री बनती है जो घर की एक मात्र कमाने वाली सदस्य है।

महेन्द्रनाथ सावित्री से और अपने परिवार से बहुत प्रेम करता है। लेकिन अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने में वह अक्षम है। उसके पास निर्णय लेने की शक्ति नहीं है, मित्रों की बातों में आकर वह व्यवसायिक क्षेत्र में सब कुछ गंवा बैठा। वह मित्रों द्वारा ही ठगा गया ऐसा सावित्री मानती है। मित्रों की बातों से प्रोत्साहित होकर ह ीवह घर में सावित्री के साथ दुर्व्यवहार करता है। वह नकारा है। गृह स्वामी होतु हुए भी उसकी हैसियत घर में एक रबर के टुकड़े के समान या नौकर के समान है। वह सावित्री की कमाई पर पलता है। सावित्री के पुरुष मित्रों को जानता है और यदा–कदा उन मित्रों के साथ सावित्री के अनैतिक संबंधों की चर्चा करके मन की भड़ास निकालता रहता है। अपने चोट खाए आत्म सम्मान को बचाने के प्रयत्न में कभी–कभी घर छोड़कर चला जाता है और दो–तीन दिन तक नहीं लौटता। सावित्री दिन भर नौकरी करने के बाद शाम को घर लौटती है तो उसे घर का सामान बिखरा हुआ, अस्त–व्यस्त मिलता है, पति और बच्चे भी घर पर उसकी प्रतीक्षा करते नहीं मिलते तो वह आहत होती है कि न बच्चे और न पति उसकी प्रतीक्षा में मिलते हैं। न घर, घर जैसा व्यवस्थित मिलता है। वह थकी हुई अवस्था में बड़बड़ाती जाती है और घर को व्यवस्थित करती है। पति और बेटे को नौकरी मिल सके इसलिए वह अपने बॉस से घनिष्ठ संबंध बनाती है, उसे घर बुलाती है और चाहती है कि घर के लोग उसका स्वागत करें। लेकिन उसके बॉस या पुरुष मित्रों का इस तरह घर आना, सावित्री के साथ घूमना बच्चों को पसंद नहीं है न महेन्द्रनाथ को। वे जुनेजा, सिंघानिया, मनोज आदि के साथ सावित्री के संबंधों को अनैतिक और स्वार्थ प्रेति मानते हैं। अशोक सावित्री से व्यंग्यात्मक वाद–विवाद करता है और स्पष्ट कर देता है कि मेरे लिए कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। इन बड़े–बड़े लोगों के आने से हमें अपमान और हीनता का बोध होता है।

सावित्री आहत स्त्री है। वह बेटे द्वारा की गई उपेक्षा और तिरस्कार से आहत होकर निर्णय लेती है कि वह घर छोड़कर चली जाएगी। इस घर की चिंता नहीं करेगी केवल अपने सुखों और खुशियों का ध्यान रखेगी। सावित्री एक महत्वाकांक्षी स्त्री है। जीवन से उसे अनंत और बहुमुखी अपेक्षाएँ हैं। वह सब कुछ बहुत शीघ्र और एक साथ पा लेना चाहती है। यही कारण है कि महेन्द्रनाथ से विवाह करने के बाद ज बवह उसकी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरता तो उसे उससे वितृष्णा हो गई। वह भी जुनेजा में सब कुछ ढूंढने लगी, कभी सिंघानिया, कभी जगमोहन और कभी मनोज में। वह अतृप्त स्त्री है। मन की अतृप्ति उसे अमर्यादित बना देती है। पर पुरुष के साथ घूमना, उसके साथ जीवन बिताने की योजना बनाना और स्वयं को कुटिलता पूर्वक परिवार के सुख–समृद्धि का कारण बता कर उसकी आड़ लेना उसकी चारित्रिक दुर्बलता को दिखाता है। महेन्द्रनाथ की बेकारी उसे और भी

कटु बना देती है। एक ओर घर चलाने का असह्य बोझ है और दूसरी ओर जिन्दगी में सब कुछ न पा सकने की तीखी कसक है। सावित्री कहती है कि वह अपनी बची खुची जिन्दगी को एक पूरे, संपूर्ण पुरुष के साथ बिताना चाहती है। लेकिन यह उसकी भूल है क्योंकि वह नहीं जानती कि संपूर्णता की तलाश ही बेमानी है।

नाटक के अंत में जुनेजा और सावित्री के बीच का संवाद न केवल सावित्री को आइना दिखाता है बल्कि सावित्री अपनी बर्बाद गृहस्थी का आरोप जुनेजा पर मढ़ देती है। जुनेजा उससे कहता है कि– तुम्हारी महेन्द्र के संबंध मे जो मानसिकता है कि वह अपूर्ण पुरुष है, गलत है। तुम जिस तरह अतृप्त, असंतुष्ट हो वह सोच और भटकन तुम्हारी प्रवृत्ति है। तुम्हारा विवाह महेन्द्र से न होकर जगमोहन से, शिवजीत से, जुनेजा, सिंघानिया या मनोज किसी से भी होता, अंततः उस पुरुष के संबंध में तुम्हारी यही धारणा होती। क्योंकि तुम सब कुछ एक साथ, एक व्यक्ति में पाना चाहती हो जो सम्भव नहीं है। कोई भी व्यक्ति संपूर्ण नहीं होता। हर व्यक्ति को हर चीज एक साथ नहीं मिलती। सब को सब कुछ नहीं मिलता लेकिन तुम सुख, शांति को अपने भीतर न तलाशकर बाहर तलाशती हो इसलिए तुम भटकती रही हो। एक पुरुष से दूसरे पुरुष और दूसरे से तीसरे तक की यात्राओं का कोई अंत नहीं है। महेन्द्रनाथ सब कुछ जानते हुए भी सावित्री के पास लौट आता है। वह घर से प्रेम करता है, एक ऐसा घर जिसमें घर जैसी स्निग्धता, सुरक्षा, शांति के भावों और उष्मा का लोप है। जहाँ बच्चे, माता–पिता का सम्मान नहीं करते। जहाँ पिता बच्चों को पिता जैसी सुरक्षा, प्यार और सुविधाएँ नहीं दे पाता। आलसी और कायर पिता जा केवल बड़बड़ाता है, सिगरेट पीता है और घर से कई–कई दिन गायब रहता है, को बच्चे अपना अभिभावक कैसे मान सकते हैं? माँ पराए पुरुषों के साथ घूमती है और घर का बोझ ढो रही हूँ इस बात को रोना रोती रहती है, बच्चों के जीवन उनके संस्कारों और शिक्षा की ओर उसका ध्यान नही नहीं है। घर के इस तनाव, द्वंद्व और कटुता से भरे वातावरण का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। छोटी लड़की भी बिगड़ती जा रही है। बेटा पढ़ाई छोड़कर आवारागर्दी करता है और बड़ी बेटी ने भागकर विवाह कर लिया। छोटी बेटी की जुबान कैंची की तरह चलती है। वह बदमिजाज होती जाती है। सावित्री को थोड़ी सहानुभूति केवल बड़ी बेटी से मिलती है।

यह घर आंतरिक स्तर पर टूटा हुआ है। हर कोई संबंधों के स्तर पर अधूरा है। संतुष्टि और पूर्णता की तलाश में भटक रहा है। आर्थिक स्थिति इस टूटन के लिए उत्तरदायी तो है ही साथ ही बड़ा हाथ मानसिकता का भी है। सावित्री अपनी कमजोरियों की वकालत करती है। वह स्वयं को सही सिद्ध करती है। महेन्द्रनाथ के लिए उसका कथन है कि–''आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत हो? जब से मैंने उसे जाना है, हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी न किसी का सहारा ढूंढते पाया है। वह खुद एक आदमी का आधा–चौथाई भी नहीं है।'' सावित्री महेन्द्रनाथ से कभी संतुष्ट नहीं रही। वह कहती है कि आदमी घर बसाता है अपने अंदर के अधूरेपन को भरने के लिए लेकिन महेन्द्रनाथ सदा मित्रों के अधूरेपन को भरने की चीज बना रहा। व्यक्तित्त्वहीन पति के कारण उसके अंदर खीझ, ऊब और बेचैनी बढ़ती जाती है तथा वह महेन्द्रनाथ से बेहतर इंसान खोजने के क्रम में कभी जगमोहन से निकटता बढ़ाती है, कभी सिंघानिया से कभी जुनेजा से। महेन्द्रनाथ को सावित्री के विभिन्न पुरुषों से संबंध की जानकारी है अतः समय–समय पर व्यंग्य करके वह अपनी खीझ व्यक्त करता रहता है।

मोहन राकेश ने स्त्री पात्रों को प्रमुखता दी है। महेन्द्रनाथ को दब्बू और नाकारा दिखाया गया है। इस तरह घर की आर्थिक स्थिति की डोर सावित्री के हाथ में है। महानगर हो या गाँव आर्थिक समस्या मानव जीवन की प्रमुख समस्या है जो जीवन के हर पक्ष को प्रभावित करती है। शिक्षा, रहन–सहन, आचार–विचार सभी इससे प्रभावित होते हैं। आधे–अधूरे के पात्रों को विकृत आचार–विचार वाला बनाने में इस समस्या की मुख्य भूमिका है। यदि महेन्द्रनाथ एक जिम्मेदार कमाऊ पति होता तो सावित्री की नौकरी का उपयोग उसके मनोरंजन और ऐशो–आराम के लिए होता घर चलाने के लिए नहीं। बच्चों की शिक्षा ठीक से हो पाती। बच्चों के भीतर अभावों से

उत्पन्न क्रोध, खीझ और हीनता की भावना नहीं होती। लेकिन पूरा दोष आर्थिक स्थिति को ही नहीं दिया जा सकता, क्योंकि बहुत गरीबी में जीवन बिताने वाले भी प्यार और सुख से रहते देखे जाते हैं। दरअसल महानगरीय आधुनिक सभ्यता की देन है– असीम महत्वाकांक्षाएँ, असंतोष, द्वंद्व, तनाव, कुंठा, अतृप्ति भटकाव। यह सब कुछ सावित्री, बिन्नी, किन्नी, अशोक और महेन्द्र में है। वे सभी असंतुष्ट और अधूरे हैं। सभी सुख और संतुष्टि के लिए गलत रास्तों का प्रयोग कर रहे हैं। कथा पर दृष्टि डालें तो सावित्री का दोष अधिक दिखाई देता है लेकिन दूसरी ओर आर्थिक स्थिति ठीक करने का संघर्ष करने वाली एक मात्र सदस्य वह है जिससे घर का कोई भी सदस्य सहानुभूति नहीं रखता, सिवाय बिन्नी के। अशोक का उस पर आरोप लगाना और कटु संवाद उसकी कृतघ्नता को दर्शाते हैं जो वर्तमान युवा में अधिकतर देखी जा रही है। नाटक में पाश्चात्य संस्कृति का संक्रमण दिखाई देता है, जहाँ सभी अपने–अपने सुख की खोज में भटक रहे हैं। मर्यादाहीन बच्चे, गरिमाहीन माता–पिता और संस्कारहीन घर, जो घर कम धर्मशाला अधिक लगता है। आधुनिक परिवेश को अभिव्यंजित करता यह नाटक मोहन राकेश की अनुपम कृति है जो मन पर अमिट प्रभाव छोड़ता है। तथापि विडम्बना यह है कि नाटक का एक भी पात्र ऐसा नहीं है, जिसका स्वभाव और व्यवहार अनुकरणीय हो। इन पात्रों से केवल यही सीखा जा सकता है कि मनुष्य को ऐसा नहीं होना चाहिए।

2.9 मुख्य शब्दावली

रुतबा – पदवी

सुर्खरू – कामयाब

शिकंजा – पकड़–गिरफ्त

महसूस – अनुभव करना

2.10 'अपनी प्रगति जाँचिए' के उत्तर

1. सावित्री महेन्द्रनाथ की पत्नी और आधे–अधूरे नाटक की मुख्य नायिका है। यह नौकरी करके परिवार का भरण–पोषण करती है। यह अतृप्त और महत्वाकांक्षी स्त्री है जो पथभ्रष्टता का शिकार होती है।
2. महेन्द्रनाथ आधे–अधूरे का नायक है। सावित्री का पति है। यह बेरोजगार, आलसी, अकर्मण्य पुरुष है जो मित्रों के संकेत पर जीवन संचालित करता है।
3. 'आधे–अधूरे' शहरी परिवेश को लेकर रचा गया है। इसमें एक मध्यवर्गीय परिवार की कथा है।
4. आधे–अधूरे नाटक में अतृप्ति, अति महत्वाकांक्षाओं, स्वार्थ, प्रेम, घृणा, द्वंद्व, तनाव जैसे भावों का आधिक्य है।
5. आधे–अधूरे नाटक में परिवार के तीन बच्चों में से दो युवा हैं– बिन्नी और अशोक। माँ की पथभ्रष्टता और पिता की अकर्मण्यता के कारण ये भी पथ से विचलित हो जाते हैं। अशोक आवारागर्दी करता है। बिन्नी एक लड़के के साथ भागकर विवाह कर लेती है।

2.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'आधे–अधेर' नाटक के पात्र आधुनिक जीवन–शैली की विसंगतियों का परिच देते हैं। स्पष्ट कीजिए।
2. क्या 'आधे–अधूरे' नाटक में युगबोध की प्रतीति होती है। कैसे?
3. 'आधे–अधूरे' नाटक में मोहन राकेश की प्रयोगधर्मिता पर प्रकाश डालिए।

4. 'आधे–अधूरे' नाटक में मोहन राकेश की नाट्य शिल्प पर प्रकाश डालिए।
5. 'अधे–अधूरे' नाटक की अभिनेयता पर प्रकाश डालिए।
6. चरित्र–चित्रण कीजिए– (1) महेन्द्रनाथ (2) सावित्री (3) अशोक (4) बिन्नी।
7. 'आधे–अधूरे' नाटक के सहायक पात्रों–जुनेजा, सिंघानिया, जगमोहन, किन्नी पर आचार–विचारों पर केंद्रित टिप्पणियाँ लिखिए?
8. 'आधे–अधूरे' नाटक वर्तमान जीवन शैली की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। स्पष्ट कीजिए?
9. 'सावित्री की अतृप्त कामनाएँ आधुनिक स्त्री–जीवन की अतृप्ति और अपूर्णता का एक रूप है। स्पष्ट कीजिए?
10. सवित्री के जीवन, उसकी सोच और मानसिकता के पक्ष और विपक्ष में तर्क दीजिए?
11. महेन्द्रनाथ की चारित्रिक दुर्बलताओं को स्पष्ट कीजिए।

2.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

2. डॉ॰ मीना पिंपलापुरे– 'मोहन राकेश का नारी संसार' प्रकाश संस्थान नई दिल्ली, 1987
3. संपादक– नेमीचंद जैन– मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट– दिल्ली–1999
4. मोहन राकेश और उनके नाटक : गिरीश रस्तोगी, लोक भारती, इलाहाबाद।
5. आधुनिक नाटक कामसीताः मोहन राकेश, डॉ0 गोविन्द चातक, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली।
6. नाटककार मोहन राकेश : जीवन प्रकाश जोशी, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
7. मोहन राकेश का नाट्य साहित्य : डॉ0 पुष्पा बंसल, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली।

इकाई 3

आवारा मसीहा (विष्णु प्रभाकर)

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय

3.1 इकाई के उद्देश्य

3.2 आवारा मसीहा : व्याख्या

3.3 आवारा मसीहा : सार

3.3.1 जीवनी कला के परिप्रेक्ष्य में

3.3.2 संवेदनशील हृदय का अंकन

3.4 आवारा मसीहा का उद्देश्य

3.5 आवारा मसीहा की संवाद योजना

3.6 चरित्र–चित्रण

3.7 भाषा शैली

3.8 सारांश

3.9 मुख्य शब्दावली

3.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

3.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.0 परिचय

उपन्यास एक प्राचीन विधा है। उपन्यासकार एक चित्रकार की भांति होता है जो भावनाओं में भीतरी सत्य की एक झलक का तथा अंतरात्माओं के संघर्षों का वर्णन करता है। सही अर्थों में उपन्यासकार कल्पना नहीं करता। वह केवल आह्वान करता है। उसका अपने पात्रों पर कोई नियंत्रण नहीं होता, चाहे इनका अस्तित्त्व सुदूर अतीत में हो या वे हमारे वर्तमान के निकट हों। ये पात्र स्वाधीन होते हैं।

'आवारा मसीहा' विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित उपन्यास है जिसकी शैली आत्मकथात्मक प्रतीत होती है। इस उपन्यास में मानवतावादी भावना को चित्रित किया गया है। उपन्यास के मुख्य पात्र 'शरतचंद्र' के माध्यम से रूढ़ियों के परित्याग पर बल दिया गया है। कुरीतियों का डटकर विरोध किया गया ह। धर्म की आढ़ में मनुष्य स्वच्छंद न हो ऐसी कामना की गई है। उपन्यास 'आवारा मसीहा' में माना गया है कि जब परिस्थितियों से विवश होकर मनुष्य कुछ कर बैठता है, जो तत्कालीन धर्म एवं समाज की दृष्टि से बुरा हो तो मनुष्य सचमुच बुरा नहीं हो जाता है। परिस्थितियों के द्वारा ही मनुष्य निकृष्ट बन जाता है।

'आवारा मसीहा' में विष्णु प्रभाकर ने नारी के समानाधिकार की बात की है। मुख्य पात्र शरतचंद्र के माध्यम से नारी की स्वतंत्रता को महत्त्व दिया गया है। 'शरत' की नारी जीवन के प्रति संवेदनात्मक दृष्टि को उजागर किया गया है। उसने माना है कि स्वस्थ समाज व राष्ट्र की संरचना नर–नारी के परस्पर समर्पण व त्याग का ही प्रतिफल है। इस उपन्यास में आधुनिकता का पुट दर्शित है।

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्यन के पश्चात् आप समझ सकेंगे –

आवारा मसीहा के पात्र शरतचंद्र का स्त्रियों के प्रति संवेदना तथा मानवतावादी पक्ष को व्याख्या के माध्यम से;

आवारा मसीहा के सार को;

आवारा मसीहा के पात्रों के संवेदनशील ह्रदय के अंकन को;

आवारा मसीहा के उद्देश्य तथा संवाद योजना को;

आवारा मसीहा के पात्रों के चरित्र–चित्रण को;

आवारा मसीहा उपन्यास की भाषा–शैली को;

3.2 आवारा मसीहा : व्याख्या

मोतीलाल मानो आकाश में उड़ने वाले रंगीन पतंग थे और भुवन मोहिनी थी निरंतर घूमते हुए चक्र के समान सीधी–सादी प्रकृति की महिला। उसका कोमल मन सबके दुःख से द्रवित हो उठता था। इसीलिए सभी उसको प्यार करते थे, बड़े उसकी सेवा–परायणता पर मुग्ध थे, छोटे उसके स्नेह के लिए लालायित रहते थे।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यांश अमर कथा शिल्पी विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित आवारा मसीहा उपन्यास से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रभाकर जी का मानना है कि गृहस्थी की गाड़ी नर–नारी (पति–पत्नी) के पारस्परिक सहयोग से क्रियाशील रहती है। परस्पर समर्पण से परिवार तथा संबंधों का सफल निर्वाह हो सकता है।

व्याख्या : समाज में गतिशीलता एवं क्रमबद्धता बनाए रखने के लिए परिवार की संरचना आवश्यक है। परिवार की केंद्रीय शक्ति के रूप में पति एवं पत्नी दोनों का होना आवश्यक है। समान दृष्टिकोण एवं विवकेशीलता से पारिवारिक अस्तित्व जीवित रहता है। मोतीलाल एवं भुवन मोहिनी पति–पत्नी, दांपत्य जीवन का सफल निर्वाह कर रहे हैं। मोतीलाल के स्वभाव में अस्थिरता तथा काल्पनिक प्रवृत्ति विद्यमान थी। भुवन मोहिनी आदर्श गृहिणी के रूप में परिवार की संचालिका थी। सीधी एवं सरल स्वभाव के फलस्वरूप परिवार की सर्वप्रिय थी। भुवन मोहिनी के चेहरे से आर्थिक विपन्नता का भाव झलकता था अर्थात् अकिंचन स्थिति ने भुवन मोहिनी को असमय प्रौढ़ बना दिया था।

निस्वार्थ सेवा द्वारा बड़े प्रशंसा करने के लिए बाध्य होते थे वहीं छोटे स्नेहपूर्ण दृष्टि के लिए भुवन मोहिनी पर आश्रित थे।

विशेष :

शरत की पारिवारिक स्थिति का बोध होता है।

मोतीलाल के यथार्थ से पलायन करने की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

आर्थिक विपन्नता के फलस्वरूप ही मनुष्य स्वप्नों की दुनिया में विचरण करने को बाध्य होता है।

भुवन मोहिनी का आदर्श गृहिणी स्वरूप स्पष्ट हो गया है।

मनुष्य अकिंचन स्थिति में असमय प्रौढ़ता के निकट पहुँच जाता है।

मोतीलाल की परिवार के प्रति उत्तरदायित्वहीनता प्रदर्शित होती है।

सेवा, त्याग गृहिणी के आवश्यक गुण माने जाते हैं।

काव्यात्मक भाषा प्रयोग में लाई गई है।

उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है, जैसे–मोतीलाल मानो आकाश में उड़ने वाली रंगीन पतंग थे।

मनुष्य से किसी भी अवस्था में घृणा नहीं करनी चाहिए। जो व्यक्ति खराब दिखाई देते हैं, उन्हें सुधारने की चेष्टा करनी चाहिए। यह बहुत बड़ा काम है। भगवान के इस राज्य में मनुष्य जितना शक्तिशाली है, उतना दुर्बल भी।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यांश विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित जीवनी परक उपन्यास आवारा मसीहा उपन्यास से उद्धृत है।

प्रसंग : लेखक का मानना है कि विधाता की इस सृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं। सरकार द्वारा ऊंच नीच की भावना व्यक्त किए जाने पर शरत का मानवीय स्वरूप अभिव्यक्त होता है।

व्याख्या : शरत ने सहृदय युक्त जीवन जिया। किसी के दुःख–दर्द को देखकर शरत की आत्मा कराह उठती है। वह पीड़ितों की सेवा करने से आनंदित होता है। शरत का मानना था कि मनुष्यता की पहचान निर्धनता या धनाढ्यता की अपेक्षा नहीं करती, अपितु प्राणी मात्र ही केंद्रीय होता है। सभी एक ही ईश्वर की संतान हैं। ईश्वर की सृष्टि में न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। मनुष्य अपने कर्मों से महान बनता है। ऊंच–नीच की भावना व्यक्ति की संकीर्ण विचारधारा का बोध कराती है। मनुष्य से स्नेह, प्रेम की आकांक्षा रखनी चाहिए। शरत की दृष्टि में मनुष्य द्वारा कोई भी अनुचित कार्य करने पर परिस्थितियाँ मुख्य रूप से उत्तरदायी होती हैं। परिस्थितिवश निष्कृष्ट कार्य करने को मनुष्य बाध्य होता है। मनुष्य पर व्यंग्य करने की अपेक्षा उसे सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। यह कार्य अपेक्षित मन एवं कर्म की एकाग्रता पर निर्भर करता है। ईश्वर के इस संसार में विविधता अनिवार्य रूप से देखने को मिलती है। एक व्यक्ति एक समय में महान एवं शक्ति सामर्थ्य का पुंज होता है वही परिस्थितिवश दुर्बल भी हो जाता है।

विशेष :

शरत के जीवन का परोपकारी स्वरूप स्पष्ट है।

मानवतावादी भावना का चित्रण किया गया है।

मानव महिमा का गुणगान सभी धर्म ग्रंथ करते हैं।

परिस्थितियों के द्वारा ही मनुष्य श्रेष्ठ और निकृष्ट बन जाता है।

सुधारवादी प्रवृत्ति का बोध दृष्टव्य है।

शरत की चारित्रिक विशेषता परिलक्षित होती है।

शरत का संवेदनात्मक स्वरूप स्पष्ट है।

वे रूढ़ियों और कुरीतियों, अंधपरंपराओं और मूढ़ विश्वासों के विरोधी थे, धर्म की मूल स्थापनाओं के नारी। समाज के ही निषेधों के कारण सती न रहने पर भी वे यह नहीं मानते थे, कि यह असली नारी नारी भी नहीं रही। यह संकीर्ण भेद बुद्धि भी उन्होंने त्यागी थी, क्योंकि इससे मनुष्य धर्म का अपमान होता है। वह मानते थे, जब परिस्थितियों से विवश होकर मनुष्य ऐसा कुछ कर बैठता है, जो तत्कालीन धर्म एवं समाज की दृष्टि से बुरा हो, तो मनुष्य सचमुच बुरा नहीं हो जाता है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यांश श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित 'आवारा मसीहा' से उद्धृत है।

प्रसंग : यह अवतरण शरत के वैयक्तिक जीवन पर प्रकाश डालता है। इसमें शरत की विवेकशीलता तथा तटस्थ भाव पर प्रकाश डालते हुए एक ज्योतिषी अपने विचार व्यक्त करता हुआ कहता है –

व्याख्या : शरत की बहुमुखी प्रतिभा से ज्योतिषी भी अछूता न रहा। उन्होंने अपनी विवकेशीलता से स्वस्थ समाज की संरचना के लिए रूढ़ियों के परित्याग पर बल दिया, कुरीतियों का डटकर विरोध भी किया। अंधविश्वास और मूढ़ विश्वासों के दुष्परिणामों से समाज को अवगत कराकर परोपकारी भावना का परिचय दिया। उनका मानना था कि कुरीतियों, कुप्रथाओं से युक्त समाज में विकास की प्रक्रिया नहीं पनप सकती। धर्म की आड़ में मनुष्य स्वच्छंद न हो, ऐसी कामना की। समाज के दुष्परिणामों के फलस्वरूप ही नारी नारियों की तरह जीवन व्यतीत न कर परित्यक्ता का जीवन जीने को बाध्य हैं। नारी की उपेक्षा करना किसी धर्म का अंग नहीं है। संकीर्ण विचारधारा को छोड़ने से ही मानवतावादी भावना का विकास किया जा सकता है। मनुष्य का धर्म मनुष्य के हित की कामना करना है, अगर कोई मनुष्य अपने धर्म का सफल निर्वाह नहीं करता तो मनुष्य कहलाने का हकदार भी नहीं है क्योंकि मनुष्यता मानव व्यवहार पर आश्रित होती है। उन्होंने मनुष्य के समाज के विपरीत आचरण करने की प्रक्रिया में परिस्थितियों की भूमिका को सर्वोपरि माना है क्योंकि मनुष्य स्वयं न चाहते हुए भी अनुचित कार्य करने को विवश होता है। उनका मानना था कि मनुष्य कभी भी बुरा नहीं होता। उसके द्वारा किया गया कार्य ही उसका मूल कारण होता है। मनुष्य के अच्छे–बुरे की पहचान उसके कार्य से ही होती है।

विशेष :

शरत की विवेकशीलता का चित्रण किया गया है।

शरत की बहुमुखी प्रतिभा से आकृष्ट होकर ही ज्योतिषी प्रशंसा करने को बाध्य हुआ।

स्वस्थ समाज की संरचना के लिए अंधविश्वास, कुप्रथाओं एवं रूढ़ियों का परित्याग करना आवश्यक है।

शरत की मानवतावादी भावना का वर्णन है।

परिस्थितियों के प्रभाव से मनुष्य का बचना दुष्कर होता है।

मानव जन्म, पूर्व जन्म की तपस्या का प्रतिफल है।

सती प्रथा का प्रचलन समाज की संकीर्णता एवं धार्मिक अंधविश्वास का बोध कराती है।

शरत का मानना था कि मनुष्य में सुधार उसके कार्यों का बोध कराकर किया जा सकता है, मनुष्य के बहिष्कार द्वारा नहीं।

जिस चेष्टा में, जिस आयोजन में देश की नारियाँ सम्मिलित नहीं हैं, उनकी सहानुभूति नहीं है, उस सत्य की उपलब्धि करने का कोई ज्ञान, कोई शिक्षा, कोई साहस आज तक जिनको हमने नहीं दिया, उनको केवल घर के घेरे के भीतर बिठाकर, केवल चरखा कातने के लिए बाध्य करके ही कोई बड़ी वस्तु नहीं प्राप्त की जा सकेगी। औरतों को हमने केवल औरत बनाकर नहीं रखा है। मनुष्य नहीं बनने दिया, उसका प्रायश्चित स्वराज्य के पहले देश को करना ही चाहिए।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण विष्णु प्रभाकर की प्रसिद्ध रचना आवारा मसीहा से उद्धृत है।

प्रसंग : स्वतंत्रता आंदोलन की सार्थकता नारी के सहयोग के बिना पूर्ण नहीं मानी जाती, क्योंकि समाज का महत्त्वपूर्ण अंग होने के नाते उसकी उपेक्षा करना संभव नहीं है। नारी की सहभागिता पर प्रकाश डालते हुए शरत ने कहा –

व्याख्या : शरत का मानना था, संसार के सभी प्रयोजन नारी के बिना पूर्ण नहीं हो सकते, भले ही वह आयोजन हो या फिर व्यक्ति की वैयक्तिक चेष्टा हो क्योंकि नारी परिवार, समाज, देश की मुख्य संचालिका रही है। नारी को सहानुभूति प्रदान कर पंगु बनाना लक्ष्य नहीं है, अपितु पुरुष के साथ समानाधिकार दिलाने की आवश्यकता है। सत्य की पूर्णता नारी के सान्निध्य से ही संभव है। शरत नारी के प्रति पुरुष की उदासीनता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि शिक्षा से वंचित कर पुरुष ने अपनी संकुचित दृष्टि बोध का परिचय दिया है। उसको घर की चार दीवारी के बीच कैद कर उसकी इच्छाओं का दमन कर दिया गया है। संसार के बड़े लक्ष्य की सिद्धि के लिए नारी की उपेक्षा सही नहीं है। नारी भी पुरुष के समान स्वतंत्रता की आकांक्षी है उसे भी स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार है। हमें औरत और स्त्री के बीच भेदक रेखा समाप्त करनी होगी, तभी हम राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं को हल कर सकते हैं। स्वतंत्रता आंदोलन में नारी के योगदान को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। मनुष्य ने नारियों पर जो अत्याचार किए हैं, उन्हें अधिकारों से वंचित रखा है, निर्णय की क्षमता से कोसों दूर रखा है, इनका समाधान करने के लिए मनुष्य को प्रायश्चित करना पड़ेगा। स्वराज्य जैसे विशाल लक्ष्य की सिद्धि को तभी हम प्राप्त कर सकते हैं, अन्यथा नहीं।

विशेष :

शरत की भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि का वर्णन है।

स्वतंत्रता संग्राम में नारियों की उपेक्षा की ओर संकेत किया गया है।

नारी स्वतंत्रता एवं समानाधिकार तक सीमित रखने में मनुष्यों की पुरुषसत्तात्मक प्रणाली का उल्लेख है।

शरत की मानवतावादी भावना का वर्णन है।

शरत के विचारों में आधुनिकता के दर्शन होते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति चरखे से संभव नहीं है।

शरत की संवेदनात्मक दृष्टि ने नारी जीवन को सार्थक बना दिया।

शरत का मानना है कि ईश्वर प्रदत्तत समाज में नर–नारी समानता के पक्षपाती हैं, स्वस्थ समाज व राष्ट्र की संरचना नर–नारी के परस्पर समर्पण व त्याग का ही प्रतिफल है।

मैं चाहता हूँ कि हमारे देश के जवान लड़के–लड़कियों को साहित्य में रस हो, तो वे भले ही दुनिया की दूसरी भाषा की तरह अंग्रेजी भी जी भरकर पढ़ें। फिर मैं उनसे आशा रखूंगा कि वे अपने अंग्रेजी पढ़ने के लाभ डॉक्टर बोस, राय और कवि सम्राट की तरह हिंदुस्तान को और दुनिया को दें। लेकिन मुझसे यह नहीं बर्दाश्त होगा कि हिंदुस्तान का एक भी आदमी मातृभाषा को भूल जाए, उसकी हंसी उड़ाए, या उससे शर्माए या उसे यह भी लगे कि वह अपने अच्छे से अच्छे विचार अपनी भाषा में नहीं रख सकता।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावरण अमर कथा शिल्पी 'विष्णु प्रभाकर' द्वारा रचित 'आवारा मसीहा' से उद्धृत है।

प्रसंग : भाषा और साहित्य की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए महात्मा जी ने कहा –

व्याख्या : मनुष्य जन्मजात स्वतंत्र पैदा हुआ है। मनुष्य ने निजी स्वार्थ हित मनुष्य को बंधन में जकड़कर उसकी आजादी को पंगु बना दिया है। साहित्य की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए महात्मा जी ने कहा कि साहत्यि का संबंध मनुष्य के वैयक्तिक जीवन की घनिष्ठता का बोधक है। भविष्योन्मुखी दिशा निर्देश के लिए साहित्य का अध्ययन अपेक्षित है। उनका मानना है कि अन्य भाषा का अध्ययन साहित्यिक दृष्टि से सार्थक है जिससे मातृभाषा की गरिमा भी कलुषित न होने पाए। महात्मा जी के अनुसार भले ही हम अंग्रेजी या अन्य भाषा के अध्ययन से डॉक्टर, इंजीनियर, विश्व कवि, कवियों के शिरोमणि का पद प्राप्त कर लें लेकिन मातृभाषा की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। विचारों की अभिव्यक्ति के लिए मातृभाषा से बेहतर विकल्प क्या हो सकता है। मनुष्य को यह अधिकार नहीं है कि वह अपनी मातृभाषा की निंदा करे, उसका उपहास करे या मातृभाषा के बोलने में शर्म या संकोच की भावना हृदय में धारण करे।

विशेष :

मातृभाषा की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है।

साहित्य मनुष्य के लिए दिशा निर्देश प्रदान करता है।

मातृभाषा ही अभिव्यक्ति का श्रेष्ठ माध्यम हो सकती है।

विदेशी भाषा के अध्ययन से महत्त्वपूर्ण पदों को प्राप्त तो किया जा सकता है, लेकिन देश, समाज के प्रति आत्मीयता प्रदर्शित होना संभव नहीं है।

मातृभाषा के महत्त्व पर भारतेंदु हरिशचंद्र के विचार भी देखे जा सकते हैं –

'निजभाषा उन्नति सवै, उन्नति का मूल

बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय का शूल'।

मातृभाषा और स्वदेश प्रेम अन्योन्याश्रित हैं।

स्वदेश प्रेम की भावना का सशक्त माध्यम मातृभाषा से श्रेष्ठ दूसरा नहीं हो सकता।

महात्मा जी की देश के प्रति समर्पण की भावना व्यक्त है।

स्त्री जाति के प्रति जो अन्याय, निष्ठुर सामाजिक विचार अरसे से चला आ रहा है उसका प्रतिविधान

कीजिए। फिर उधर की संख्या के लिए आपको चिंतित होना नहीं पड़ेगा।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यांश विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित अमर रचना 'आवारा मसीहा' से उद्धृत है।

प्रसंग : राजनैतिक अस्थिरता का दौर शिथिल हो चुका था। सविनय अवज्ञा आंदोलन की रफ्तार भी मंद पड़ गई थी। बंगाल समझौता से सांप्रदायिक भावना समाप्त हो चुकी थी। पारस्परिक मेल जोल का माहौल पैदा होने लगा था, इस प्रतिक्रिया की पृष्ठभूमि में देशबंधु के विचारों का आदान–प्रदान हो रहा था। देशबंधु अप्रत्याशित जनसंख्या वृद्धि से चिंतित होकर शरत से हिंदू मुस्लिम एकता का समर्थन करने को कहते हैं।

व्याख्या : शरत के विचारानुसार जनसंख्या वृद्धि से समस्या का समाधान निकलना असंभव नहीं है। शरत का मानना था कि जनसंख्या वृद्धि के बारे में विचारों का आदान–प्रदान करने की अपेक्षा मनुष्यों के दृष्टिकोण और योजना नीति का महत्त्व अधिक है, क्योंकि दूरगामी परिणामों को भविष्योन्मुखी दृष्टिकोण से ही हल किया जा सकता है। शरत का मानना था कि राष्ट्रीय स्तर के प्रश्नों का समाधान एकता समानता द्वारा ही संभव है। भारतीय समाज में सदियों से जो वर्ग पीड़ित है, उपेक्षित तथा त्रस्त है उसको समान अधिकार के द्वारा ही बराबर लाया जा सकता है। ये भी मनुष्य हैं इनमें भी वही आत्मा और खून है जो हममें और तुममें है। हमें अपनी सोच बदलनी होगी। जिस नारी को परिवार समाज, राष्ट्र की संचालिका माना जाता है उसे हमने पुरुषों के समान अधिकारों से वंचित रखा है। उन्हें शोषण के द्वारा त्रस्त किया गा है। सामाजिक अंधविश्वासों, परंपराओं की बेड़ियों में जकड़कर रखा है। सबसे पहले हमें पूर्व कर्मनीति का परित्याग करना पड़ेगा। नारी को भी पुरुषों के समान अवसर प्रदान करने होंगे। ऐसा करने से जनसंख्या वृद्धि जैसे प्रश्नों का समाधान स्वतः ही हो जायेगा।

विशेष :

राजनैतिक अस्थिरता के दौर में एकता के प्रयत्न सराहनीय रहे।

देशबंधु उन्मुक्त विचारों के फलस्वरूप लोकप्रिय हो गए थे।

संगठन में शक्ति होती है, राष्ट्रीय, देशप्रेम जैसे मुद्दे स्वतः ही हल हो जाते हैं।

नारियों के प्रति किए गए पक्षपातपूर्ण व्यवहार की ओर संकेत किया गया है।

इतिहास विदित है कि सामाजिक एवं धार्मिक कुप्रथाओं का शिकार नारी को ही बनाया जाता था।

शरत के विचारों में भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि की झलक देखने को मिलती है।

आत्मरक्षा के बहाने मनुष्य का असम्मान करना मुझसे नहीं होता। देखो न, लोग कहते हैं कि मैं पतिताओं का समर्थन करता हूँ। समर्थन मैं नहीं करता केवल उनका अपमान करने को ही मेरा मन नहीं चाहता। मैं कहता हूँ कि वे भी मनुष्य हैं। उन्हें भी फरियाद करने का अधिकार है और महाकाल के दरबार में इसका विचार एक दिन अवश्य होगा। अनेक संस्कारों से अंधे हो रहे लोग इस बात को किसी तरह स्वीकार करना नहीं चाहते। किंतु यह मेरी निहायत व्यक्तिगत बातें हैं, और नहीं कहूंगा।

संदर्भः प्रस्तुत गद्यांश विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित अमर रचना 'आवारा मसीहा' से उद्धृत है।

प्रसंग : पथेरदाबी और शेष प्रश्न रचनाओं में व्यक्त शरत के विचारों, भावनाओं, व्यक्त भाषा के बारे में समाज में तरह–तरह की राय कायम होने लगी। शरत का मानना था कि शील स्त्रियों का आभूषण है इसकी रक्षा करना प्रत्येक नारी का धर्म है। पीड़ित स्त्रियों के समर्थन में अपना वक्तव्य व्यक्त करते हुए शरत कहते हैं –

व्याख्या : शरत का मानना है कि इस पृथ्वी पर प्रत्येक प्राणी को स्वेच्छानुसार जीवन जीने का अधिकार प्राप्त है।

उसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्राप्त है। मनुष्य का सम्मान करना प्राणी मात्र का धर्म है। क्योंकि मनुष्य जीवन पूर्व जन्मों की तपस्या का प्रतिफल होता है। मनुष्य को यह अधिकार नहीं है कि वह अपने वैयक्तिक स्वार्थ के लिए दूसरे मनुष्य को गर्त में गिरा दे। स्वयं की प्राण रक्षा के लिए दूसरे की उपेक्षा करना मानवता विरोधी है। शरत का मानना है कि पतितों की रक्षा करना, उनका समर्थन करना, उनके प्रति संवेदना व्यक्त करना मेरा स्वधर्म है, जीवन का उद्देश्य है। पतित, पीड़ित व्यक्तियों में भी मनुष्यता विद्यमान होती है। उन्हें भी जीवन जीने का अधिकार मिलना चाहिए। उन्हें भी अपनी व्यथा को व्यक्त करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो। कूपमंडूक, बुद्धि संपन्न, अंधविश्वासों के संस्कारों में दबे व्यक्ति इनका भले ही पालन न करे लेकिन समय आने पर एक दिन उन्हें पश्चाताप की अग्नि में झुलसना पड़ेगा। मनुष्य की वैयक्तिक विचारधारा समाज को स्वीकार्य हो, यह आवश्यक भी नहीं है।

विशेष :

शरत की रचनाओं में व्यक्त विचार समाज में हलचल उत्पन्न करने में सक्षम है।

शरत की मानवतावादी भावना व्यक्त है।

मनुष्य जीवन पूर्व तपस्या का प्रतिफल है उसे व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए।

शरत का संवेदनात्मक रूप दृष्टव्य है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से ही मनुष्य स्वतंत्रत का आभास होता है।

अंधविश्वास एवं कुसंस्कार युक्त जीवन विकास के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करता है।

शरत की भविष्योन्मुखी विचारधारा की अभिव्यक्ति है।

इस अवतरण में शरत के वैयक्तिक जीवन की छाप दिखाई देती है। स्वयं शरत ने माँ की असहाय स्थिति, विधवाओं की दुर्दशा एवं परित्यक्ता नारियों को निकटता से देखा।

संपूर्ण मनुष्यत्व सतीत्व से बड़ा है। इस बात को मैंने एक दिन कहा था और इसी को अभद्र एवं गंदा बताकर मुझे गाली देने में कुछ उठा नहीं रखा गया। मनुष्य मानों विक्षिप्त हो गया। मैंने अत्यंत सती नारी को चोरी–जुआ खोरी और जालसाजी करते तथा झूठी गवाही देते देखा है। साथ ही इससे उलटी बात देखने का भी सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।

संदर्भः प्रस्तुत गद्यांश विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित अमर रचना 'आवारा मसीहा' से उद्धृत है।

प्रसंग : नारीत्व और सतीत्व जैसे गुणों की सार्थकता नारी के वैयक्तिक जीवन की ओर संकेत करती है। विधवा नारी से समाज क्या अपेक्षाएँ रखता है? समाज की नारी के प्रति क्या नीति है? इन दोनों में मूलभूत अंतर दिखाई देता है। वैधव्य के बोझ से दबी नारी की सेवा सुश्रुसा को उसका कर्त्तव्य मान लेना संकीर्ण मानसिकता का सूचक है। उसे भी पुनर्विवाह करने की स्वतंत्रता मिले। वह भी समाज में आदर सत्कार की भागीदारी हो। नारी को पुरुष के समानाधिकार की वकालत करते हुए जन्मदिन के उपलक्ष्य में अपने भाषण में शरत ने यही भावना व्यक्त की –

व्याख्या : संसार के सभी धर्म ग्रंथ उपनिषद् व शास्त्रों में मानव महिमा का गुणगान किया गया है। शरत का मानना है कि सतीत्व की अपेक्षा मनुष्यत्व का स्थान सर्वोपरि है। मानवीय गुणों की अभिव्यक्ति मानवता का बोध कराती है। नारी का सतीत्व केवल व्यक्ति विशेष की परिधि तक सीमित रहता है जबकि मानवता की सीमा में संपूर्ण विश्व की परिकल्पना संभव है। सेवा, त्याग, सहानुभूति, जैसे गुणों से समाज की संरचना स्थापित होती है। सतीत्व की अपेक्षा

मनुष्यत्व कहीं अधिक श्रेष्ठ है। मेरी यह विचारधारा भले ही अप्रिय लगे लेकिन यथार्थ से परे नहीं है। सतीत्व नारी में भी उच्छृंखलता देखी जा सकती है। चोरी करना, जूआ खेलना और धोखाधड़ी करना तथा झूठी गवाही देने में सतीत्व नारी भी उतनी ही दोषी है जितना कि मनुष्य। शरत का मानना था कि मानवता के लिए सतीत्व का होना आवश्यक नहीं है। उनकी दृष्टि में चोरी, जूआ, रिश्वत तथा धोखा देना सतीत्व से अधिक घातक है। सच्ची मानवता के दर्शन पतित व्यक्ति तथा विधवा नारी में भी किए जा सकते हैं।

विशेष :

शरत की स्पष्टवादिता को देखा जा सकता है।

सतीत्व सामाजिक दृष्टिकोण से नारी की वैयक्तिक इच्छाओं का दमन करता है।

मानवतावादी भावना के दर्शन होते हैं।

मानवीय गुणों से युक्त मनुष्य ही मनुष्य कहलाने का अधिकारी है।

चोरी करना, जूआ खेलना, धोखा देना और जालसाजी करना आदि सामाजिक कुरीतियों से अवगत कराया है।

शरत की नारी भावना का दिग्दर्शन किया गया है।

साहित्यिक हिंदी प्रयोग में लाई गई है।

आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।

मैं मानव धर्म को सतीत्व धर्म के बहुत ऊपर स्थान देता हूँ। सतीत्व और नारीत्व दोनों आदर्श समान नहीं है। नारी हृदय की मंगलमयी करुणा, उसकी जन्मजात मातृ वेदना, उसके सतीत्व से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। बहुत सी स्त्रियाँ मैंने ऐसी देखी हैं, जिनका दूसरे पुरुष से कभी किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक संबंध नहीं रहा, तथापि, उनके स्वभाव में अत्यंत नीचता, घोर संकीर्णता, विद्वेष भावना और चौरवृति पाई गई है। इसके अतिरिक्त ऐसी पतिताओं से मेरा परिचय रहा है जिसके भीतर मैंने मातृ हृदय की निःस्वार्थ ममता और करुणा का अथाह सागर उमड़ता हुआ पाया है।

संदर्भः प्रस्तुत गद्यांश विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित अमर रचना 'आवारा मसीहा' से उद्धृत है।

प्रसंग : सतीत्व के विषय पर शरत के विचारों में एकरूपता नहीं मिलती उनका मानना था कि सतीत्व श्रेष्ठता का पैमाना नहीं है और पतित स्थिति नीचता की श्रेणी नहीं है। समयानुकूल इस अवधारणा में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। इलाचंद्र जोशी द्वारा भारतीय नारी के सतीत्व आदर्श विषय पर पूछे गए प्रश्न का उत्तर देते हुए शरत ने कहा –

व्याख्या : शरत के विचारानुसार मानव धर्म और सतीत्व एक दूसरे के पूरक होते हुए भी विरोधी हैं। मानवता नारी के सतीत्व से अधिक महत्त्वपूर्ण है। समष्टि का बोध मानवता तथा व्यष्टि का बोध सतीत्व से होता है। मानवता व्यापक परिधि का सूचक है। जबकि सतीत्व निश्चित व्यक्ति विशेष की। करुणा, संवेदना, मातृत्व तथा कल्याणमयी भावना को मानवता के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। चारित्रिक पतन सतीत्व के साथ आदर्श नारी में भी हो सकता है यह परिस्थिति पर निर्भर करता है। संकीर्ण विचारधारा नीचता के कुकृत्य, प्रतिकार की भावना, ईर्ष्या का भाव तथा चोरी करने की प्रवृत्ति जिनका संबंध सामान्यतया पुरुषों से होता है, नारियों में भी पाए जाते हैं। शरत का मानना था कि मातृत्व की स्नेहमयी ममता, करुणा का उमड़ता सागर समाज द्वारा व्यक्त, पतित नारियों के जीवन का अंग बन जाता है।

विशेष :

शरत की मानवतावादी भावना का वर्णन है।

सतीत्व नारी विशेष तक सीमित होता है जबकि मनुष्यता, मानवधर्म अपने विशाल कलेवर में व्यक्ति के साथ समाज, परिवार तथा युगीन बोध को प्रतिबिम्बित करता है।

मातृत्व भावना नारी जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है।

संतान विहीनता नारी जीवन का अभिशाप माना गया है।

नारी जीवन की सार्थकता मातृत्व के बिना पूर्ण नहीं होती।

सामाजिक कुरीतियों का उल्लेख है।

ममता, करुणा, संवेदना, निस्वार्थ सेवाभाव मानवता के अंग हैं।

साहित्यिक हिंदी प्रयोग में लाई गई है।

विचारात्मक शैली अपनाई गई है।

शरत के जीवन की वास्तविकता का वर्णन है।

पराधीन देश के अधःपतित समाज की असहाय, अंतर्पुर चारिणियों के हृदय की मूक अनंत वेदना को तुमने भाषा में मूर्त कर दिया है। उनके दुर्गतिपूर्ण जीवन के सुख–दुखों की सभी अनुभूतियों को निविड़ सहानुभूति में ढालकर तुमने साहित्य में सत्य करके प्रत्यक्ष कर दिया है। तुम्हारी अनावृत दृष्टि, सूक्ष्म पर्यवेक्षक–सामर्थ्य, सुगम्य उपलब्धि, शक्ति और विचित्र मानव की अतल स्पर्शी अभिज्ञता ने निखिल नारी चित्र की निगूढ़ प्रकृति का गुप्ततम पता पा लिया है। हे नारी के परमरहस्यज्ञाता, हम लोग तुम्हारी वंदना करते हैं।

संदर्भः प्रस्तुत गद्यांश विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित अमर रचना 'आवारा मसीहा' से उद्धृत है।

प्रसंग : शरत ने अपने जीवन का प्रारंभ जिस प्रतिकार, अन्याय के विरूद्ध किया, उसका अंततः पालन भी किया। समाज की कुरीतियों को देखकर द्रवित होना स्वाभाविक था। उन्होंने नारी को समानाधिकार दिलाने के लिए राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भी प्रयत्न किए और पारंगत भी रहे। नारी की दयनीय स्थिति के लिए पुरुष को दोषी ठहराया। अपने मित्र की पत्नी को देखकर शरत की आत्मा कराह उठी, उनकी व्यथा ने नारी जाति के उद्धार का द्वार खोला। नारियों ने उन्हें अपना मसीहा माना। उनका समय–समय पर अभिनंदन भी किया। उनकी 57वीं जयंती के अवसर पर सम्मानित करते हुए बंगाल की नारियों के उद्‌गार इन शब्दों में व्यक्त हुए –

व्याख्या : शरत का जीवन, संघर्ष का पर्याय बन गया था। नारियों के प्रति अन्याय को देखकर द्रवित होने के साथ–साथ प्रयत्नशील भी रहते थे। बंगाल की नारियों ने शरत के जीवन की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा कि – ''शरत बंगाली समाज में नारियों के लिए पूजायोग्य थे। उनके द्वारा किए गए कार्यों से नारियों में स्वाभिमान का भाव पैदा हुआ। पराधीन भारत में पतित समाज के लिए तन–मन से समर्पित जीवन शरत का ही था। बाल्यावस्था में शवों का क्रियाकर्म करना उनकी निस्वार्थ सेवा भावना को दर्शाता है। जिस प्लेग का नाम सुनकर मनुष्य कोसों दूर भागता था ऐसी स्थिति में शरत के द्वारा शवों का क्रिया–कर्म करना उन्हें महानता की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है। शरत की सूक्ष्म और पैनी दृष्टि ने सभ्य समाज में व्याप्त नारियों के अत्याचारों को देखा,

उनकी मूक वेदना को अपनी लेखिनी का आश्रय प्रदान कर समाज के समक्ष आदर का पात्र बनाया। पतित एवं त्यक्त, दीन–हीन स्थिति में सहारा प्रदान किया। उनके सुखों–दुःखों को समाज के सामने रखकर सोचने पर विवश किया। शरत की सहानुभूति का सान्निध्य पाकर उनके जीवन में आशा का संचार हुआ। साहित्य के मूल उत्सव के रूप में अमरता प्रदान की। उनकी नारियाँ भले ही युगीन समाज में पीड़ित थीं या पतित लेकिन शरत की लेखिनी ने उन्हें पाठकों की संवेदना तथा सहानुभूति का पात्र बना दिया। शरत की निर्निमेष दृष्टिबोध से जीवन का कोई पक्ष अछूता न रह सका। उन्होंने विवेक, सामर्थ्य तथा गंभीर चिंतन बोध से दिशा निर्देश प्राप्त किया। उन्होंने मानव चरित्र के विविध पहलुओं से अवगत कराया। उनके साहित्य की नारियों ने समस्त संसार की नारियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया। वास्तव में शरत जी नारी चरित्र के गूढ़तम रहस्य के निरीक्षक थे। शरत की इन्हीं विशेषताओं के कारण ही वे नारियों के द्वारा पूज्य तो थे ही पथ–प्रदर्शक भी थे।

विशेष :

बंगाली समाज पर शरत का प्रभाव देखा जा सकता है।

यह गद्यावतरण शरत के बहुमुखी व्यक्तित्व का चित्रण करता है।

इस गद्यावरण में शरत की जीवनशैली, दृष्टिबोध एवं संवेदनात्मक पहलू मुखरित होता है।

नारियों के प्रति शरत की भविष्योन्मुखी विचारधारा का परिचय मिलता है।

शरत की लेखिनी ने पतित, परित्यक्त नारियों के लिए सहानुभूति का भाव पैदा किया।

अप्रत्यक्ष रूप से समाज की उन कुरीतियों की ओर संकेत किया है, जिनके कारण नारी जीवन नरकमय था।

शरत की नारी चेतना की भावना का वर्णन है।

शरत का मानना था कि स्वस्थ समाज की संरचना नर–नारी के पारस्परिक सहयोग पर आश्रित है।

शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।

आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।

ऐसे मनुष्य के सारे जीवन को लंगड़ा बनाकर मैं सती का खिताब नहीं खरीदना चाहती श्रीकांत बाबू। निश्चय पूर्वक मैं कह सकती हूँ कि हमारे निष्पाप प्रेम की संतान संसार में मनुष्यत्व के लिहाज से किसी से भी हीन न होगी। उसकी माता उसको यह भरोसा अवश्य दे जाएगी, कि वह सत्य के बीच पैदा हुई है। सत्य से बढ़कर सहारा संसार में कुछ नहीं है। इस वस्तु से भ्रष्ट होना उसके लिए कठिन होगा।

संदर्भः प्रस्तुत गद्यांश विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित अमर रचना 'आवारा मसीहा' से उद्धृत है।

प्रसंग : शरत की लेखनी का सान्निध्य पाकर नारियों में स्वाभिमान की भावना पैदा होने लगी। उनको चिंतन करने, स्वतंत्र विचार रखने की स्वतंत्रता प्रदान कर आत्मनिर्भर बनाया। विवाह संस्कार की आड़ में पनपती कुरीतियों, भ्रांतियों का निवारण भी किया। उनकी नारियाँ पति का अंधानुकरण नहीं करतीं, अपितु विवेक, सामर्थ्य के अनुसार अपनी उचित राय से अवगत भी कराती हैं। शेष प्रश्न की कमल और श्रीकांत तथा द्वितीय पर्व की अभया आधुनिक नारियों की प्रतीक हैं। उनमें बौद्धिक क्षमता है, प्रेम विवाह पर स्वच्छंद विचार भी रखती हैं। नारी के अदम्य साहस का वर्णन करते हुए लेखक की विचारधारा का उल्लेख निम्नवत् है –

व्याख्या : शरत ने अपनी साहित्यिक रचनाओं से नारियों में स्वाभिमान का भाव पैदा किया। अभया इसका प्रत्यक्ष

उदाहरण है। अभया की दृष्टि में नारीत्व और सतीत्व दो भिन्न पहलू हैं। वैवाहिक जीवन की सफलता का आधार पति–पत्नी की प्रसन्नता पर निर्भर करता है। पुरुष की स्वार्थी प्रवृत्ति का उल्लेख करती हुई अभया कहती है कि पुरुष प्रत्येक तथ्य में अपना ही स्वार्थ देखता है। अग्नि को साक्षी मानकर लिए गए सात फेरे भी क्षणमात्र में तोड़कर अपने स्वार्थ की पूर्ति करने में पीछे नहीं रहता। शारीरिक उत्पीड़न करने में भी उसे हिचक का अनुभव नहीं होता। वह अपने प्रेम को परिपक्व करने के लिए ऐसे स्वार्थी पति का त्यागकर रोहिणी बाबू का वरण करती है जो मानसिक दृष्टि से स्वस्थ है। जीवन पर्यंत पति की इच्छाओं पर खरा उतरना तथा स्वयं को असहाय बनाकर जीना व्यर्थ लगता है। वह उस सतीत्व को त्यागने में भलाई समझती है। श्रीकांत बाबू को सोचने पर विवश करती है कि निर्णय का अधिकार पुरुष के साथ नारियों को भी प्राप्त है। वह अपने प्रेम को पल्लवित कर अपने बच्चों के प्रति निश्चिंत है, क्योंकि उनके बच्चे किसी पर निर्भर नहीं हैं। सत्य संसार की सबसे बड़ी तपस्या है जिस पर चलकर विचलित होना कायरों का काम है।

विशेष :

नारी जागृति का दिग्दर्शन किया गया है।

यह यथार्थ है कि वैवाहिक जीवन पति पत्नी के पारस्परिक सहयोग पर आश्रित है।

अभया में आधुनिक नारी की झांकी देखी जा सकती है।

सतीत्व से प्रेम को अधिक महत्त्व प्रदान कर आधुनिक बोध का भाव पैदा किया गया है।

अभया के द्वारा आत्मनिर्भर नारी का वर्णन किया गया है।

सत्य बोलना प्राणिमात्र का धर्म है। संसार के सभी धर्म सत्य पर बल देते हैं।

सुधारक कबीरदास भी सत्य पर बल देते हैं– 'सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।'

आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।

उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे लिहाज, खिताब आदि।

भाषा साहित्यिक हिंदी है।

ऐसा निःस्वार्थ ऐसा उदार, ऐसा युक्त मनुष्य अब से पहले उन्होंने कहाँ देखा था। उनकी उसी अगाध भक्ति के कारण तो वे उन्हें जान सके और उनके प्रति होने वाले अन्याय के विरूद्ध संघर्ष कर सके, उन्हें मनुष्य की मर्यादा दिला सके। यह मर्यादा दिलाने के लिए ही उन्होंने मूक नारी को स्वर दिया, और पतिता के अंतर में छिपे मनुष्य को खोजा। लेकिन इतना सब कुछ करने पर भी क्या वे अपने मन की आदर्श नारी (राजलक्ष्मी) को अपने जीवन में पा सके। यह न पाना ही उनके साहित्य की शक्ति है।

संदर्भः प्रस्तुत गद्यांश विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित अमर रचना 'आवारा मसीहा' से उद्धृत है।

प्रसंग : सहृदयशील व्यक्तित्त्व के कारण शरत का चिंतित होना स्वाभाविक था। वे नारियों के प्रति संवेदनात्मक दृष्टिकोण अपनाते थे। नारियों को शरत के रूप में मसीहा मिल गया था। उनकी रचनाओं में पतितों, पीड़ितों के लिए दिशा निर्देश मिलते हैं। शरत की उसी उदार भावना पर प्रकाश डालते हुए लीा रानी के हृदयोदगार इन शब्दों में व्यक्त हुए –

व्याख्या : आर्थिक विपन्नता के प्रांगण में पले बढ़े शरत के हृदय का द्रवित होना स्वाभाविक था। उपेक्षित वर्ग की आह को सुनकर शरत का हृदय व्यथित हो जाता, वह उसे दूर करने का प्रयत्न भी करता। शरत के उदार हृदय की भावना के फलस्वरूप नारियों ने उन्हें अपने हितैषी के रूप में स्वीकार किया। शरत का मानना था, कि जो नारी परिवार, समाज की संचालिका है उसकी यह दुर्दशा युगीन परिवेश की जीवन शैली को दर्शाती है। युगीन नारियों ने शरत से प्रेरणा लेकर जीवन को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने की शक्ति प्राप्त की। नारियों को भी पुरुषों के समान अधिकार दिलाने का प्रयत्न किया। अत्याचारों, कुरीतियों की शिकार नारी को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान की। पतित नारियों में आत्म–सम्मान की भावना पैदा की। स्वयं नारियों के मसीहा होने पर भी आत्मा से स्वीकार की राजलक्ष्मी को सामाजिक मान्यता दिलाने के लिए जीवन पर्यंत संघर्ष करना पड़ा। उनकी यही वेदना साहित्य सृजन का मूल कारण बनी जिसका प्रतिफल श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से समय–समय पर उनकी लेखनी से पाठक के समक्ष आता रहा। उनकी नारियों ने शरत को भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि प्रदान की।

विशेष :

शरत के बहुमुखी व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।

शरत के आंतरिक पक्ष पर प्रकाश डाला गया है।

नारी के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है।

शरत के हृदय की वेदना की अभिव्यक्ति की गई है।

साहित्य सृजन के मूल में नारी वर्ग का चित्रण है।

साहित्य का जन्म अभावों, वेदना के फलस्वरूप होता है।

शरत साहित्य ने नारियों को स्वाभिमानी एवं आत्मनिर्भर बनाया।

शरत का मानवतावादी पक्ष मुखरित हुआ है।

साहित्यिक हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है।

छायावादी कवि सुमित्रा नंदन पंत ने भी साहित्य के मूल में वेदना को चित्रित किया है – यथा –

वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान

निकलकर नयनों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।

आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।

जिसे आप हिंदू धर्म कहते हैं उसी पर हमें पंगु और जड़ बनाने की सबसे अधिक जिम्मेदारी है। इस्लाम में मनुष्यता का कहीं अधिक आदर है। ईसाईयत में उससे भी कहीं अधिक है। मेरी कृतियों में मेरे पात्र बोलते हैं। उनमें से किसी के वक्तव्य में मेरा वक्तव्य नहीं आता। मैं उन बातों को न तो मानता हूँ और न मान सकता हूँ। मेरे निकट जीवन ही सब कुछ है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यांश विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित अमर रचना 'आवारा मसीहा' से उद्धृत है।

प्रसंग : समाज में व्याप्त धार्मिक विकृतियों, सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों, आर्थिक विपन्नताओं एवं अंधानुकरण की

प्रवृत्तियों से शरत का जीवन दुखी होने लगा। धर्म का कार्य मनुष्य के व्यवहार एवं आचरण पर प्रतिबंध लगाकर मानवता को प्रबल बनाना है। धार्मिक विसंगतियों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए शरत ने कहा –

व्याख्या : शरत का मानना है कि मानवता की रक्षा करना प्राणी मात्र का धर्म है। सत्य व्यवहार एवं आचरण की शुद्धता व्यक्ति की धार्मिक मान्यताओं को स्पष्ट करती है। धार्मिक असमानताओं ने शरत को मार्क्सवादी भावना के निकट लाकर खड़ा कर दिया, फलस्वरूप धर्म को न मानकर व्यक्ति को प्रमुखता देना शरत की उसी विचारधारा का पोषक है। धर्मों के बाह्य एवं आंतरिक पक्ष पर प्रकाश डालते हुए शरत ने कहा, कि हिंदू धर्म को सर्वोपरि माना जाता है, लेकिन समाज को पतन के गर्त में हिंदू धर्म ने ही अधिक धकेला है। छूआछूत, सतीप्रथा, बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं ने मनुष्य जीवन को नरकमय बना दिया है। मनुष्य को असहाय एवं लाचार बनाने में हिंदू धर्म ने पहल की है। इस्लाम धर्म की दुहाई देकर शरत कहता है कि समानता, बराबरी का अधिकार दिलाने में इस्लमा धर्म ने अग्रणी भूमिका निभाई है। नारियों के प्रति संवेदनात्मक पहल को इस्लाम धर्म ने ही प्रारंभ किया। ईसाई धर्म की शिक्षाएँ इस्लाम से मिलने के कारण समानता की हकदार रहीं, लेकिन स्वेच्छाचारिता के फलस्वरूप ईसाई धर्म इस्लाम से आगे निकल गया। शरत ने अपनी रचनाओं में उन्हीं पात्रों का चयन किया जिन्हें निकट से देखा। उनके पात्र उनकी हृदय की आवाज थे। शरत के स्वभावानुकूल आचरण करने के लिए कृतसंकल्प रहते हैं। पात्रों की विशेषताओं में तटस्थ स्थिति का परिचय मिलता है। शरत की दृष्टि में मानव जीवन ही सर्वोपरि है जिसमें विद्रूपताओं, विषमताओं के साथ मानवता, मनुष्यता, सहृदयशीलता के दर्शन भी होते हैं।

विशेष :

शरत की प्रत्युत्पन्नमति का वर्णन है।

यह यथार्थ है कि अस्पृश्यता, वर्गीय भावना का वर्चस्व हिंदू धर्म में अधिक देखने को मिलता है।

शरत की दृष्टि ने हिंदू धर्म की विकृतियों को खोज निकाला, समाज के सामने रखा, बुद्धिजीवियों को चिंतन के लिए विवश किया।

समानता, मानवीय भावना का चित्रण इस्लाम धर्म के मूल उत्स को रेखांकित करता है।

शरत की पात्र योजना यथार्थ पृष्ठभूमि पर आधारित है।

शरत ने पात्र चयन के लिए प्रत्यक्ष दर्शन एवं यथार्थ अनुभवों को प्रमुखता दी।

शरत का मानना है कि रचनाओं में कुरीतियों, कुप्रथाओं का होना स्वाभाविक है, इसी दल–दल में स्वस्थ समाज का निर्माण भी संभव है।

शरत की बेबाक राय का दिग्दर्शन है।

साहित्यिक हिंद भाषा का प्रयोग हुआ है।

आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।

साहित्य का मूल है साहित से, अर्थात् सबके सहित सहानुभूति रखना आवश्यक है। घर बैठ आराम कुर्सी पर पड़े रहकर साहित्य सृष्टि नहीं होती। हाँ नकल की जा सकती है। साहित्यकार यदि मानव को न देखे तो साहित्य नहीं होता। ये लोग करते क्या हैं, कि पुस्तक के किसी एक कैरेक्टर को लेकर उसी में कुछ रद्दोबदल कर नवीन कैरेक्टर की सृष्टि कर डालते हैं। मानव क्या है, यह मानव को देखे बिना नहीं समझा जा सकता। अत्यंत कुत्सित गंदगी के भीतर भी मैंने मानवता देखी है, कि उसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

संदर्भः प्रस्तुत गद्यांश विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित अमर रचना 'आवारा मसीहा' से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रवर्तक संघ शरत के साहित्यिक जीवन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करता है। शरत से पूछा जाता है कि आप साहित्यकार कैसे बने? तो शरत के मुख से निकले उद्गारों में निश्छलता, सत्यता की झलक दिखाई देती है। स्वयं जीविकोपार्जन के लिए, पेट की भूख को शांत करने के लिए साहित्यकार बना हूँ। अपने इन्हीं विचारों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं –

व्याख्या : शरत का मानना है कि साहित्य के लिए मंगलकारी कल्याणमयी भावना का होना आवश्यक है। साहित्य हित की भावना को दर्शाता है। इस हित में वर्ग विशेष व धर्म की अनिवार्यता का लेशमात्र भी वर्णन नहीं होता। मानवता प्रमुख होती है। मनुष्य सर्वोपरि होता है। मनुष्य वही है जो दूसरों के लिए समर्पित हो, प्रतिकार का नामोनिशान न हो। श्रेष्ठ साहित्य के लिए चयनित विषय के साथ तादात्म्य का होना आवश्यक है। अंधानुकरण से नकल तो की जा सकती है, नवीन मौलिक उद्भावनाओं का होना संभव नहीं। किसी पात्र विशेष के समानांतर पात्र सृजन के लिए रागात्मक बोध का होना आवश्यक है। पात्रों के निर्माण में बदलाव की स्थिति से नूतनता, सर्वग्राह्यता को प्राप्त नहीं किया जा सकता। मानव के प्रत्यक्ष दर्शन के बिना मानवता को नहीं देखा जा सकता। आदर्श पात्र का जन्म अभिजात्य वर्ग की अपेक्षा नहीं करता, अपितु घृणित, कुत्सित एवं पतित वर्ग से भी मौलिक पात्र स्वतः जन्म लेते हैं जो सर्वग्राह्य ही नहीं भविष्य के लिए आदर्श भी बन जाते हैं। पाठक उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने में गौरवान्वित होता है। शरत का मानना है कि बुराई मनुष्य में नहीं होती, उसके व्यवहार, आचरण एवं दृष्टिकोण में निहित होती है।

विशेष :

साहित्य की परिभाषा दी गई है। भामह ने भी ऐसे विचारों को व्यक्त किया है– 'शब्दार्थौ सहितो काव्यम्'।

'हित' से आशय हितकारी भावना से है जिससे मानव कल्याण हो।

यह यथार्थ है कि श्रेष्ठ साहित्य के मूल में वेदना, दुख महती भूमिका निभाता है।

रचना की लोकप्रियता एवं सर्वग्राह्यता लेखक की विषय के प्रति रागात्मक तादात्म्य को रेखांकित करती है।

साहित्य का मूल उत्स मानवता की प्रतिष्ठा करना है।

नकल की प्रवृत्ति से पुनरावृत्ति तो की जा सकती है लेकिन यथार्थता, सर्वग्राह्यता को पैदा करना असंभव है।

मानवता वर्ग विशेष की अपेक्षा नहीं रखती।

इन्हीं अभावों के फलस्वरूप छायावादी कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के रूप में सामने आए। सरोज केवल उनकी पुत्री नहीं है, अपितु संपूर्ण साहित्य जगत की पुत्री है।

साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।

आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।

मानवतावादी भावना का चित्रण किया गया है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. शरत की लेखनी का सान्निध्य पाकर नारियों में किस प्रकार की भावना पैदा हुई?

2. अभया के द्वारा किस प्रकार की नारी की कल्पना की गई?

3. शरत सामाजिक दुष्परिणामों के लिये किसको जिम्मेदार ठहराता है?

3.3 आवारा मसीहा : सार

आवारा मसीहा उपन्यास की कथा 3 पर्वों प्रथम 'दिशा हारा', द्वितय 'दिशा की खोज' तथा तृतीय 'दिशांत' में विभक्त है। उपन्यास में शरत चंद का जीवन प्रतिबिम्बित होता है। प्रथम पर्व में शरत चंद्र की वैयक्तिक जीवनी का वर्णन है– शरत चंद के पिता मोती लाल यायावर प्रकृति के व्यक्ति थे। आर्थक स्थिति की विषमता ने जहाँ पति पत्नी के बीच आपसी मतभेद को पैदा किया वहीं ससुराल जाकर भागलपुर में घर जमाई बनने के लिए बाध्य कर दिया। अभावों ने शरतचंद के निर्मल हृदय को द्रवित कर दिया जिससे आत्मचिंतन का बोध पैदा हो गया। ननिहाल में मामा मामियों और ममेरे भाइयों के बीच शरत का हृदय शरारत से बाज न आता। बड़े मामा के कड़े अनुशासन के बीच हंसी–ठिठोली का अवसर निकालने में शरत चालाक था। पतंग उड़ाना, गुल्ली–डंडा खेलना, लट्टू घुमाना आदि खेलों के प्रति रूझान अधिक था। आम चुराने पर पकड़े जाने पर साहसी प्रवृत्ति का परिचय देना शरत चंद का स्वभाव था। उन्मुक्त स्वभाव के शरत को ननिहाल में साथ मिला राजू का, जिसने संगीत की महफिल को ऊंचाई तक पहुंचा दिया। शरत में संगीत की धुन थी वहीं राजू अभिनय की कला में दक्ष था। शरत की बालपन की शिकायतों से माँ का दुःखी होना स्वाभाविक था, किंतु दादी का स्नेह शरत में आशा की किरण लेकर आता। एक दिन यह बड़ा आदमी बनेगा का आर्शीवाद शरत को कुछ न कुछ करने के लिए प्रेरित करता था। धीरू का स्नेह पाकर शरत शरारत करने से पीछे न रहता। शरत नयन माँ का साथ पाकर साहसी कार्यों में भी पारंगत हो गया। स्थान परिवर्तन के प्रभाव से शरत के जीवन में स्वच्छंदता बढ़ती गई। गल्प गठकर कहने की कला से शरत के जीवन में दृढ़ता का गुण समाहित हो गया। नीरू दीदी के व्यक्तित्त्व से प्रभावित होकर शरत चंद ने सेवा करने की प्रेरणा गहण की। मना करने पर भी छिपकर दीदी के पास जाना दिनचर्या थी। मृत्युंजय से साँप पकड़ना, जहर उतारने का मंत्र सीख लिया। संवेदना एवं दीनता ने शरत चंद की अभिव्यक्ति का द्वार खोला। विद्यार्थी जीवन में नीला का सान्निध्य शरत के जीवन में विनोद प्रियता के गुण लाया। राजू का साथ पाकर पीड़ितों की रक्षा करना, अनीति का सामना करने का साहस शरत चंद्र ने ग्रहण किया। राजनैतिक परिवेश में उथल–पुथल थी। सुधारकों, देशभक्तों के क्रिया–कलापों का सजीव चित्रण मिला। साहित्यिक क्षेत्र में बंकिम चंद्र चटर्जी के आनंदमठ ने प्रेरणा प्रदान की। राजा राम मोहन राय ने धर्म संस्कार का दायित्व समझाया। पंडित ईश्वर चंद विद्यासागर ने विधवा विवाह का समर्थन कर समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया। नवजागरण के समर्थकों को सामाजिक आघात भी सहने पड़ते हैं। समुद्र यात्रा को अशुभ माना जाता था। युगीन परिवेश ने अभिनय के द्वार खोले। मृणालिनी का अभिनय शरत ने किया था। देवी आपदा के समय रोगियों की सेवा मुख्य दायित्व था। समाज के त्याज्य वर्ग में शरत ने मानवता के दर्शन किये। स्वयं अनुभव किया कि दरचरिता के हृदय में भी दया–ममता निहित होती है। समाज की दलित, दूषित स्त्रियाँ उनकी लेखन की प्रेरणाश्रोत रहीं। असफल प्रेम के परिजात ने शरत के सृष्टा बनने का मार्ग प्रशस्त किया। गृह त्यागने पर यायावर प्रवृत्ति ने शरत को संन्यासी जीवन बिताने के लिए बाध्य किया। वेश्याओं, साधु, जमींदार, कारकुन, वकील, संगीत तथा निचले तबके ने गहन अध्ययन को प्रेरित किया। माँ–बाप की मृत्यु के बाद दायित्व स्वरूप हिंदी की अर्जियों का अंग्रेजी में अनुवाद करने का कार्य किया। नाना के घर प्रतिबंध के बावजूद गाना बजाना, अभिनय करना, साम्रकूट के सेवन के फलस्वरूप अपमान भी सहन करना पड़ा। शरत का मन उन्मुक्त प्रांगण में लक्ष्यहीन दिशा की खोज में निकल पड़ा।

शरत चंद्र में वर्मा गमन के समय सहाज पर मनुष्यों की दशा देखकर दीनता का भाव पैदा हुआ। मनुष्यों के वास्तविक जीवन से साक्षात्कार हुआ। मौसा (वकील) अधीर नाथ की मौत ने फिर विचलित कर दिया। संगीत की पराकाष्ठा ने शरत को 'रंगून रत्न' की उपाधि दिलाई। व्यसनों के बावजूद सच्चे ईश्वर की खोज के लिए स्वामी से

शास्त्रार्थ भी किया। प्लेग नाम सुनकर उठ खड़े होते ऐसे में शरत का मन सेवा भाव से भर जाता। अजनबी की सेवा करता, दवाइयाँ भी देता। मानवीय करुणा का पाठ प्लेग की बिमारी से ग्रहण किया। जाति का बहिष्कार, अपनों द्वारा तिरस्कार, उच्चवर्ग की नफरत के शिकार, के बीच शरत का मन निम्न लोगों के बीच रमने लगा। बंग चंद्र की मृत्यु ने एकाकीपन, चिंतन व साहित्य लेखन का मार्ग प्रशस्त किया। यज्ञेश्वर को अनमेल विवाह न करने की सलाह देता है। परिस्थितियों वश सुशीला को पत्नी बनाया। प्लेग के आगोश में समाने पर सुशीला ने शरत के हृदय को झकझोर डाला। अध्ययन, लेखन और चित्रांकन भी भूल गया। प्रकृति चित्रण के सामने शरत का मन मनुष्य की आकृति से बंधा रहता। उनका मन ईश्वर से शिकायत भी करने लगता 'प्यार करने के लिए एक पात्र मुझे भी दे देते तो क्या उनके विश्व में मनुष्यों की कमी पड़ जाती।' इनके इन शब्दों में आंतरिक व्यथा का बोध होता है। बंगाल की कुल त्याग करने वाली भागिनी नारियों के करुण जीवन की दास्तान को नारी के इतिहास में प्रस्तुत किया।

मनवता के कारण निःस्वार्थ भाव से अर्जी लिखने को सहमति दे देते। मोक्षदा का आना शरत के जीवन में महत्त्वपूर्ण घटना थी। कृष्ण दास अधिकारी को दिये वचन का पालन भी करता है। आर्थिक विपन्नता की मझधार में मोक्षदा को जीवन साथी के रूप में स्वीकार करता है। गायित्री शरत के जीवन में कष्टों का पहाड़ लेकर आती है। मानव प्रेम की अतृप्ति पशु प्रेम के रूप में पूर्ण होती है। अनुभूति की क्षमता सभी के पास होती है, लेकिन अनुभूति को शब्दबद्ध करना सहनशील मानव का कार्य है। शरत चंद्र इसके अपवाद न रहे उन्होंने कहानी, उपन्यास और प्रबंध कार्यों की रचना कर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रदान की। सामाजिक मूल्यों की प्रत्यक्ष झांकी उनके नारी के चित्रण के रूप में देखने को मिली। उच्च कुल की सुशीला को व्यथा वेदना के बीच सत्यमार्ग का रास्ता बताता है। 'यमुना' के सुचारू प्रकाशन के लिए शरत की लगन से उनका साहित्यिक रूझान भी स्पष्ट होने लगा।

रंगून से कलकत्ता चले जाने पर भी विपत्तियों ने शरत का साथ नहीं छोड़ा। फणींद्रनाथ ने व्यंग्य सुने, कटु आलोचनाओं का सामना किया लेकिन शरत को शरत बनाने में कमी नहीं की।

पल्ली समाज में शवदाह और प्रायश्चित को अभिव्यक्ति दी। दमे रोग का निदान प्रायश्चित था। शरत ने स्वीकार किया कि दिशाहीन आवारा मन को शांति देवी, हिरन्या देवी ने सार्थकता प्रदान की। वर्मा प्रवास में जहाँ एक ओर बुद्धिजीवियों से चिंतन ग्रहण किया वहीं दसरी ओर महत्वहीन अनजाने मनुष्यों से प्रोत्साहन ग्रहण कर साहित्यिक धर्मदान से अवगत करा दिया।

कलकत्ता छोड़ने के समय शरत को साहित्यिक दृष्टि से सम्मान प्राप्त होने लगा था। उनकी लेखिनी का लोहा नाटककार विजेंद्र लाल तथा उनके पुत्र दिलीप कुमार राय (संगीतज्ञ) ने माना। संगीत लगन ने श्रद्धा का पात्र बना दिया। हिंदू समाज में वैवाहिक कुप्रथा को रेखांकित किया, रूपहीना, धनहीना ज्ञानदा का चरित्र पाठक के हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाता है। देवदास में शरत का भावात्मक पक्ष मुखरित हुआ। चरित्र हीन ने नारी चरित्र की रक्षा की। सतीश के रूप में राजू की पूर्ति होने लगी। बांसुरी बजाकर समस्त पृथ्वी के रग–रग में संगीतमय आवरण की प्रस्तुति कर देता है। साहित्यिक गोष्ठियों की अध्यक्षता करते। विशुद्ध देशप्रेम की भावना ने साहित्यिक लेखन के प्रति आकृष्ट किया। विलासी कहानी द्वारा मृत्युंजय के साथ अस्पृश्य मुसलमान कन्या का विवाह कराकर दृढ़ इच्छा शक्ति से अवगत कराया। गृहदाह द्वारा ब्राह्मण समाज के पाखंड को उजागर किया। कुरीतियों को दूर करने को उत्सुक रहते थे। उनका मानना था कि मनुष्य के बाह्य रूप की अपेक्षा आंतरिक पक्ष प्रबल होता है। जलियांवाला बाग में हुए नर संहार से जन आक्रोश विस्तीर्ण हो गया। गरमदल की ओर उनका झुकाव था। हावड़ा जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य भी नियुक्त हुए। महात्मा गांधी के व्यक्तित्त्व का प्रभाव शरत पर भी पड़ा। स्वराज्य प्राप्ति के लिए चर्खे के स्थान पर सिपाही को प्रमुखता देते थे। आधुनिकता से आशय सभी वर्गों की संपन्नता से था। मातृभाषा को साथ लेकर अंग्रेजी भाषा को अपनाना भी आवश्यक है।

मानसिक स्वतंत्रता के पक्षधर थे। मन वचन कर्म से शरत चंद्र ने कांधे से कांधा मिलाकर देश सेवा का कार्य किया। हिंसा का मार्ग अपनाने वालों को सच्चे मन से प्यार करते थे। शरत का धरती से लगाव होना ही उनकी आत्मीयता रही। वास्तविकता से अवगत कराना उनकी रचनाओं का केंद्र बिंदु था। अपने चिंतन को देशबंधु चितरंजनदास से अवसरानुकूल व्यक्त भी करते थे। शरत की देश प्रेम की भावना के साथ ही पथेरदाबी रचना पर देश द्रोह का मुकद्दमा भी चला। बर्मा में रहते समय सर्वहारा वर्ग की सहायता को तत्पर रहते। दुःखी की आर्त पुकार सुनकर दौड़े चले आते। सेवा भाव के फलस्वरूप उन्होंने बालिकाओं की शिक्षा के लिए विद्यालय खोला। शोषण के विरूद्ध खड़े होकर अन्याय का डटकर मुकाबला करते। व्यवहारिकता उनके व्यवहार से झलकती थी। प्रत्येक आगंतुक को बताशे देकर स्वागत सत्कार करते थे। उनके निर्मल हृदय को देखकर ही थानेदार पश्चाताप करने को विवश हो जाता है। उन्होंने सदैव मानवता का समर्थन किया। पतितों में छिपी मनुष्यता को खोज निकाला। दासता से बड़ा कोई अन्याय नहीं था। गांधीवादी प्रभाव भी परिलक्षित होता है। जमींदारी प्रथा के खात्मे से चिंतित दिखाई देते थे। मानवीय करुणा का जो अध्याय प्रारंभिक पाठशाला में प्रारंभ किया वही जीवनभर प्रेरणा देता रहा। उनकी मानवता मनुष्य के साथ पशुओं के प्रति भी दिखाई देती है। मनुष्य को सबसे बड़ी शिक्षा पशु पक्षियों से मिलती है। राजा हो या भिखारी सभी को स्नेह रूपी वर्षा से सिंचित करते थे। एकता के लिए जीवन पर्यंत संघर्ष किया।

नामकरण : आवारा मसीहा उपन्यास नायक प्रधान रचना है। नायक शरत के इर्द–गिर्द कथानक का विकास एवं ह्रास है। निश्चित दिशा बोध के अभाव ने शरत के सामने दिग्भ्रम की स्थिति पैदा कर दी। फलस्वरूप आवारा रूप में भटकना पड़ा। युगीन, युगबोध एवं पतित, दलित शोषित नारियों ने शरत को संवेदनात्मक स्वरूप प्रदान किया। मानवतावादी भावना ने सेवा का भाव पैदा किया। संवेदनात्मक दृष्टिकोण ने चिंतन के लिए विवश किया। भविष्य के प्रति दिशाबोध के लिए जाग्रत किया। शरत सच्चे अर्थ में आवारापन के जीवन से गुजरे। पतंग उड़ाना, लट्टू घुमाना, गोली और गुल्ली–डंडा खेलना उनके स्वभाव के अनुकूल था। संगीत की धुन ने स्वच्छंद प्रवृत्ति प्रदान की। स्वच्छंद प्रवृत्ति के कारण डांट भी सहनी पड़ी। मोक्षदा, निरूपमा, नीरदा का सान्निध्य भी बंधन में न बांध सका। प्लेग की भयावहता ने आवारापन में गंभीरता को पैदा कर दिया।

नारी जागृति, मानवतावादी भावना, एकता की भावना, देशप्रेम का दायित्व बोध, शोषितों के प्रति संवेदनात्मक पक्ष, सामाजिक विकृतियों के विरूद्ध स्वर, निःस्वार्थ सेवाभाव, साहित्यिक दायित्व बोध, लेखन के प्रति प्रतिबद्धता, आदर्श प्रेम की पराकाष्ठा तथा दृढ़ इच्छा शक्ति के पक्षों ने आवारा जीवन को मसीहा बनाने में महती भूमिका निभाई। नामकरण सार्थक, अभिव्यक्ती की क्षमता से पूर्ण एवं चरित्रोद्घाटन करने में सक्षम हैं।

3.3.1 जीवनी कला के परिप्रेक्ष्य में :

विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित आवारा मसीहा रचना उपन्यास होने पर भी जीवनी के अधिक निकट है। जीवनी कला के आधार पर आवारा मसीहा की समीक्षा करने से पूर्व जीवनी (विधा) की विशेषताओं को जानना आवश्यक होगा। जीवनी का संबंध महान व्यक्तित्त्व का आभास कराता है। व्यक्ति विशेष की आंतरिक एवं बाह्य जगत की घटनाओं की सत्यता के साथ अभिव्यक्ति को जीवनी कहा जाता है। यत्र–तत्र बिखरी घटनाएँ महान व्यक्ति के जीवन का अनिवार्य अंग होती हैं, जिनसे उसका प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से संबंध जुड़ा होता है। सामान्यतया जीवनी के लिए सत्यता, सरलता, स्पष्टता, रोचकता, क्रमबद्धता प्रमाणिकता का होना आवश्यक माना जाता है। यही गुण जब महान व्यक्तित्व से जुड़ते हैं तो जीवनी की झलक दिखाई पड़ती है। आवारा मसीहा उपन्यास की जीवनी कला के तत्त्वों के आधार पर विवेचन निम्नवत है –

महान व्यक्तित्त्व : व्यक्तित्व की महानता व्यक्ति को जनसामान्य से विशिष्टिता की ओर ले जाती है। आवारा मसीहा में जिस व्यक्तित्व का अंकन किया है वह शरत चट्टोपाध्याय का है। समस्त उपन्यास शरत की जीवन शैली को चरितार्थ करता है। अनुभवों ने शरत को दिव्यता की ओर आकृष्ट किया। स्वच्छंद प्रवृत्ति से शरत ने अभिव्यक्ति की

स्पष्टता को ग्रहण किया। अभावों की भट्टी में तपकर शरत का जीवन कंचनमय हो गया। दृढ़ इच्छा शक्ति का जन्म अभाव की कोख से हुआ। शरत चट्टोपाध्याय की महानता के लक्ष्य जन्म से मृत्युपरांत तक दिखाई देते हैं। सौंदर्य के प्रति आकर्षण, जन्मजात स्वच्छंदता, निर्भीकता, युगबोध, भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि, सहृदयता, परोपकार, सेवा की भावना, सत्यता, भाषा एवं स्वदेशप्रेम की भावना, प्रेम के आदर्श रूप का विवेचन, शोषितों के प्रति सहानुभूति, विश्व बंधुत्व की भावना, राजनैतिक उत्तरदायित्व का सफल निर्वाह, कुरीतियों के प्रति आक्रोश, दायित्व बोध, मानवतावादी भावना, एकता की भावना, स्पष्टता आदि गुण शरत के महान व्यक्तित्व का बोध कराते हैं। सौंदर्य बोध ने लेखन के प्रति आकर्षण को पैदा किया। शरत की सूक्ष्म मेधा ने कुरूपता में भी सौंदर्य को खोज निकाला। शरत के वैयक्तिक जीवन में भी सौंदर्य की छटा दिखाई देती है। पिता की भांति सौंदर्य बोध से ओत–प्रोत था। अध्ययन कक्ष को सजाकर रखता था। उसकी व्यवस्थित रखी पुस्तकें आकृष्ट करतीं, कापियों को स्वयं काट–छांटकर सुंदर बनाता था। शारीरिक सौंदर्य के प्रति जागरूक था। शरीर को सुंदर बनाने के लिए कुश्ती लड़ता, गोला फेंकता, तैरने के प्रति सचेत रहता। नारी सौंदर्य को देखकर अनायास उसका हृदय प्रशंसा को आतुर रहता। मोक्षदा के सौंदर्य को देखकर वह कहता है– वृष्टि से भीगे फूल–पत्तों जैसा लावण्य था, स्नेहमयी भी कम न थी। शरत ने वास्तव में कलाकार का हृदय पाया था। उनकी दृष्टि से सौंदर्य कैसे ओझल हो सकता था। ग्रामीण परिवेश की झलक उनके जीवन का अनिवार्य अंग थी, इसीलिए उसकी उपेक्षा न कर सके। शरत के शब्दों में सामता गांव का दृश्य देखा जा सकता है। चारों ओर फैले हुए धान के खेत, प्रहरी के समान फैले हुए केले और खजूर के पेड़ और पूरंपार भरी हुई नदी, तीव्रता से और उच्छवासित रूप से जल के संघर्ष के कारण फैन लट्टू की तरह घूमते हुए आगे बढ़ते थे। सौंदर्य का पान करने के लिए मित्रों को निमंत्रण देते, शिकार खेलकर सौंदर्यमयी वसुंधरा का आनंद उठाते थे। महान व्यक्ति अत्याचार को सहन नहीं कर सकता उसकी सूक्ष्म दृष्टि पीड़ित शोशित वर्ग को प्रमुखता प्रदान करतीत है। शरत की दृष्टि में पृथ्वी पर सभी समान हैं न कोई छोटा न बड़ा। उन्होंने वैधव्य के अंधकार से नारियों को निकालकर महिमा मंडित कर दिया। नारी भावना का चित्रण उपन्यास में स्थान–स्थान पर देखने को मिलता है। उन्होंने दीन–हीन नारियों के हृदय को भी निस्वार्थ ममता एवं करुणा की भावना से ओत–प्रोत कर दिया। उनकी नारी हीनता से कराह उठी, उन्होंने कहा– 'जिस धर्म ने बुनियाद ही रखी है आदम हौवा के पाप पर, और जिस धर्म ने नारी को बैठा रखा है संसार के समस्त अधः पतन के मूल में।' शरत की इन्हीं संवेदनात्मक गुणों के कारण नारियों के आदर्श रहे, प्रेरणा के पुंज है, पथ प्रदर्शक रहे, अराध्य रहे, उनका सान्निध्य पाकर नारियों ने अपने चरित्र की रक्षा की। प्रतिकार करने की शक्ति को ग्रहण किया। वह पुरुष को परमेश्वर न मानकर जीवन साथी मानते थे। उनका मानना था कि नारी की सबसे दुर्गति पति परमेश्वर के कारण ही हुई है। शरत का संपूर्ण जीवन मानवतावादी भावना को सुदृढ़ करने में व्यतीत हुआ। इस मानवतावादी भावना के कारण निरीह नारियों को आश्रय प्रदान किया। शराब के आदी मनुष्यों का समर्थन करते नजर आते हैं इसीलिए कि वे भी मनुष्य हैं, उन्हें भी आनंदित होने का अधिकार है। इस कुरीति के मूल में आर्थिक विपन्नता को दोषी ठहराते हैं। सरकार को इसी अभिशाप की ओर संकेत करते हुए कहते हैं– मनुष्य से किसी भी स्थिति में घृणा नहीं करनी चाहिए। जो व्यक्ति खराब दखाई दे रहे हैं उन्हें सुधारने की चेष्ठा करनी चाहिए। यह बहुत बड़ा काम है। भगवान के इस राज्य में मनुष्य जितना शक्तिशाली है उतना ही दुर्बल भी है। बीमार मनुष्यों की अर्जी लिखकर अपनी संवेदना जताते। उनकी असहाय स्थिति ने शरत को महानता की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। मैं मनुष्य को बड़ा करके मानता हूँ। उसे छोटा करके नहीं मान पाता। मैं किसी व्यक्ति को पतित देखना नहीं चाहता। शरत की मानवता का दायरा विस्तीर्ण था उसकी परिस्थिति में नर–नारी, पशु–पक्षियों का संसार समाहित है। भेलू की कहानी उनकी मानवीय करुणा का उदाहरण है। बुलबुल, श्यामा, सालिख और टुनटुन चिड़ियों की चहचाहट से कैसे बच सकते थे।

शरत में स्वदेश प्रेम की भावना कूट–कूट कर भरी हुई थी। जहाँ एक ओर वे गांधी जी के अहिंसात्मक प्रयासों की सराहना करते, वहीं दूसरी ओर गरम दल का साथ देकर अपनी स्वदेष प्रेम की भावना को सुदृढ़ आधार

प्रदान करते थे। उनका मानना था कि स्वतंत्रता हाथ पर हाथ रखकर अनायास प्राप्त नहीं होगी। उनका देशबंधु चितरंजनदास को समर्थन देना इसका प्रमाण है। वह भीड़ से अलग रहकर आदर्श स्थापित करना चाहते थे। उनकी इसी भावना को इन शब्दों में देखा जा सकता है – 'गवर्नमेंट यदि गोली चलाए तो उसके सामने खड़ा रह सकता हूँ। लेकिन भेड़ों के गिरोह में बैठे–बैठे दिन–रात कड़ियाँ गिनते–गिनते महीनों पर महीने काट देना मुझसे नहीं होगा।' तन मन और धन से सहायता देकर देश की सेवा के लिए कृत संकल्प रहते। देशभक्तों, स्वतंत्रता सैनिकों की अवसरानुकूल सहायता भी करते थे। देश के लिए हिंसा का मार्ग अपनाने वालों को सच्चे मन से प्या भी करते थे। उन्हीं के शब्दों में – 'देश के लिए जो काम करते हैं उन पर मैं श्रद्धा रखता हूँ, भले ही वे हिंसात्मक क्रांतिकारी हों या अहिंसात्मक सत्याग्राही' लाला बिहारी, स्वदेश रंजनदास, शचींद्रनाथ सान्याल, विपिन बिहारी गांगुली सभी को स्नेह करते थे। देश भक्तों के योगदान को देखकर वे कहते थे – 'कितने अद्‌भुत हैं ये विप्लवी लोग' पथेर दावी रचना में उनका स्वदेश प्रेम देखा जा सकता है।

सांप्रदायिकता की स्थिति में विवेक शून्य व्यक्ति पशुवत आचरण करता है। महान व्यक्तित्व इस स्थिति में भी सम भाव की भावना को पल्लवित करता है। शरत का जीवन इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। उनका मानना था कि अन्याय और अत्याचार जहाँ होंगे, एकता की भावना पैदा नहीं हो सकती। जनकल्याण की भावना न तो हिंदू की अपेक्षा करती है न मुसलमान की और न जन्मभूमि की। संकीर्ण दृष्टिकोण से प्रगति का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है। अल्लाह या भगवान एक ही परमेश्वर की ओर संकेत करते हैं। उन्होंने भाषा, संस्कृति एवं अलगाव जैसे ज्वलंत प्रश्नों को अपनी बेबाक राय से हल कर दिखाया।

सत्यता/प्रमाणिकता : शरत जीवन भर सत्य के समर्थक रहे। विरोधों, विसंगतियों के बावजूद सत्य का दामन नहीं छोड़ा। उनका जीवन सच्चाई की दास्तां बयान करता है। विष्णु प्रभाकर जी ने शरत जी के जीवन से संबंधित वृतांतों में सत्यता के प्रमाणस्वरूप उपन्यास के पीछे संबंधित व्यक्तियों, उनके पत्रों की विस्तृत सूची दी है, जिसमें लेश मात्र भी कल्पना का अंश नहीं है। निःस्वार्थ भाव से सेवा करना, मृत शवों का संस्कार करना, स्वदेश प्रेम के प्रसंग, नारियों के विविध वर्णनों में सत्य की झांकी देखी जा सकती है।

स्पष्टता के गुण से शरत ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्राप्त की। दूध का दूध और पानी का पानी का उदाहरण शरत का जीवन है, जिसमें युगबोध का प्रतिबिंब है, भविष्य के लिए चिंतन की शक्ति है, वर्तमान के प्रति जागरूक रहने का संदेश निहित है। शरत के संपर्क में आई नारियों ने स्पष्टता का गुण ग्रहण किया। उनकी नारी सत्य के लिए आदर्श पति का साथ छोड़ सकती है। उनकी नारियों में स्वाभिमान का गुण स्पष्टता के कारण स्वतः आ गया। अभया इसका प्रमाण है उसका मानना है कि पत्नी पति का मिलन तभी तक संभव रह सकता है, जब तक उसमें सत्यता छिपी होगी। वह कहती है– मैं ऐसे मनुष्य के सारे जीवन को लंगड़ा बनाकर सती का खिताब नहीं खरीदना चाहती। मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ कि हमारे निष्पाप प्रेम की संतान संसार में मनुष्यत्व के लिहाज से किसी से भी हीन न होगी। उसका मानना है कि संसार में सत्य सबसे बढ़कर है।

रोचकता/तटस्थता : आवारा मसीहा उपन्यास में रोचकता एवं तटस्थता के दर्शन होते हैं। शरत स्वयं भी मनोविनोद के लिए कभी नाव में बैठकर सैर करते, तो कभी संगीत की मधुर तान से मन को आनंदित करते। पतंग उड़ाते, बाग से चुराकर फल तोड़ते, नदी या तालाब पर बैठकर मछली पकड़ने में आनंद उठाते। उन्होंने समाज के उपेक्षित वर्ग को सहानुभूति के द्वारा रोचक ही नहीं बनाया अपितु सर्वग्राह्य भी बनाया। उपन्यास का अनेक भाषाओं में अनुवाद रोचकता के पहलू को उजागर करता है। साम्प्रदायिक अवसर पर जितना हिंदुओं को फटकारते उतना ही मुसलमानों को। दोनों के विवेक को जाग्रत करते, दायित्व का बोध कराते। शरत ने भाषा, संस्कृति, धार्मिक जैसी समस्याओं का हल तटस्थ रहकर किया।

विष्णु प्रभाकर ने शरत चंद के जीवन के विशृंखलित घटना क्रम को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया। शरत

के जीवन के विविध पहलू–मानवतावाद, सेवा शुश्रूसा, नारी जागृति, दायित्वबोध, स्वदेश प्रेम, एकता का संचार, उपेक्षित वर्ग की सराहना के रूप में आवारा मसीहा उपन्यास में देखने को मिलते हैं। उपरोक्त लक्षणों के आधार पर आवारा मसीहा उपन्यास को जीवनी परक उपन्यास कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

2.3.2 संवेदनशील हृदय का अंकन : मनुष्य मानवीय गुणों से संपन्न होने के कारण ही मानव कहलाता है। मानवीय गुणों में त्याग, सेवा, क्षम, कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व, संवेदना, सहनशीलता, सहानुभूति, प्रेम आदि को सम्मिलित किया जाता है। आवारा मसीहा उपन्यास को मानवीय गुणों का भंडार कहा जा सकता है। उपन्यास का पात्र आवारा मसीहा मानवीय गुणों का जीता–जागता उदाहरण है। उपन्यास को गरिमा प्रदान करने में संवेदनात्मक पक्ष महती भूमिका निभाता है। उपन्यास में स्थान–स्थान पर संवेदनात्मक पक्ष की प्रस्तुति की गई है। संवेदनात्मक पक्ष के मूल में जमींदारों का आतंक, समाज की संकीर्णता, मनुष्यों का निजी स्वार्थ, शोषण की विभीषिका, द्रवित हृदय की अभिव्यक्ति की महती भूमिका रही है। जमींदार की झूठी गवाही न देने के फलस्वरूप बैकुंठनाथ को अपनी मौत को गले लगाना पड़ता है। पति की मृत्यु पर न तो अपनी संवेदना व्यक्त कर पाती है तथा पति की अनुपस्थिति में जीवन यापन करना दूभर हो जाता है। जमींदार का शोषण एक ओर विद्रोह के लिए प्रेरणा प्रदान करता है वहीं दूसरी ओर तिल तिल कर जीवन जीने की विवशता भी दर्शाता है। अभागी पत्नी शीघ्रताशीघ्र क्रियाकर्म करके रात में ही गांव छोड़कर भाइयों के पास जाने को विवश होत है। इस अवसर पर मानव का सहृदय होना स्वाभाविक ही है।

बचपन की नटखट प्रवृत्तियों के कारण शरत की माँ चिंतित रहती थी। शरत की पिटाई के अवसर पर दादी माँ के हृदय में वात्सल्य का सागर उमड़ पड़ता था। माँ जहाँ पुत्र शरत की स्वाभाविक प्रवृत्ति को लेकर चिंतित होती वहीं दादी का दिल बच्चे शरत की पिटाई से दहल जाता। अपने हृदय के उद्‌गार इस प्रकार व्यक्त करती है– 'बहू तू इसे मत मार। एक दिन इसकी मति लौट आएगी और यह बहुत बड़ा आदमी होगा। मैं वह दिन देखने के लिए नहीं रहूंगी, लेकिन तू देख लेना मेरी बात झूठ नहीं होगी।' दादी के हृदयोद्‌गार संवेदनात्मक स्वरूप को उजागर करते हैं। भिखारी को देखकर समाज में उसे फटकार मिलती है वहीं शरत उस अभागे भिखारी की तरफदारी करता है। गांव की ब्राह्मण बेटी नीरू की कहानी ने शरत को झकझोर डाला, जिस नीरू के परोपकार, धर्मशील और कर्मठ होने का प्रमाण समाज था वही समाज समय आने पर उसके उपकार को तिलांजलि दे रहा है। सामाजिक बहिष्कार से पीड़ित नीरू ने शरत का मन मस्तिष्क आकृष्ट कर लिया। समय–समय पर रात में शरत उसकी सेवा करता, खाने–पीने की व्यवस्था भी करता। मृत्यु होने पर उसके शव को जंगल में फेंक दिया जाता है। जिस मृत्युंजय को विलासी और बूढ़े ओझा ने मनुष्य बनाने का प्रयत्न किया वही जब पत्नी के रूप में विलासी को अपनाता है तो समाज में तूफान खड़ा हो जाता है। जाति से बहिष्कृत किया जाता है। सांपों को पकड़कर जीविका चलाने को विवश होता है। पति–पत्नी की मृत्यु से जो समाज प्रसन्न हुआ उसका प्रत्यक्ष दर्शन शरत ने किया था, जिस लड़की ने एक ओर सेवा के द्वारा समाज को अपने अहसान से दबा दिया था, वह वहीं तिरस्कृत भी हुई। शरत ने तिरस्कृतों में देवत्व के दर्शन किये। उनमें उन्हें मानवता की गूंज सुनाई दी। इन्हीं संवेदनात्मक पहलुओं ने शरत को सहनशील बनाकर लेखन को उर्वरक पृष्ठभूमि भी प्रदान की। अभावग्रस्त जीवन में दाम्पत्य का सफ संचालन करने में शरत की माँ को देखा जा सकता है। अपने बहुमूल्य गहनों को बेचकर अपने पतिव्रत धर्म का निर्वाह किया। विषम परिस्थितियों में अपने चाचा के सामने हाथ फैलाकर अपने कर्त्तव्य का पालन तो किया साथ ही नारी सहृदयता का उदाहरण भी प्रस्तुत किया। अभावों के बीच माँ को बच्चे शरत के लिए चिंतित होना संवेदनशीलता का द्वार खोलता है– ''शरत मेरे बच्चे! मैं जानती हूँ अपनी सारी शरारतों के बावजूद तू एक अच्छा लड़का है। तू मन लगाकर पढ़ता रह मैं तेरी सहायता करूंगी।'' इन शब्दों में माँ का संतान के प्रति असीम लगाव का बोध होता है। स्वयं शरत को भी सामाजिक अवरोधों का सामना करना पड़ा। समाज के व्यक्त कार्यों को करने पर भी समाज के ठेकेदारों का हृदय द्रवित नहीं हुआ। ब्राह्मण भोज के अवसर पर शरत को दुत्कारा जाता है। अपनी उपेक्षा देखकर शरत की आत्मा रो उठती है। यायावर द्वारा आत्मिक शांति के प्रयास भी निरर्थक हो जाते हैं।

प्लेग की विभीषिका में असहायों की निस्वार्थ सेवा भाव ने बहिष्कृतों के प्रति कर्त्तव्यबोध को जाग्रत कर दिया। मनुष्य से घृणा करने पर शरत का हृदय द्रवित हो उठता है। मानवतावादी भावना के कारण शरत मनुष्य को बराबरी का हक दिलाने की वकालत भी करता है– ''भगवान के इस राज्य में मनुष्य जितना शक्तिशाली है उतना निर्बल भी।''

शरत का पशु पक्षियों के प्रति प्रेम भी मानवीय करुणा से परिपूर्ण था। जिस पक्षी को पालते उसके खान–पान की पूरी व्यवस्था भी करते। बाटू बाबा के मरने पर विधिवत नदी तट पर दाहसंस्कार करते हैं। बंशी वादन कुत्ते को भी जी–जान से पालते हैं। शरत ने प्रतिज्ञा की कि ''मैंने निश्चय किया है कि मैं उन्हें ही प्यार करूंगा जो असुंदर हैं।'' स्वदेश के प्रसंग पर शरत ने अपनी लेखनी न चलाने का निर्णय भारतीयों की अकर्मण्यता एवं स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण किया। बंगाली वासंती की गिरफ्तारी पर मनुष्यों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उनकी चेतना नष्ट हो गई थी शरत की व्यथा–''अब भी लोग विलायती कपड़े पहनते हैं, अब भी उसी सरकार की नौकरी करते हैं, अब भी कोर्ट कचहरी में वकील बैरिस्टर घिस घिस करते हैं। हम लोग दास हैं भाड़े के टट्टू और जरखरीद गुलाम हैं। हमारे लिए लज्जा की बात है।'' शरत ने अपने चरित्र–चित्रण में जिन पात्रों का चयन किया वे समाज को अपने प्रणेता, शरत के हृदय में देश के लिए, समाज के लिए, स्त्रियों के लिए जो वेदना थी वही उनके संवेदनात्मक स्वरूप का प्रमाण भी है। गुलामी की दास्तां ने शरत को नवीन–नवीन दर्शन प्रदान किया। जमीदारों के विरूद्ध पक्ष लेने को उत्सुक रहते। अन्याय का डटकर मुकाबला करते तथा अपनी सहृदयता से शांत गांव वालों के लिए 'आपुन जन' बन गये थे। शरत ने अपनी सहृदयशील भावना का जीवन पर्यंत समर्थन भी किया। रंगून में सर्वहारा वर्ग, गांव के लिए विद्यालय खोले, पथघाट बनवाये, उनकी ओर से स्वयं मुकद्दमें भी लड़ने से पीछे नहीं रहे। भीगी थर–थर कांपती भिखारिन को देखकर उसको धन देकर अपनी सहृदयता का परिचय करा देते हैं। अनाथ नवजात शिशु की देखभाल करके मानवतावाद को जीवित करते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

4. आवारा मसीहा रचना का स्वरूप क्या है?
5. आवारा मसीहा में किसका जीवन प्रतिबिंबित है?
6. आवारा मसीहा में कितने परिच्छेद हैं?
7. मानव संवेदना का सफल चित्रण करना किस पात्र का लक्ष्य रहा है?
8. बचपन में शरत के प्रति उदार हृदय रखने वाली कौन थी?
9. शरत के लेखन के मूल में निहित पक्ष क्या थे?

3.4 आवारा मसीहा का उद्देश्य

आवारा मसीहा उद्देश्य परक उपन्यास है। विष्णु प्रभाकर ने शरत चट्टोपाध्याय के द्वारा अपने निहित उद्देश्य की पात्रसृजन, सामाजिक जागरूकता, नारी जागृति, मानवतावाद, एकता की भावना, स्वदेश प्रेम का चित्रांकन, युगबोध, भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि, शिक्षा की आवश्यकता तथा स्वस्थ दृष्टिकोण को विकसित करने के द्वारा अभिव्यक्त किया है। उपरोक्त बिंदुओं पर आवारा मसीहा उपन्यास के उद्देश्य का चित्रांकन निम्नवत है –

चरित्र सृष्टि : आवारा मसीहा उपन्यास चरित्र प्रधान है। उपन्यास में प्रमुख पात्रों में शरत चंद का जीवन प्रतिबिंबित है। गौण पात्रों में रमेश, राजू, मोती लाल, सुरेंद्र, केदारनाथ, अमरनाथ, मोती लाल चट्टोपाध्याय, नयन, ईश्वर चंद्र, विद्यासागर, माइकल, मधूसूदन दत्त, धर्मदास, तारापद, रवींद्र नाथ, कविवर निर्मल चंद्र, चक्रवर्ती, योगेन्द्र, कृष्णदास, द्विजेन्द्र लाल राय, फणींद्र नाथ, सौरींद्र मोहन, देशबंधु, रामानंद, उपेंद्रनाथ, जवाहर लाल नेहरू, सुभाष

चंद्र बोस, राजेन्द्र नाथ, हेमेंद्र कुमार राय, श्यामा प्रसाद मुखर्जी तथा राम प्रसाद मुखर्जी आदि पात्रों द्वारा कथानक को क्रमबद्धता प्रदान की है। नारी पात्रों में मोक्षदा, सावित्री, निरूपमा देवी, कुसुम कुमारी, भुवनमोहिनी, सुशीला, राजबाला, कुमुद आदि नारियों ने शरत का सान्निध्य पाकर अपने जीवन को सार्थक बनाया। निराशा के गर्त में भी आशा की डोर पकड़े रखी। शरत चंद्र ही इस रचना का मुख्य नायक है। उपन्यास का कथानक शरत के इर्द–गिर्द घूमता है। शरत चंद्र के जीवन में सहानुभूति, करूणा, सेवा, त्याग, संवेदनशीलता, विद्रोह, मानवता, भविष्य जीवन बोध, देश के प्रति समर्पण की भावना आदि मानवीय गुण कूट–कूटकर भरे हुए हैं।

शरत जी ने नारी पात्रों की रचना समाज के उपेक्षित, शोषित, घृणित, त्यक्त, दयनीय, अकिंचन वर्ग से की। उनकी नारियों ने परिस्थितियों के आगे घुटने नहीं टेके अपितु शक्ति सामर्थ्य के अनुसार प्रतिकार भी करती हैं। स्वयं शरत जी ने स्पष्ट किया कि घटना को उपन्यास की असली वस्तु नहीं मानता। मेरा एक मात्र उद्देश्य चरित्र सृष्टि है उन्होंने घटनाओं की अन्विति कर चरित्र को प्रमुखता प्रदान की। उनके पात्र पाठकों को प्रिय लगते हैं– 'मेरा जीवन वर्णन और चरित्रांकन यथार्थ जीवन के बहुत निकट है।' शरत के ये उद्‌गार चरित्र चित्रण की ओर संकेत करते हैं। कमल नारी पात्र द्वारा शरत ने नवयुग की झलक का दिग्दर्शन कराया है। इसी पात्र की प्रशंसा करते हुए शरत ने मित्र कुमुदिनीकांत से कहा– 'दस वर्ष बाद बंगाल के घर–घर में कमल जैसी नारियाँ पैदा हो जाएंगी।' उन्होंने अपनी मनोदशा को व्यक्त करने के लिए पशु पक्षियों को अमर कर दिया।?

मानवतावाद की प्रतिष्ठा : आवारा मसीहा उपन्यास में मानवतावादी भावना का दिग्दर्शन कराया गया है। उपन्यास का प्रत्येक पात्र मानवतावाद से ओत–प्रोत है। उपन्यास का नायक शरत मानवतावाद का पुजारी है। इसी मानवता को जीवंतता प्रदान करने के लिए समाज का बहिष्कार सहा, आंतरिक कलह झेली, सेवा द्वारा मानवता को पल्लवित किया। उनका साहित्य सृजन के मूल में यही मानवतावाद ही था। शरत के शब्दों में– ''मैंने अनीति का प्रचार करने के लिए कलम नहीं पकड़ी, मैंने तो मनुष्य के अंतर में छिपी हुई मनुष्यता को, उसकी महीमा को जिसे सब नहीं देख पाते, नाना रूपों में अंकित करके प्रस्तुत किया है।'' उनकी दृष्टि में मनुष्यता से बढ़कर न कोई धर्म था न साहित्य न श्लोक, न मंत्र। उनकी दृष्टि में असहयोग आंदोलन की महत्ता बिना मानवता के व्यर्थ थी। मृत्यु के सन्निकट होने पर भी मानवता को नहीं छोड़ा– सोर जीवन मनुष्य को प्यार किया है। विषम परिस्थितियों में भी मानसिक संतुलन बनाये रखते थे। जीवन की पाठशाला में अनुभवों ने शरत के जीवन को दया, ममता के आगोश में ढकेल दिया जिसका प्रतिफल मानवता के रूप में सामने आया। वे जानने से भी अधिक मनुष्य को प्यार करते थे, निस्वार्थ भाव से दूसरों की सहायता करते। शराबी तक की हिमायत करने से नहीं चूकते। किसी भी दशा में घृणा नहीं करनी चाहिए, उन्होंने कभी किसी धर्म व समाज का विरोध नहीं किया। रूढ़ियों, कुरीतियों, अंधविश्वासों को देखकर उनकी आत्मा कराह उठती थी। उनका मानना था कि संकुचित दृष्टिकोण से मनुष्य धर्म का अपमान होता है। मनुष्य के समाज कार्यों के लिए परिस्थितियों को दोषी ठहराते थे। किसी प्रभाववश मनुष्य ऐसा करता है, तो मानवता कलंकित होती है। मैं मनुष्य को बहुत बड़ा करके मानता हूँ, उसे छोटा करके नहीं मान पाता। शरत की मानवता केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं थी, उसके दायरे में पशु–पक्षियों का समाज भी समाहित था। भेलू कुत्ते का वृतांत इसका प्रमाण है। मोर, मैना, तोते, बकरों की उपस्थिति से उनकी मानवतावादी भावना को प्रबल आधार मिलता है।

नारी सहानुभूति : नर–नारी का परस्पर आकर्षण नारी सहानुभूति को चरितार्थ करता है। यह नारी जो मनुष्य को अपनी कोख से पैदा करती है वही मनुष्य द्वारा त्रासित की जाती है, प्रताड़ित की जाती है। समाज व धर्म की संकीर्णताओं का सामना पुरुष की अपेक्षा नारी को ही करना पडता है। आवारा मसीहा उपन्यास का मूल उत्स नारी के प्रति सहानुभूति एवं जागृति पैदा करना है। उनका मानना था कि जब तक स्वयं नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं होगी तब तक सभी प्रयोजन व्यर्थ ही हैं। हरमति पुजारी ब्राह्मण का क्रोध नारी मुक्ति का द्वार खोलता है– 'मैं वैष्णवी हूँ, तेरी जैसी छोटी जात के ब्राह्मण बहुत देखे हैं। मुंह संभालकर बात कर। न खाने को देता है, न पहनने को। उस पर डींग मारता है इतनी लंबी।' हरमति अपनी कुशाग्रबुद्धि से ब्राह्मण पुजारी की कलाई खोल देती

है। मिस्त्री पल्ली में स्त्री पर दोष लगाने पर स्त्री शांत नहीं बैठती...'तेरी जैसे छोटी जात वाले के ऊपर झाड़ू मारती हूँ। स्त्री के यह उद्‌गार समाज में व्याप्त जाति वैषम्य को उद्‌घाटित करते हैं। असहयोग आंदोलन को सफल बनाने के लिए पुरुष के साथ नारी की भागीदारी को आवश्यक मानते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु भवानीपुर में नारी कर्ममंदिर की स्थापना की। शिवपुरी इंस्टीट्‌यूट में भाषण देते हुए शरत ने कहा– 'जिस चेष्टा में, जिस आयोजन में, देश की नारियाँ सम्मिलित नहीं हैं, उनकी सहानुभूति नहीं है। उनको केवल घर के भीतर बिठाकर केवल चर्खा कातने के लि विवश किया गया है। हमने औरतों को केवल औरत बनाकर ही रखा है, मनुष्य नहीं बनने दिया। उसका प्रायश्चित स्वराज्य से पहले देश को करना चाहिए। अवरानुकूल नारियों की सहायता भी करते थे। विरोध के फलस्वरूप दुर्गावति को अपने घर में शरण देकर नारी अस्मिता की रक्षा की। उसको शिक्षित कर आत्मनिर्भर बनाने की पहल की।

देश प्रेम का दिग्दर्शन : 'प्रेम' शब्द व्यापकता की ओर संकेत करता है। जिसकी परिधि में परिवार, समाज, देश तथा विश्व समाहित हो जाता है। आवारा मसीहा उपन्यास में प्रेम के स्वरूप का दिग्दर्शन विभिन्न रूपों में देखने को मिलता है। प्रेम के क्षेत्र में मानव प्रेम, प्रकृति प्रेम, स्वदेश प्रेम का दिग्दर्शन दिखाई देता है। मानव प्रेम के रूप में नारियों की महिमा मंडित कर प्रेम को पल्लवित किया। स्वदेश प्रेम के प्रयासों में प्रेम का सफल परिपाक देखने को मिलता है। देशभक्त जहाँ अपने प्राणों की आहुति देकर स्वदेश प्रेम के मार्ग को प्रशस्त कर रहे थे वही साहित्यकारों ने अपनी साहित्कि योगदान से अपने कर्म की इतिश्री करना उपयुक्त समझा। शरत जी युग दृष्टा थे इसीलिए उन्होंने असहयोग आंदोलन को सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए साहित्यकारों को दायित्व के प्रति सचेत किया। लोकमत जाग्रत करने का गुरूभार संसार के सभी देशों में साहित्यिकारों के ऊपर रहा है। उन्होंने भीड़ से अलग अपना रास्ता अपनाया। उनकी दृष्टि में गोली के सामने खड़े होना भीड़ में रहने से कहीं श्रेयस्कर है। मन, वचन तथा कर्म से स्वतंत्रता संग्राम में योगदान देने के लिए देशबंधु के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलते थे। पथेर दाबी उनके राजनीतिक जीवन का दर्पण है। शरत चंद्र देश की मुक्ति के लिए हिंसा का मार्ग अपनाने वालों को सच्चे मन से प्यार करते थे। शरत के द्वारा गरम दल का समर्थन करना उनकी देश प्रेम की भावना को दर्शाता है। उनके दल का मानना था कि देश में आजादी आती है तो हमारे द्वारा ही आएगी तुम लोगों के द्वारा नहीं आएगी। स्वतंत्रता आंदोलन को सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए विद्यार्थियों को सचेत करते थे। उनका विश्वास था सेवा और पीड़ा द्वारा ही स्वतंत्रता प्राप्त की जा सती है। देश प्रेम की भावना को एकता के बिना पूर्ण नहीं किया जा सकता। पारस्परिक सौहार्द के लिए सभी वर्गों की एकता अपेक्षित है। भाषा, धर्म, संस्कृति के आधार पर मनुष्यों को बांटने से देश प्रेम एवं एकता की समस्या का हल संभव नहीं है।

समाज की विषमताओं का चित्रण : आवारा मसीहा उपन्यास में विष्णु प्रभाकर ने समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, कुरीतियों, विकृतियों, कुप्रथाआ आदि परंपराओं का स्थान–स्थान पर चित्रण किया है। दैवीय आपदा के समय शवों का अंतिम संस्कार करने पर नीच कहा गया। यायावर प्रवृत्ति स्वरूप आवारा कहा जाने लगा। भोजन खिलाते समय जातिगत वैषम्य का सामना करने पर शरत की आत्मा रो पड़ती है। मनुष्य के पतन का दायित्व व्यक्ति को न देकर परिस्थिति को देते हैं। पति की पौरुष प्रवृत्ति में अहं की छाया झलकती है। जाति का आरोप पत्नी हरिमति को विद्रोह करने पर प्रेरित करता है। समुद्र यात्रा करना अशुभ माना जाता था। छोटे भाई की पत्नी से बात करना पाप माना जाता था। अराजकता के कारण बंगाली समाज का दो भागों में विघटन हो गया था। नाच–गाना, अभिनय बुरा माना जाता था। विधवा विवाह की कल्पना करना असंभव था। शराब के प्रचलन के मूल में परिस्थतियों की भूमिका को रेखांकित करते थे। भाषा, धर्म, संस्कृति के आधार पर मनुष्यों के बी पनपते आपसी वैमनस्य का चित्रांकन करना आवारा मसीहा उपन्यास का मूल उत्स रहा है।

युगबोध एवं भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि : आवारा मसीहा उपन्यास युगबोध की विशेषता से पूर्ण है। शरत को शहरी

कृत्रिमता की अपेक्षा ग्राम की सादगी श्रेष्ठ लगती थी। अपनी इसी अनुभूति को उन्होंने कहा– मैं भक्त को प्यार करता हूँ। एक अनपढ़ ग्रामीण की सच्ची भक्ति में देवत्व रहता है। यथार्थवाद केवल वास्तविकता का ही नाम नहीं है। बाह्य एवं आंतरिक सामंजस्य के आधार पर ही यथार्थवाद को पहाना जा सकता है। उन्होंने मानवतावादी भावना की अभिव्यक्ति की। नारी पुरुष के समानाधिकार के प्रसंग, भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टिबोध के प्रमाण हैं। देश की स्वतंत्रता के लिए साहित्यकारों के दायित्व का सफल निर्वाह करना आवश्यक मानते हैं। भषागत विचार पर अंग्रेजी और बंगाली दोनों भाषाओं को महत्ता प्रदान कर युगबोध के साथ भविष्य के लिए दिशा निर्देश प्रदान करते हैं। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के लिए अपनी बेबाक राय से अवगत कराते हैं। स्वयं अभिनय करके युगीन समाज की संकीर्णता का परित्याग किया। अपने मित्रों को नया करने की सलाह भी देते हैं– 'प्राचीन वस्तुओं को लेकर गर्व करने से बात नहीं बनती। नूतन गढ़ डालो।' शरत का नूतन की ओर संकेत करना जागरूक साहित्यकार का दायित्व दर्शाता है। उनकी दृष्टि में सच्चे मानव की पहचान कुत्सित गंदगी के दर्शन किये बिना नहीं की जा सकती। आंतरिक पक्ष के बिना पूर्ण मानव की परीक्षा नहीं हो सकती।

'अपनी प्रगति जांचिए'

10. आवारा मसीहा का केंद्रीय पात्र कौन–सा है?

11. आवारा मसीहा में किन भावनाओं का समावेश है?

12. नवीनता के प्रति आग्रह करने वाला पात्र कौन–सा है?

3.5 आवारा मसीहा की संवाद योजना :

आवारा मसीहा उपन्यास संवाद एवं कथोपकथन की दृष्टि से श्रेष्ठ रचना है। भावों की अभिव्यक्ति प्रभावोत्पादकता की सक्षमता, चरित्रोद्घाटन की कसौटी पर 'आवारा मसीहा' खरी उतरती है। रचना की सार्थकता सफल संवादों पर आश्रित होती है। कथानक की क्रमबद्धता संवादों के बिना असंभव है। संवाद एवं कथोपकथन में संक्षिप्तता, यथार्थता, रोचकता, स्पष्टता, नाटकीयता, मनोवैज्ञानिकता, स्वाभाविकता, व्यंग्यात्मकता आदि विशेषताओं को सम्मिलित किया जाता है। आवारा मसीहा उपन्यास का संवादयोजना की दृष्टि से विवेचन निम्नवत् है –

संक्षिप्तता : संक्षिप्त संवाद भावों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। आवारा मसीहा उपन्यास में स्थान–स्थान पर लघु संवाद योजना का सौंदर्य देखने को मिलता है। शरत और सुरेंद्र के मध्य वार्तालाप में संक्षिप्तता के दर्शन होते हैं –

कई क्षण मंत्रमुग्ध रहने के बाद सुरेंद्र ने पूछा – 'यह किसका है शरत?' 'मेरा'

'खरीदा है?'

'नहीं'

'तब'

'नीला ने दिया है।'

'एकदम दे दिया है।'

'सीखने के लिए दिया है।'

उपरोक्त संवाद संक्षिप्त होने के साथ ही जिज्ञासा के गुणों से भी युक्त है। यहाँ पर प्रश्नोत्तर का क्रम संक्षिप्त स्वरूप का वर्णन करता है। अंग्रेजों के अत्याचार से शरत का मन कराह उठा। उसने अपनी प्रत्यक्ष आंखों से

भारतीयों की पीठ पर कोड़ों की मार को देखा। इस अत्याचार का बदला लेने की युक्ति में वह जुट जाता है। रास्ते को रस्सी से अवरूद्ध कर रोज साहब को घोड़े सहित पृथ्वी पर गिरा देता है। राजू और रोज साहब के मध्य वार्तालाप में संक्षिप्तता के साथ प्रतिकार की भावना को इन शब्दों में देखा जा सकता है–

राजू– 'फिर कभी किसी बेकसूर मुसाफिर को मारोगे?

'कभी नहीं!'

'बोलो 'माफ करो!'

'माफ करो!'

'घर जाओ!'

इन संवादों में रोज साहब की विवशता को देखा जा सकता है। साथ ही पराधीन भारत में भारतीयों की दयनीय स्थिति का अनुमान भी लगाया जा सकता है।

स्पष्टता : संवाद योजना की सार्थकता स्पष्टता की ओर संकेत करती है। संवाद जितने स्पष्ट होंगे, भावों की स्पष्टता उतनी ही अधिक होगी। विशिष्ट चरित्र के साथ साधारण वर्ग का पात्र भी कथन के मर्म को समझ लेता है। रमाबाबू और शरत के बीच होने वाले वार्तालाप में स्पष्टता को देखा जा सकता है –

शरत बाबू – 'इसे तुम नहीं छाप सकोगे'

रमाबाबू – 'क्यों नहीं छाप सकूंगा?'

शरत बाबू – 'क्योंकि यह भीषण रचना है।'

रमाबाबू – 'मैं इसे छापूंगा। आपने इसे समाप्त कर लिया है।'

शरत का संवाद रमाबाबू को युगीन परिस्थितियों में प्रकाशकों की मनःस्थिति को दर्शाता है, वहीं रमाबाबू के संवादों में अपने कर्म के प्रति दृढ़ता एवं कर्त्तव्यबोध की झलक देखने को मिलती है। शरत की 'शेष प्रश्न' रचना की सार्थकता पर उठाये गये प्रश्नों में स्पष्टता को देखा जा सकता है। रचना में चरित्र बहुत हैं पर वे सभी रक्त मांस हीन हैं। इसमें न साहित्य है और न सौंदर्य, न भाव सौष्ठव है, है केवल विकृत संस्कार। शरत ने अपने मित्र कुमुदिनी कांत से कहा– शेष प्रश्न का अध्ययन उसके विकास और क्षमता के आधार पर होना चाहिए। 'दस वर्ष बाद बंगाल के घर–घर में कमल जैसी नारियाँ पैदा हो जाएंगी।' शरत की इस भविष्यवाणी में साहित्य सृजन मूल में भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि को देखा जा सकता है। शरत और डॉक्टर के मध्य होने वाले संवादों में स्पष्टता, निर्भीकता को देखा जा सकता है। बीमारी के समय मानव स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है। लेकिन शरत के स्वभाव में वाकपटुता एवं स्पष्टता की झांकी देखने को मिलती है।

शरत – 'देश जाकर बहुत माछ खाए हैं।'

डॉक्टर – 'हजम नहीं कर पाते तो इतना क्यों खाते हो?'

शरत – 'लोभ के कारण एक–एक दिन में पाँच–पाँच, छह–छह तक तपसे माछ खाए हैं।'

डॉक्टर – 'अच्छा काम नहीं किया।'

चरित्रोद्घाटन में सहायक– आवारा मसीहा उपन्यास में प्रयुक्त संवाद चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करने में सक्षम है। संवाद पात्रों की आंतरिक एवं बाह्य अंतर्मन की अनुभूति करा देते हैं। संवादों को पढ़कर व सुनकर पात्रों

के व्यक्तित्त्व का अनुमान लगाया जा सकता है। पारिवारिक प्रतिबंध के बावजूद शरत का मन शरारत करने को उत्सुक रहता है। शरत–मणि के बीच बोले गये कथोपकथन में चारित्रिक झांकी देखी जा सकती है।

मामा – 'तू कहाँ चला गया था रे।'

शरत – 'मैं गोदाम में था।'

'क्या खाता था?'

'वही जो तुम खाते थे।'

'कौन देता था?'

'छोटी नानी।'

उपरोक्त संवाद में शरत की हाजिरजवाबी और छोटी नानी की सहृदयशीलता का गुण दिखाई देता है। नीला और शरत के बीच प्रयुक्त संवादों में आदर्श मित्रता की झांकी देखी जा सकती है। शरत को अचेतावस्था में देखकर नीला की घबराहट मित्रता की झलक दिखा देती है।

घबराकर उसने पुकारा – 'शरत ओ शरत!'

लेटे लेटे शरत ने कहा – 'अंदर आ जा!'

नीला ने पूछा – 'बीमार है?'

शरत – 'हा!'

नीला – 'रक्त की उल्टी हुई है?'

शरत – 'दुत पागल!'

नीला – 'तो फिर तेरे कपड़ों पर यह रक्त कैसा है?'

शरत – 'बेटे नेवले की करतूत है।'

आदर्श मित्र की पहचान विपत्ति की घड़ी में की जाती है। नीला के हृदय में शरत के लिए तड़प और आत्मीय लगाव का बोध इन संवादों से किया जा सकता है। अन्याय के विरूद्ध खड़े हाना राजू की विशेषता थी। इसीलिए कूप पर पानी भरत समय स्त्रियों से छेड़छाड़ करने वाले युवक की पिटाई करता है।

व्यक्ति – 'फिर आओगे?'

राजू – 'नहीं नहीं इधर पैर भी नहीं रखूंगा।'

राजू – ' खाओ ईश्वर की सौगंध।'

व्यक्ति – 'ईश्वर की सौंगध खाता हूँ, फिर इधर नहीं आऊंगा।'

राजू – 'जाओ, माफ किया।'

इन संवादों में राजू की चारित्रिक विशेषताओं को देखा जा सकता है। संवेदनात्मक पक्ष के साथ अन्याय के विरूद्ध लड़ने की क्षमता का भी बोध होता है।

व्यंग्यात्मकता तथा यथार्थता : आवारा मसीहा उपन्यास के संवादों में व्यंग्य के साथ यथार्थता के दर्शन होते हैं। व्यंग्य के द्वारा पात्र की मनोवैज्ञानिकता के दर्शन होते हैं। व्यंग्य के द्वारा पात्र की मनोवैज्ञानिकता का पता चलता है,

यथार्थता से वास्तविक स्थिति का आभास हो जाता है। रवींद्र नाथ और शरत के बीच आपसी वार्तालाप में व्यंग्य के दर्शन होते हैं –

रवींद्रनाथ – 'शरत तुम्हारे हाथ में यह पैकेट कैसा है?'

शरत – 'जी ऐसे ही एक चीज है।'

रवींद्रनाथ – 'क्या चीज है? कोई पुस्तक है?'

शरत – 'जी हाँ!'

नवींद्रनाथ – 'कौन सी पुस्तक है? शायद पादुका पुराण है?'

इन संवादों में मनोविनोद को देखा जा सकता है।

मोतीलाल एवं अघोरनाथ के संवादों में सामाजिक स्थिति के साथ वैयक्तिक विपन्नता देखने को मिलती है –

अघोरनाथ – 'तुम यह घर छोड़कर क्यों चले गये मोतीलाल?'

मोतीलाल – 'अच्छा नहीं लगता था, छोटे काका।'

अघोरनाथ – 'इतनी ठंड में कपड़ा क्यों नहीं पहनते?'

मोतीलाल – 'है नहीं।'

अघोरनाथ – 'शरत कहाँ है?'

मोतीलाल – 'झगड़ा करके कहीं भाग गया है।'

अघोरनाथ – 'आजकल कुछ काम–वाम है?'

मोतीलाल – 'नहीं'

अघोरनाथ – 'तब कैसे चलता है?'

मोतीलाल की आंखें डबडबा आई, टपटप आंसू गिरने लगे।

व्यावहारिकता एवं वाक्पटुता : व्यावहारिकता एवं वाक्पटुता के कारण 'आवारा मसीहा' उपन्यास के संवादों में सजीवता के दर्शन होते हैं। मानवीय व्यवहार चारित्रिक विशेषता की रेखांकित कटुता है। शरत का जीवन व्यवहारिकता का श्रेष्ठ उदाहरण है जब एक बंधू को शरत द्वारा दिये बताशों पर आश्चर्य होता है तो शरत की अभिव्यक्ति में व्यवहार, शिष्टाचार झलकता है। शरत के शब्दों में – 'यह तो भाई, गांव का शिष्टाचार है।' पास में बाजार नहीं था, देने को मिठाई हमेशा मिलती नहीं सो बताशे तैयार रखते थे, उनका मानना था, खूब खाएंगे, तभी तो लोग यहाँ आएंगे।

शरत और उपेंद्र नाथ के संवादों में व्यवहार की शिक्षा देखने को मिलती है।

शरत – 'कहाँ जाते हो?'

उपेंद्रनाथ – 'अपने घर जाता हूँ।'

शरत – 'खा–पीकर जाना।'

उपेंद्रनाथ – 'इस किताब वाले के घर खाना–पीना करने के लिए कहते हो?'

शरत – 'बहुत दूर से आए हो। बहुत दूर जाना है। आखिर चाय–नाश्ता लेकर जाओ।'

स्टीमर पर यात्रा करते समय शरत कप्तान को बिना हिचक अपनी वाक्पटुता से अवगत करा देता है। तंबाकू खाने पर शरत के कथनी में वाक्चातुर्य की छटा देखी जा सकती है। महात्मा जी, देशबंधु और शरत के संवादों में राजनैतिक झांकी भी दिखाई देती है।

महात्मा जी – 'शरत बाबू, आपकी चर्खे में श्रद्धा नहीं है?'

शरत – 'रती–भर भी नहीं।'

महात्मा जी – 'लेकिन कातते तो आप चर्खे के अनेक प्रेमियों से अच्छा हैं।'

शरत – 'मैं चर्खे को नहीं आपको प्यार करता हूँ।'

महात्मा जी – 'चर्खा कातेने से स्वराज्य में सहायता मिलेगी।'

शरत – 'मेरे विचार से स्वराज्य प्राप्ति में सिपाही ही साहयक हो सकते हैं, चर्खे नहीं।'

शरत जहाँ एक ओर गांधी जी की अहिंसा एवं चर्खे में विश्वास करते थे, वहीं स्वदेश के लिए चर्खे से अधिक सिपाही की भूमिका को रेंखाकिंत करते हैं। शरत के इन विचारों में भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि के दर्शन होते हैं। साथ ही राजनैतिक जागरूकता का आभास भी होता है।

'आवारा मसीहा' उपन्यास संवाद योजना की दृष्टि से श्रेष्ठ कृति है। रचना में प्रयुक्त संवादों में वैयक्तिक क्षमता, सामाजिक दिग्दर्शन, भविष्योन्मुखी युगबोध, व्यवहारशीलता तथा प्रत्युत्पन्नमति के दर्शन होते हैं। स्वाभाविकता, यथार्थता, संवेदनात्मक प्रस्तुति के साथ वाक्चातुर्य भी देखने को मिलता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

13. संवाद को अन्य किस नाम से जाना जाता है?

14. संवाद की दो विशेषताएँ लिखिए।

शरत चंद्र चट्टोपाध्याय : 'आवारा मसीहा' उपन्यास में चरित्र–चित्रण का सफल प्रयोग देखने को मिलता है। उपन्यास में प्रयुक्त पात्र अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण सर्वग्राह्य ही नहीं मर्मस्पर्शी भी हैं। सहृदय पाठक के मन मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव छोड़ने में सक्षम हैं। पात्रों में गतिशीलता के दर्शन होते हैं। भले ही किसी पात्र का वैयक्तिक जीवन पाठक को प्रिय न लगे, किंतु उसकी व्यवहारशीलता, सेवाभाव, समाज के प्रति चिंतन की शक्ति के फलस्वरूप पाठक उसे विस्मृत नहीं कर पाता। आवारा मसीहा उपन्यास का मुख्य पात्र शरत चंद्र है। रचना का केंद्र बिंदु, कथा का आधार शरत चंद्र पर आश्रित है। उपन्यास प्रारंभ से अंत तक शरत के जीवन का वृतांत प्रस्तुत करता है। उपन्यास का नामकरण यही सिद्ध करता है कि शरत चंद्र ही रचना का प्रमुख पात्र है। नायक प्रधान रचना में नायक के जीवन की झांकी न दिखाई दे तो नामकरण की सार्थकता निषिद्ध हो जाती है। शरत के जीवन चरित्र का निर्माण जिन परिस्थितियों के द्वारा हुआ उनकी उपेक्षा करने से शरत के जीवन की संपूर्ण झांकी दिखाई नहीं दे सकती। शरत के व्यक्तित्त्व निर्माण समाज, परिवार, जाति, विशृंखलित सामाजिक संरचना तथा देशधर्म के दिग्दर्शन अनायास हो जाते हैं। शरत के जीवन में आर्थिक विपन्नता, गहन अध्ययन की प्रवृत्ति, सौंदर्य प्रेम, दृढ़साहस, सेवा का भाव, दायित्व बोध, स्वदेश प्रेम, अनुभव, सहानुभूति, मानवतावादी भावना, नटखट प्रवृत्ति, व्यवस्था के प्रति आक्रोश, भविष्योन्मुखी जीवन बोध, व्यवहारिकता, कला प्रेम, यायावर प्रवृत्ति, मानवीय करुणा एवं समन्वय की भावना आदि गुणों को देखा जा सकता है। उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर शरत चंद्र चट्टोपाध्याय की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन अपेक्षित है।

शरत चंद्र चट्टोपाध्याय का जीवन कष्टों, संघर्षों की खुली किताब है। इन्हीं अभावों से शरत ने धैर्य तथा दृढ़ इच्छा शक्ति को पैतृक स्वरूप में ग्रहण किया। पिता की आर्थिक विपन्नता के फलस्वरूप शरत को ननिहाल में बचपन बिताना पड़ा। ननिहाल में मिलने वाली उपेक्षाओं से शरत ने निर्भीकता को जीवनपर्यंत के लिए गांठ में बांध लिया। अभावों ने शरत के जीवन को वह प्रौढ़ता प्रदान की कि रवींद्रनाथ टैगोर भी शरत के व्यक्तित्व का लोहा मानते थे। शरत के साहित्यिक जीवन का प्रारंभ भीगी पलकों से हुआ। इन्हीं अभावों ने गहन अध्ययन की ओर आकृष्ट किया। चोरी छिपे पिता की पुस्तकों का अध्ययन करने की आदत डाली। अध्ययन की प्रवृत्ति के कारण शरत ने अभिव्यक्ति की कला को आसानी से ग्रहण कर लिया। शरत चंद्र की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन निम्नवत् है–

(क) सौंदर्य प्रेमी – शरत क पैनी दृष्टि ने जहाँ एक ओर समाज की कुरीतियों, विकृतियों, विसंगतियों को खोज निकाला, वहीं प्राकृतिक सौंदर्य की उपेक्षा नहीं कर पाए। शरत की सौंदर्य भावना में भाव, मानव तथा प्राकृतिक सौंदर्य की भावना को देखा जा सकता है। भाव सौंदर्य का प्रमाण उनकी समय–समय पर प्रकाशित रचनाओं के रूप में सामने आता है। मानव–सौंदर्य में उनका रूझान स्त्री सौंदर्य की ओर अधिक था। उनकी दृष्टि ने कुरूपता में भी सौंदर्य को खोज निकाला। शरत की सौंदर्य भावना को उनके जीवन में देखा जा सकता है। सौंदर्य भावना को पिता से विरासत में पाया। पढ़ने के कक्ष को सजाकर रखते। उनकी पुस्तकें बरबस निगाहों को खींच लेतीं। कॉपियों को देखकर उनकी सौंदर्य दृष्टि का अनुमान लगाया जा सकता है। शारीरिक फूर्ति के लिए कभी तैरना न भूलते, कुश्ती लड़कर शारीरिक क्षमता का आभास करा देते। शरत सच्चे अर्थों में सौंदर्य के उपासक थे। शरत के शब्दों में ''जो सौंदर्य है, वही पुरुष है, वही प्रकृति है।'' इसीलिए जो सौंदर्य का उपासक है, वह प्रकृति का भी उपासक है मनोरम और भयानक, प्रकृति के इन दोनों रूपों का, और स्वयं भगवान का भी। क्योंकि सर्वोत्तम सौंदर्य ही तो भगवान है। भागलपुर का सौंदर्य शरत की आंखों से ओझल न हो पाया। सुरेंद्र को अपनी इसी भावना का परिचय देता हुआ शरत कहता है– ''भागलपुर क्या मुझे कम अच्छा लगहा है? घाट के टूटे स्तूप पर से गंगा में कूदने में कितना मजा आता है? उस पार वह जो झाऊ का वन है, उसे क्या भूल सकूंगा। वह मुझे पुकारेगा और मैं चला आऊंगा।''

(ख) दृढ़ साहस : शरत के जीवन में दृढ़ इच्छा शक्ति ने नवीन आभास स्थापित किये। अभावों एवं जुझारू प्रवृत्ति के फलस्वरूप दृढ़ता एवं साहस के गुण उनके व्यक्तित्त्व में स्वतः समा गये। विषमताओं ने उनके दृढ़स्वभाव को उर्वरक पृष्ठभूमि प्रदान की। 'शरत चोर नहीं था। वह रॉबिन हुड के समान दुस्साहसी और परोपकारी था। अर्द्धरात्रि के घनीभूत अंधकार में जब मनुष्य तो क्या कुत्ते भी बाहर निकलने में डरते थे, वह चुपचाप पूर्व निर्दिष्ट बाग में, ताल पर पहुँचकर अपना काम कर लाता था।

मृत्युंजय के साथ विलासी का विवाह कराकर साहसी प्रवृत्ति का परिचय दिया। उनकी मान्यता थी कि तन्मय होकर किया गया साहित्यिक कार्य हिंदू, मुसलमान के कटघरे में बंधा नहीं होता। स्वदेश भावना के फलस्वरूप सरकार एवं समाज द्वारा किये गये आक्षेप को निर्मूल सिद्ध करता है। स्वयं शरत के शब्दों में– मैं और क्या लिखूं? मैं लिखूंगा और सरकार जब्त कर लेगी। पराधीन देश में साहित्य–साधना करने में व्यथा ही मिलती है। सामान्यतया ऑपरेशन का नाम सुनकर फौलादी मन भी भीगी बिल्ली हो जाता है। शरत का जीवन इसके विपरीत था तथा स्वयं डॉक्टर को ऑपरेशन की अनुमति प्रदान करने में साहसी प्रकृति का बोध होता है– 'मैं कोई स्त्री नहीं हूँ, मेज पर मर जाने की भी कोई संभावना नहीं है, और हो तो मैं लिखकर दे सकता हूँ। किसी को बुलाने की जरूरत नहीं है। देश प्रेम का प्रसंग सुनकर विश्वास नहीं होता कि यायावर प्रवृत्ति युक्त मनुष्य ने देश के लिए भीड़ से अलग रहकर अपना रास्ता चुना।

(ग) सेवा की भावना : शरत सेवा की प्रवृत्ति के कारण कभी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। समाज, परिवार की बाधाओं ने उनकी सेवा की भावना को कुंठित न करके सुगमता प्रदान की। प्रतिबंध के बावजूद नीरू की एकांत में जाकर सेवा करता, कभी–कभी अवसर मिलने पर फल लाकर खिला देता। निरीह असहायों की चीख से शरत का मन विचलित हो जाता। प्लेग के फलस्वरूप मृत व्यक्तियों का अंतिम संस्कार करने को उत्सुक रहता। राजू के सान्निध्य में रहकर जिस मानवता तथा करूणा का पाठ शरत ने सीखा उसका जीवन पर्यंत पालन भी किया। बीमार का समाचार सुनकर निस्वार्थ भाव से दवा लेकर दौड़े चले जाते। कुलीन वर्ग भले ही शरत को हेय दृष्टि से देखता हो लेकिन बंगाली समुदाय में सभी की आँख का तारा था। वेश्यालय में जाकर भी सेवाभाव को नहीं छोड़ पाता था। रंगून की प्रसिद्ध नर्तकी की चेचक होने पर सेवा करता है। मृत्योपरांत विधिवत अंतिम संस्कार भी करता है। शरत की सेवा के दायरे में मनुष्यों के साथ पशु, पक्षियों की उपेक्षा नहीं हो पाती थी। बाटू कुत्ते के मरने पर विधिवत नदी तट पर ले लोकर दाह संस्कार करता है। मित्र के पूछने पर शरत का उत्तर– 'मेरे बच्चे की मृत्यु हो गई है।' इस वास्य में सेवा की भावना स्वयं दृष्टिगोचर हो जाती है।

(घ) मानवता का पुजारी : आवारा मसीहा उपन्यास का नायक शरत चंद्र मानवता का पुजारी है। जन्मजात अभावों ने शरत के ह्रदय में प्राणी मात्र के प्रति दर्द का जो भाव पैदा किया वह जीवन पर्यंत तक यथावत रहा। शरत की दृष्टि ने असहाय नारियों में मानवत के दर्शन किये। उनकी मानवतावादी भावना का उपन्यास में स्थान–स्थान पर वर्णन देखने को मिलता है। उनकी दृष्टि में अमीर के साथ गरीबों में भी मनुष्यता के दर्शन होते हैं। अभागे मनुष्यों को स्नेहपूर्वक सुधारने की कोशिश करते। उनका मानना है कि– 'मनुष्यों से किसी भी अवस्था में घृणा नहीं करनी चाहिए।' जो व्यक्ति खराब दिखाई देते हैं उन्हें सुधारने की आवश्यकता है। मेले के अवसर पर गांव वालों का साथ देने में दरोगा की भी खरी खोटी सुनते हैं लेकिन प्रतिकार की भावना का परिचय नहीं देते। जब दरोगा पश्चाताप कर अपनी गलती स्वीकार करता है तो चिट्ठी लिखकर मानवता का परिचय देते हैं। असहयोग आंदोलन के अवसर पर पुरुषों के साथ स्त्रियों की सहभागिता पर बल देकर मानवतावादी भावना को सुदृढ़ आधार प्रदान करते हैं। स्वयं शरत के शब्दों में –'नारी जाति को मैं कभी छोटा करके नहीं देख सका।' हमने नारी को जो मनुष्य नहीं बनने दिया उसका प्रायश्चित स्वराज्य के पहले देश को करना चाहिए। उनका मानना था कि देश की प्रगति व ज्वलंत प्रश्नों का हल नारी की उपेक्षा करके नहीं मिल सकता। शरत की मानवतावादी भावना की सीमा में पशुओं तथा पक्षियों की मनुष्य के समान ही महत्ता थी। एक ओर वर्षा में भीगी बुढ़िया की दिल खोलकर सहायता करते हैं वहीं भेलू के अस्वस्थ होने पर चिंतित हो जाते हैं। कुत्ते के लिए शरत मजूमदार से प्रतिशोध लेने को उत्सुक हो जाते हैं– 'मैं होता तो रिवाल्वर से उसे भी मार देता। तुम डरो मत। यदि वह नालिश करेगा तो पैसा हम देंगे। उसने हमारे लड़कों को मारा है।'

(ङ) स्वदेश प्रेम की भावना से ओत–प्रोत : 'आवारा मसीहा' उपन्यास में सामाजिक व्यवस्था के साथ राजनैतिक घटनाचक्र भी दिखाई देता है। शरत के व्यक्तित्व का विकास राजनैतिक दायित्व बोध की भावना से पूर्ण हुआ है। सैनिक जहाँ अपने प्राणों की आहुति देकर देश के प्रति दायित्व का निर्वाह कर रहे थे वहीं साहित्यिकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा समाज में मनःस्थिति को बदलने एवं चिंतन करने की भावना को पैदा किया। शरत की जब कोई रचना प्रकाशित होकर आती, तो तूफान खड़ा हो जाता। सामान्य पाठक पढ़कर उसकी आलोचना कर अपनी मन की भड़ास निकाल लेता वहीं संवदेनशील व्यक्ति में विचारों की आंधियाँ चलने लगतीं। उचित कर्त्तव्य पालन के लिए अंतर्रात्मा से संलग्न भी हो जाता है। शरत की दृष्टि में – 'स्वतंत्रता शक्तिशाली के लिए, योग्य के लिए ही अच्छी है।' स्वतंत्रता आंदोलन में साहित्यकारों के दायित्व के संबंध में शरत के विचार दायित्व बोध से युक्त हैं– 'राजनीति में योग देना देशवासियों का

कर्त्तव्य है। विशेषकर हमारे देश में वह राजनीतिक आंदोलन देश की मुक्ति का आंदोलन है। इस आंदोलन में साहित्यकारों को सबसे आगे बढ़कर योग देना चाहिए। लोकमत जाग्रत करने का गुरूभार संसार के सभी देशों में साहित्यिकों के ऊपर रहा है।' शरत के इन उद्‌गारों में राजनीतिक परिपक्वता का बोध होता है। शरत की दृष्टि में भेड़–बकरियों की तरह मूक होकर अन्याय सहन करने से श्रेष्ठ है सीने पर गोली खाकर अपने कर्त्तव्य बोध को अवगत कराना। समय–समय पर देश भक्तों की सहायता करते। वह देश की मुक्ति के लिए हिंसा का मार्ग अपनाने वालों को सच्चे मन से प्यार करते थे, इसीलिए उनको गरम दल का समर्थक माना जाता था। उनका विश्वास था कि देश की आजादी आती है तो हमारे द्वारा ही आएगी।

(च) भविष्योन्मुखी दृष्टिबोध : 'अवारा मसीहा' का नायक शरत भविष्योन्मुखी जीवनदृष्टि से ओत–प्रोत है। इसीलिए मानवता का तकाजा मानकर निरीह मनुष्यों को बराबरी का अधिकार दिलाने की चेष्टा करता है। वहीं अस्पृश्य/त्यक्त मनुष्यों की सेवा द्वारा मनुष्य को सोचने पर विवश भी करता है। नारी को पुरुषों के समान अधिकार दिलाकर अपनी भविष्योन्मुखी विचारधारा से अवगत कराता है। साहित्य सृजन द्वारा साहित्यकारों को दायित्वबोध का ज्ञान कराता है। देश की स्वतंत्रता के लिए नारी की महत्ता को स्वीकार करता है। दूषित राजनीति की कटु आलोचना भी करता है। जमींदारी प्रथा के खात्मे के लिए उनकी अंतरात्मा की आवाज भविष्य के बोध का आभास करा देती है। विद्यार्थियों को संबोधित करते समय इसी विचारधारा को पल्लवित करते हैं– 'स्कूल–कॉलेज के छात्रों को पढ़ने की अवस्था में भी देश के काम में योग देने का, देश क स्वाधीनता–पराधीनता के बारे में सोचने–विचारने का अधिकार है।' शरत गांधी के चर्खा आंदोलन में आस्था रखते थे साथ ही भविष्य को दृष्टि में रखकर कल कारखानों की मशीन की भी अनदेखी न कर सके। भाषा, क्षेत्रीयता जैसी ज्वलंत समस्याओं का हल एकता के द्वारा करना सिखाया।

(छ) सहानुभूति एवं व्यावहारिकता : शरत का जीवन संवेदना का पुंज था। सामान्य मनुष्य जिस घृणित कार्य को करने पर हीनता का अनुभव करता है वहीं शरत ने इन्हीं दीन–हीन मनुष्यों में मानवता के दर्शन किये। इसीलिए सगे संबंधी न होने पर भी शवों का दाह संस्कार करते। निस्वार्थ भाव से दवा भी देते। देशबंधु को कर्त्तव्य बोध का ज्ञान कराते समय कहते हैं – 'स्त्री जाति के प्रति जो अन्याय, निष्ठुर सामाजिक अविचार अरसे से चला आ रहा है, उसका प्रतिविधान कीजिए। जमींदारों के अत्याचार से त्रस्त जनता का साथ कभी नहीं छोड़ते। इसीलिए गांव वालों के लिए शरत 'आपुन जन' बन गये थे। दरोगा द्वारा अपमानित होने पर भी बिना प्रतिकार के उसको माफ कर देना सहानुभूति को दर्शाता है। उपेंद्रनाथ और शरत के बीच वार्तालाप में व्यावहारिकता को देखा जा सकता है।

राजू : 'आवारा मसीहा' उपन्यास में शरत को शरत बनाने में जिस व्यक्तित्व का हाथ था उसमें 'राजू' का योगदान अविस्मरणीय रहा है। शरत को अगर बाल्यावस्था में राजू का साथ न मिलता तो उसकी कल्पना को रंगीन उड़ान मिलना संभव नहीं था। पतंग के द्वंद्व युद्ध ने शरत और राजू को एक प्लेटफॉर्म पर लाकर खड़ा कर दिया। साहस और संवदेनशीलता जैसे गुणों का शरत में जन्म राजू की पाठशाला ने प्रदान किय। 'आवारा मसीहा' के सहायक पात्रों में राजू के असाधारण व्यक्तित्व की छाप पाठक के मन मस्तिष्क पर छा जाती है। राजू के व्यक्तित्व में अदम्य साहस, संगीत के प्रति लगाव, आदर्श मित्र, कुशल अभिनेता, परोपकार से युक्त, संवदेनशीलता, कला, प्रेम से युक्त जैसी विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। राजू की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन निम्नवत् है –

(क) साहसी प्रवृत्ति : राजू का व्यक्तित्व साहस व धैर्य की पराकाष्ठा का श्रेष्ठ उदाहरण है। शरत भी राजू के साहसी कार्यों से प्रभावित होकर मित्रता करने को बाध्य होता है। कुएं पर स्त्रियों के साथ अभद्र व्यवहार करने पर राजू में साहसी प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है। व्यक्ति को पानी में डुबोकर माफी मांगने पर बाध्य

करता है। जमींदार द्वारा भारतीयों पर हुए अत्याचार के प्रतिशोध स्वरूप रोज साहब राणे को पीटकर अपनी साहसी प्रवृत्ति का परिचय देता है।

राजू – ' फिर कभी किसी बेकसूर मुसाफिर को मारोगे?

साहबरोज – 'कभी नहीं।'

राजू – 'बोलो, माफ करो!'

साहबरोज – 'माफ करो!'

राजू – 'घर जाओ!'

साहब चुप चाप वहाँ से चला गया। बदली कराकर अन्यत्र चला गया।

(ख) कला प्रिय : राजू की सूक्ष्म दृष्टि ने अभिनय तथा संगीत द्वारा शरत को प्रभावित कर दिया था। शरत से मित्रता का माध्यम संगीत ही था। उसमें एक साथ बांसुरी और वीरता जैसे गुणों का भंडार था। मधुर स्वर में उसका गाना सभी को पसंद आता। हारमोनियम, कलेयरनेट को बजाने में दक्ष था। उसके गुणों को देखकर उसके पूर्व वंशज का अनुमान लगाया जा सकता था। अनेक दुर्गुणों के होने पर भी सभी को प्रिय था। नदी में नाव लेकर सैन करने से आनंदित होता। पतंग के द्वंद्व युद्ध में शरत को सोचने पर विवश करता।

(ग) आदर्श मित्र : राजू में जीवन में अपनी सहृदयता से सभी का मन आकृष्ट करने की अद्‌भुत क्षमता थी। जिससे मित्रता का हाथ बढ़ाता उसके साथ स्वयं को जोखिम में डालकर भी निभाने का प्रयत्न करता। विपत्ति में मुंह मोड़ना उसने नहीं सीखा। फुटबाल के मैदान में शरत की रक्षा करता। शरत को जब साँप काट लेता है तो राजू अपने प्राणों की बाजी लगाकर तूफानी गंगा में नाव लेकर ओझा को बुलाकर अपने मित्र की प्राण रक्षा करता है।

(घ) सेवा भाव : सेवा का भाव राजू के व्यक्तित्व की विशेषता थी। पारिवारिक उपेक्षा के फलस्वरूप राजू को सेवा करने में आनंद की अनुभूति होती। अंकिचन का सच्चा दास तथा दुष्ट मनुष्यों के लिए साक्षात् यमराज के समान व्यवहार करता। दाह–संस्कार करना, विवाह–पूजा के अवसर पर सेवा करने में पटु था। सपेरा उस्ताद तथा अन्नदा दीदी को विपत्ति की घड़ी में हिम्मत बंधाता था।

(ङ) अभिनय की कला में दक्ष : राजू ने व्यवहारशीलता के साथ अभिनय के द्वारा सभी को मोह लिया। गिरिजा और पागलिनी के अभिनय द्वारा यश अर्जित किया। वर्षों बाद भी राजू को दर्शक भूल नहीं पाए।

मोक्षदा : 'आवारा मसीहा' उपन्यास के नारी पात्रों में मोक्षदा का व्यक्तित्व पाठक के मन पर विशिष्ट छाप छोड़ता है। प्रारंभिक मोक्षदा बाद में हिरण्यमयीदेवी के नाम से पाठक के सामने आती है। शरत के व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाली नारी पात्रों में मोक्षदा नाम सर्वोपरि है। बड़ी बहू शरत की सच्ची हितैषी के रूप में मोक्षदा का ही रूप था। मोक्षदा के चरित्र में जिन विशेषताओं का पुंज देखने को मिलता है उसमें समर्पण की भावना, संवेदना से युक्त, लल्लाशील, प्रेरणामयी, व्यावहारिक, विनम्रतायुक्त, सौंदर्यमयी, सेवा भाव से युक्त, आदर्श पत्नी के रूप में अपने गुणों से प्रभावित करती है। उपरोक्त गुणों के आधार पर मोक्षदा का चरित्र चित्रण निम्नवत् है –

(क) समर्पण की भावना : मोक्षदा के व्यक्तित्व में समर्पण की भावना देखने को मिलती है। पिता के बाद शरत के रूप में साथ मिला। शरत की आशाओं पर अपने गुणों के कारण खरी उतरती है। शरत का जीवनपर्यंत

साथ निभाकर अपने जीवन को सफल बनाती है। सिर नीचे झुकाकर अपने मनोभाव को स्पष्ट कर देती है। मोक्षदा की ये खामोशी हृदय का भेद खोल देती है।

(ख) सेवा की भावना : मोक्षदा ने सेवाभाव के द्वारा शरत को बाह्य एवं आंतरिक रूप में आकर्षित कर लिया। बीमारी की अवस्था में शरत की सेवा करके नारीत्व के गुणों से अवगत कराती है। 'अब जी कैसा है?' मोक्षदा के इन विचारों ने शरत के जीवन को बदल दियां शरत रह रहकर सोचने पर विवश होता। माँ के बाद स्नेहमयी वाणी मोक्षदा के रूप में सुनने को मिली। मोक्षदा की सेवा से प्रसन्न होकर शरत यह कहने पर विवश होता है – 'तुमने मेरी बहुत सेवा की। मेरा सारा कष्ट जैसे तुमने ही सहा है। तुम खरे सोने के समान हो।'

(ग) सौंदर्य से युक्त : सौंदर्य की अवधारणा में दो विचारधारयें देखने को मिलती हैं। एक पक्ष सौंदर्य को बाह्य स्वरूप तक सीमित करता है, जबकि दूसरा आंतरिक सौंदर्य की वकालत करता है। मोक्षदा भले ही बाह्य रूप में सौंदर्य युक्त न थी लेकिन अपने नारी गुणों के कारण श्रेष्ठता को प्राप्त थी। शरत के अनुसार– 'अंगों की सुडौलता अद्‌भुत थी। वृष्टि से भीगे फूल–पत्तों जैसा लावण्य था, और स्नेहमयी भी वह कम न थी। वह अत्यंत सरल और अशिक्षित पर धर्मशीलता, पतिव्रता सेवामयी थी।

(घ) आदर्श पत्नी : मोक्षदा ने हिरण्यमयीदेवी के रूप में शरत का साथ कंधे से कंधा मिलाकर दिया। शरत के खाने–पीने की व्यवस्था रखती। मोक्षदा की सेवा के कारण ही शरत आवारा से मसीहा बन गया। शरत प्रेमासक्त होकर मोक्षदा को **'कल्याणियांशु'** कहकर संबोधित करते थे। डॉक्टर के पास जाते समय शरत के चरण स्पर्श करना नहीं भूलती– 'जब तक चरणोद्‌क न लूंगी खाना नहीं खाऊंगी' यह थी मोक्षदा की शरत के प्रति समर्पण की भावना। मोक्षदा के रूप में भारतीय नारी की झांकी देखने को मिलती है। जो पति को परमेश्वर मानती है। शरत को अगर मोक्षदा के रूप में भारतीय नारी का साथ न मिलता तो आवारापन में गंभीरता के गुण नहीं आते। शरत और मोक्षदा का विवाह भले ही अग्नि साक्षी मानकर न किया गया, समाज के ठेकेदारों ने मान्यता प्रदान न की, लेकिन जीवन संगिनी के रूप में मोक्षदा आदर्श पत्नी की भूमिका निभाती है।

(ङ) व्यावहारिकता से युक्त : मोक्षदा ने व्यवहार की पाठशाला में शिक्षा ग्रहण की। उसकी प्रतिष्ठा उनके वैयक्तिक जीवन में भी देखने को मिली। सामाजिक अवरोध एवं धार्मिक मान्यताओं के अपवाद स्वरूप हिरण्यमयीदेवी कभी शरत के संबंधियों में न गई, लेकिन द्वार पर आये प्रत्येक आगंतुक का हृदय से स्वागत करना नहीं भूलती थी। घर गृहस्थी की मीठी–मीठी बातें करती उनके प्यार की सीमा नहीं थी। घर पर उनका एकछत्र शासन था।

3.7 भाषा शैली : भाषा भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती है। भाषा जितनी सार्थक, व्यावहारिक एवं जनसामान्य की होगी वह रचना उतनी ही सर्वग्राह्य एवं प्रभावोत्पादक होगी। सहृदय के मन मस्तिक को आक्रांत करने में भाषा महती भूमिका निभाती है। मुहावरे, लोकोक्तियाँ, भाषा को सजीवता प्रदान करती हैं। लेखक की लेखिनी से निकला या लाया गया शब्द अर्थ गंभीरता के साथ लेखक के वैयक्तिक परिवेश को चरितार्थ करता है। बंगाली समाज में हिंदी में रचित कृति हृदय को आल्हादित करने के साथ युगीन समाज की झांकी प्रस्तुत करने में सक्षम है। आवारा मसीहा उपन्यास की भाषा में हिंदी के अतिरिक्त बांग्ला भाषा के भी दर्शन होते हैं। विष्णु प्रभाकर ने जनसामान्य की भाषा पर बल दिया– अलंकृत वाक्य का बोझ कितना पीड़ादायक है यह बात सिर्फ पाठक ही समझा सकते हैं। यह कथन जन सामान्य की भाषा की ओर संकेत करता है। लेखक ने भावानुकूल भाषा का प्रयोग कर सजगता का परिचय दिया है। भाषा के पचड़े में न पड़कर अभिव्यक्ति की सुगमता पर बल देकर भाषा को सुचारू ही नहीं बनाया, अपितु सहजता के गुणों से भी सुसज्जित किया। विष्णु प्रभाकर ने 'अंतर्स्पशीय भाषा' अपनाने

पर बल दिया।

मातृभाषा प्रेम : विष्णु प्रभाकर ने अभिव्यक्ति के लिए मातृभाषा को प्रमुखता प्रदान की, लेकिन परिस्थिति अनुकूल अंग्रेजी या अन्य भाषा के प्रयोग से भी परहेज नहीं किया। उनका मानना था कि अंग्रेजी भाषा को पढ़ने से अपनी संस्कृति एवं सभ्यता की भी रक्षा होनी चाहिए। युगीन सामाजिक एवं राजनैतिक घटना चक्र के लिए विदेशी भाषा पढ़ने में पीछे नहीं हटना चाहिए। स्वयं विष्णु प्रभाकर के शब्दों में – लेकिन मुझसे यह बर्दाश्त नहीं होगा कि हिंदुस्तान का एक भी आदमी मातृभाषा को भूल जाए, उसकी हंसी उड़ाए, या उसे यह भी लगे कि वह अपने अच्छे से अच्छे विचार अपनी भाषा में नहीं लिख सकता। स्वयं शरतचंद्र ने अंग्रेजी भाषा में चिट्ठी पत्री के लिए प्रयास नहीं किया। अपने तरुण मामाओं में बांगला भाषा और साहित्य के प्रति अनुराग की भावना पैदा की।

संस्कृतनिष्ठ भाषा की झलक विप्रदास रचना में देखने को मिलती है, जो शरत ने अपने मामा पर लिखी थी। संस्कृत के प्रति अनुराग के मूल में मामा की दिनचर्या परिलक्षित होती है। बांग्ला भाषा के प्रति समर्पण का उदाहरण आवारा मसीहा है। शरत ने वर्तमान की प्रस्तुति, समानाधिकार एवं देश समाज के ज्वलंत प्रश्नों तथा विश्व प्रेम की प्रस्तुति के लिए बांग्ला भाषा को प्रमुखता प्रदान कर अपनी मातृभाषा के प्रति समर्पण को स्पष्ट किया है। शरत और उपेंद्र बाबू के मध्य वार्तालाप में व्यावहारिकता का गुण भाषा को सजीवता प्रदान करता है। व्यावहारिक भाषा का उदाहरण देखा जा सकता है –

शरत बाबू – 'कहाँ जाते हो?'

उपेंद्रनाथ – 'अपने घर जाता हूँ।'

शरत बाबू – 'बहुत दूर से आए हो। बहुत दूर जाना है। आखिर चाय नाश्ता लेकर जाओ।'

भाषा को मर्मस्पर्शी बनाने के लिए रस अलंकारों का प्रयोग करना वांछनीय समझा जाता है। 'आवारा मसीहा' उपन्यास में कथात्मक भाषा का स्वरूप भी देखने को मिलता है। भावात्मक भाषा को उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है – चारों ओर फैले हुए धान के खेत, प्रहरी के समान खड़े हुए केले और खजूर के पेड़ और पूरंपार भरी हुई नदी। आवारा मसीहा उपन्यास में आम भाषा के साथ शुद्ध साहित्यिक भाषा के दर्शन भी होते हैं। उदाहरण देखा जा सकता है –'रचनाओं की लोकप्रियता, कथा में नाटकीय तथ्यों की प्रधानता, पारिवारिक वातावरण और पात्रों में आत्मीयता, सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार यथार्थवादी अंतर्दृष्टि, प्रसाद गुण, पांजल, सरल, अंतर्स्पर्शीय भाषा कितने सारे गुण उस शक्ति का आधार थे। 'आवारा मसीहा' में बांग्ला भाषा के दर्शन स्थान–स्थान पर होते हैं। उदाहरण –

बंदर बांदर,

छिड़लो कोन चादर।

बांदर रूपी रूपी,

परेछिस केमन टूपी।

बांदर बांदर केन

खेएछिस फेन।

उपन्यास में बांग्ला भाषा में गानों का प्रयोग करके भाषा के सहृदयता प्रदान की गई। उदाहरण के रूप में –

अमि दुदिन आसिनि, दुदिन, आमिनि मुदिलि आंखि गोकुले मधु फूरा गेल, आंधार आजि कुंजवन।

भाषा को अनुभव की क्षमता प्रदान करने के लिए मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया गया है। उपन्यास में प्रयुक्त मुहावरों में हिंदी के दर्शन होते हैं। उपन्यास में प्रयुक्त मुहावरों से युगीन समाज में मनुष्यों की प्रत्युत्पन्नमति का बोध होता है। नौ दो ग्यारह होना, यह मुंह और मसूर की दाल, सांप मरे न लाठी टूटे, भैंस के आगे बीन बजाय, भैंस खड़ी पगुराय।

शैली – 'आवारा मसीहा' उपन्यास की शैलियों में सहजता, सरलता, प्रभावोत्पादकता एवं सजीवता के दर्शन होते हैं। व्यावहारिकता, संक्षिप्तता से शैली के साथ भाषा को सर्वग्राह्यता प्रदान की है। शैली के रूप निम्नवत् हैं –

संवाद शैली – संवाद शैली में वक्ता एवं श्रोता की प्रत्युत्पन्नमति की झलक दिखाई देती है। संवाद शैली का उदाहरण देखा जा सकता है –

मामा – 'तू कहाँ चला गया था रे?'

शरत – 'मैं गोदाम में था।'

मामा – 'क्या खाता था?'

शरत – 'वही जो तुम खाते थे।'

मामा – 'कौन देता था?'

शरत – 'छोटी नानी।'

इस शैली में हृदय की सरलता को देखा जा सकता है।

व्यावहारिक शैली – 'आवारा मसीहा' उपन्यास में विष्णु प्रभाकर ने पात्रों के द्वारा व्यवहार को स्थान–स्थान पर प्रस्तुत किया है। शरत घर आने वालों का खुले हृदय से स्वागत करते हैं। मीठा उपलब्ध न होने पर बताशे देना न भूलते।

रवींद्रनाथ – 'शरत तुहारे हाथ में यह पैकेट कैसा है?'

शरत – 'जी ऐसे ही एक चीज है।'

रवींद्र – 'क्या चीज है? कोई पुस्तक है?'

शरत – 'जी हाँ।'

भावात्मक शैली – आवारा मसीहा को संवेदनाओं का भंडार कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। उपन्यास में नारी की दयनीय स्थिति, देश की दुर्दशा, उपेक्षित वर्ग की मर्मवेदना में भावात्मक शैली के दर्शन होते हैं। शरत को संवेदना का जामा पहनाने में भावात्मक शैली ने खाद का कार्य किया है। स्वयं शरत का जीवन दया का पात्र था, लेकिन उसके व्यक्तित्व में स्वाभिमान की भावना से संवेदनात्मक पक्ष की ओर मित्रों, पाठकों, सगे संबंधियों का ध्यान नहीं पहुँच पाता था। नारियों की स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करते हैं। ''स्त्री जाति के प्रति जो अन्याय, निष्ठुर सामाजिक व्यवहार अरसे से चला आ रहा है, उसका प्रतिविधान कीजिए।'' जमींदारों, कारिंदों के शोषण से त्रस्त जनता का समर्थन करते हैं। पीड़ित व्यक्तियों की सहायता भी करते थे। भेलू कुत्ते की मौत पर शरत की मनोदशा में भावात्मक शैली के दर्शन मिलते हैं– 'मेरा चौबीस घंटे का साथी नहीं रहा। जीवन में कितनु दुःख कष्ट पाये हैं, उनको भेलू ने बहुत बार तुच्छ कर दिया। दुःख के दिनों में उसके सहारे मेरा समय सुख से कट गया।'

भावों तथा संवेदना के लिए निश्चित व्यक्ति, परिवेश, घटना अपेक्षित नहीं होती। जन्मजात प्रवृत्तिगत गुणों से, निष्पक्ष भाव संवदेना के द्वारा ही अभिव्यक्त होते हैं। संस्कृत से युक्त लचीली व प्रवाहमयी भाषा उन्हें रवींद्रनाथ

से विरासत में मिली। शरत ने भाषा को सजहता, व्यापकता एवं सरलता से पूर्ण कर प्रभाव युक्त बनाया।

'अपनी प्रगति जांचिए'

15. मोक्षदा का अन्य नाम क्या था?

16. शरत के मित्र का नाम क्या था?

17. विष्णु प्रभाकर ने किस प्रकार की भाषा पर बल दिया है?

18. 'आवारा मसीहा' में किन शैलियों का प्रयोग हुआ है?'

19. शरत को कौन सी उपाधि प्रदान की गई है?

20. शरत की तुलना किससे की गई है?

21. शरत का संबंध किस दल से था?

22. स्वतंत्रता संग्राम में शरत के घनिष्ठ मित्र कौन थे?

23. शरत के भावात्मक पक्ष का उद्‌घाटन करने वाली रचना कौन सी है?'

3.8 सारांश :

आवारा मसीहा उपन्यास एक जीवनी परक रचना है। रोचकता, तटस्थता एवं वास्तविकता के गुणों से युक्त आवारा मसीहा समाज का प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है। शरत चंद्र का जीवन भले ही महानता की परिधि में नहीं आता हो, लेकिन उनके द्वारा किये गए कार्यों से जीवनी की विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। आवारा मसीहा उपन्यास मानवीय भावों, संवेदनाओं का पिटारा कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। युगीन परिदृश्य, सामाजिक घटनाक्रम, राजनैतिक झांकी, आर्थिक विपन्नता का जीता–जागता चित्रण आवारा मसीहा उपन्यास की मूल संवेदना है। आवारा मसीहा संवाद की सभी विशेषताओं को चरितार्थ करता है। चरित्रोद्‌घाटन की दृष्टि से आवारा मसीहा के पात्र अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण सर्वग्राह्य ही नहीं मर्मस्पर्शी भी हैं। इस प्रकार आवारा मसीहा मानवतावादी दृष्टिकोण से एक संवेदनशील उपन्यास की श्रेणी में आता है।

3.9 मुख्य शब्दावली :

आतुर – व्याकुल

प्रमाण – साक्ष्य

खिताब – पुरस्कार

कैफियत – स्थिति/दशा

दहल – हिलना

गर्त – धूल

अन्विति – मेल, एक भाव

कृत्रिम – बनावटी

अमिट – न मिटने वाला

माछ – मछली

सौगंध – कसम

3.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. शरत की लेखनी का सान्निध्य पाकर नारियों में स्वाभिमान की भावना पैदा हुई।
2. अभया के द्वारा आधुनिक नारी की कल्पना की गयी।
3. शरत सामाजिक दुष्परिणामों के लिये परिस्थतियों को जिम्मेदार ठहराता है।
4. आवारा मसीहा जीवनी परक उपन्यास है।
5. आवारा मसीहा में शरत का जीवन प्रतिबिंबित है।
6. आवारा मसीहा में तीन परिच्छेद हैं।
7. मानवीय संवेदना का सफल चित्रण करना शरत के जीवन का लक्ष्य रहा है।
8. बचपन में शरत के प्रति उदार भाव रखने वाली शरत की दादी थी।
9. नारी चेतना, मानवतावादी भावना को व्यक्त करना ही शरत के लेखन का मूल उद्देश्य था।
10. आवारा मसीहा का केंद्रीय पात्र शरतचंद्र है।
11. आवारा मसीहा में मानवतावादी, देशप्रेम आदि भावनाओं का समावेश है।
12. नवीनता के लिए आग्रह करने वाला पात्र शरतचंद्र है।
13. संवाद को कथोपकथन के नाम से भी जाना जाता है।
14. संक्षिप्तता, यथार्थता संवादों की विशेषताएँ हैं।
15. मोक्षदा का अन्य नाम हिरण्यादेवी था।
16. शरत के मित्र का नाम राजू था।
17. विष्णु प्रभाकर ने जनसामान्य की भाषा पर बल दिया है।
18. आवारा मसीहा में व्यवहारिक, व्यंग्यात्मक, भावात्मक आदि शैलियों का प्रयोग हुआ है।
19. शरत को 'रंगून रत्न' की उपाधि प्रदान की गई।
20. शरत की तुलना रवींद्र नाथ टैगोर से की गई।
21. शरत का संबंध गरम दल से था।
22. 'देवदास' शरत के भावात्मक पक्ष का उद्घाटन करने वाली रचना है।

3.11 अभ्यास हेतु प्रश्न :

लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. आवारा मसीहा के नामकरण की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
2. आवारा मसीहा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।
3. मोक्षदा की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
4. सहायक पात्र के रूप में राजू का चरित्र–चित्रण कीजिए।
5. आवारा मसीहा की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. आवारा मसीहा जीवनी प्रधान रचना है सिद्ध कीजिए।
2. आवारा मसीहा की संवाद योजना पर प्रकाश डालिए।
3. शरत के जीवन की विशेषताएँ लिखिए।

3.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

1. महीप सिंह, विष्णु प्रभाकर – व्यक्ति और साहित्य, अभिव्यंजना प्रकाशन।
2. परमानंद श्रीवास्तव, उपन्यास का पुनर्जन्म, वीणा प्रकाशन।
3. मधुरेश, हिंदी उपन्यास का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

इकाई 4

निबंध निकष

इकाई की रूपरेखा

4.0 परिचय

4.1 इकाई के उद्देश्य

4.2 साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है (श्री बालकृष्ण भट्ट)

- 4.2.1 व्याख्या खंड
- 4.2.3 विशेषताएँ
- 4.2.3 भाषा शैली
- 4.2.4 निष्कर्ष

4.3 कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता (आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी)

- 4.3.1 व्याख्या खंड
- 4.3.2 विशेषताएँ
- 4.3.3 भाषा शैली
- 4.3.4 निष्कर्ष

4.4 मजदूरी और प्रेम (सरदार पूर्ण सिंह)

- 4.4.1 व्याख्या खंड
- 4.4.2 विशेषताएँ
- 4.4.3 भाषा शैली
- 4.4.4 निष्कर्ष

4.5 कविता क्या है? (आचार्य रामचंद्र शुक्ल)

- 4.5.1 व्याख्या खंड
- 4.5.2 विशेषताएँ

4.5.3 भाषा शैली

4.5.4 निष्कर्ष

4.6 नाखून क्यों बढ़ते हैं? (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी)

4.6.1 व्याख्या खंड

4.6.2 विशेषताएँ

4.6.3 भाषा शैली

4.6.4 निष्कर्ष

4.7 पगडंडियों का जमाना (श्री हरिशंकर परसाई)

4.7.1 व्याख्या खंड

4.7.2 विशेषताएँ

4.7.3 भाषा शैली

4.7.4 निष्कर्ष

4.8 अस्ति की पुकार हिमालय (श्री विद्यानिवास मिश्र)

4.8.1 व्याख्या खंड

4.8.2 विशेषताएँ

4.8.3 भाषा शैली

4.8.4 निष्कर्ष

4.9 सारांश

4.10 मुख्य शब्दावली

4.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

4.12 अभ्यास हेतु प्रश्न

4.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0 परिचय :

'निबंध' आधुनिक गद्य साहित्य की विधा है। निबंध शब्द दो शब्दों 'नि' + 'बंध' से मिलकर बना है। नि उपसर्ग तथा बंध घञ प्रत्यय का योग है जिसका अर्थ है – विशेष रूप से बांधना या संगठन। निबंध लेखन पाश्चात्य साहित्य में हिंदी में ग्रहण किया गया है। बेकन को प्रथम निबंधकार होने का गौरव प्राप्त है। ॲलैक्जैंडर स्मिथ ने निबंध को रचनाकार की मनःस्थिति पर निर्भर माना है, साथ ही गीतिकाव्य के निकट भी माना है। बालकृष्ण भट्ट ने ऍसे, अथवा आर्टिकिल दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। शुक्ल जी ने निबंध को गद्य की कसौट कहा है तथा श्यामसुंदर दास ने व्यक्तिगत प्रयास कहा है।

प्रत्येक विधा अपने पीछे इतिहास के स्रोत छोड़ जाती है। जिससे उसका शैशव बालपन, यौवन को जाना जाता है। निबंध द्वारा मनुष्य विशेष पर अपनी मौलिकता का परिचय देकर शब्दों द्वारा भावनाओं को व्यक्त करता है। कसावट, वर्णन कौशल द्वारा वर्णित विषय प्रभावोत्पादक बन जाता है। भारतेंदु युग से प्रारंभ विधा वर्तमान तक अजस्र धारा से चली आ रही है। शुक्ल, भट्ट जी ने अपनी वैचारिक चेतना द्वारा इसे सुदृढ़ आधार प्रदान किया।

भारतेंदु युग को अनेक विधाओं की पृष्ठभूमि कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि गद्य साहित्य के विविध रूप उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, संस्मरण, जीवनी, रिपोर्ताज, डायरी तथा निबंध इसी युग से प्रस्फुटित होकर अपनी प्रौढ़ता को प्राप्त हुए। आधुनिक काल को गद्य काल भी कहा जाता है। हिंदी निबंध का स्वरूप अनेक रूपों में सामने आया –

(क) भावनात्मक

(ख) सैद्धांतिक

(ग) समीक्षापरक

(घ) विचारात्मक

(ङ) वर्णनात्मक

(च) विवरणात्मक

(छ) व्यंग्यात्मक

(ज) ललित

(झ) सांस्कृतिक

हिंदी निबंध की विकास यात्रा को हम चार भागों में बांट सकते हैं –

(क) भारतेंदु युग 1857 से 1900 ई. तक – अन्य विधाओं की भांति हिंदी निबंध भी भारतेंदु युग से प्रारंभ हुए। इसमें विविध विषयों का समावेश हो गया। इतिहास, धर्म, दर्शन, यात्रा, व्यंग्य विनोद, समाज, राजनीतिक सभी विषयों को भारतेंदु जी ने अपनी लेखनी से गौरवान्वित किया। भारतेंदु मैग्जीन, कवि वचन सुधा, बाला बोधिनी पत्रिकाओं में समय–समय पर निबंध निकालते थे। स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन, अंग्रेज स्रोत, हिंदी कुरान शरीफ आदि प्रसिद्ध निबंध हैं। भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है? शीर्षक से निबंध बलिया के ददरी मेले में दिया था।

भारतेंदु युग के निबंधकारों में बालकृष्ण भट्ट का नाम उल्लेखनीय है। वे युगीन साहित्य एवं समाज से परिचित थे। उन्होंने विचारात्मक निबंध में आक्रोश, खीझ, झुंझलाहट को व्यक्त किया है। देश–भक्ति के लिए उनके विचारात्मक निबंध प्रसिद्ध हैं। ब्रिटिश टैक्स अत्याचार, कृषकों की दीन दशा, कूटनीति का निर्ममता के साथ विरोध भी किया। विधवा विवाह के समर्थक थे, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, छुआछूत के विरोधी थे। प्रेम और भक्ति, तर्क और विश्वास, ज्ञान और भक्ति, विश्वास, प्रीति, अभिलाषा आदि मनोवैज्ञानिक निबंध लिखे। वसु, प्रकाश, धूमकेतु, पेड़, सीसा आदि निबंध वैज्ञानिकता के सूचक हैं।

प्रताप नारायण मिश्र का योगदान आत्म व्यंजना परक निबंधों में था। भौं, पेट, दांत, मुच्छ तथा ट, द, त वर्णमाला के आधार पर सुंदर उक्तियों का निर्माण भी किया। रिश्वत, बेकारी, बालशिक्षा, गोरक्षा, विलायत यात्रा आदि विषयों पर निबंध लिखकर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। सुधारात्मक प्रवृत्ति के समर्थक थे। स्वभाव में मस्ती एवं चुलबुलापन था। नंद दुलारे वाजपेयी ने इस त्रिवेणी की प्रशंसा करते हुए लिखा कि निबंध के वास्तविक अर्थ में

भारतेंदु ने इनका शिलान्यास किया, भट्ट ने नागरिक बनाया, तथा प्रताप नारायण मिश्र ने उसी की सीमा को विस्तृत कर व्यापक बनाया।

सांकेतिक, व्यंजक, शालीन निबंधों के लिए बालमुकुंद गुप्त का नाम लिया जाता है। शिव शंभू का चिट्ठा निबंध में लॉर्ड कर्जन के समय का चित्रण है। पं0 बदरी नारायण चौधरी प्रेमधन के निबंध सर्वस्व के द्वितीय भाग में संकलित हैं।

(ख) द्विवेदी युग 1900 से 1920 तक – सरस्वती के संपादन से द्विवेदी युग का सूत्रपात होता है। इस युग के निबंधों में परिनिष्ठिता, परिमार्जिता, सामर्थ तथा गतिशीलता के दर्शन होते हैं। उर्दू तथा मराठी का प्रभाव भी दिखाई देता है। द्विवेदी जी को भाषा के परिमार्जन हेतु याद किया जाता है। गंभीर विषयों पर भी निबंध लिखे गए। वर्णनात्मकता, आत्मकथात्मकता, भावात्मकता के दर्शन होते हैं। दंडदेव का आत्मनिवदेन, महाकवि माघ का प्रभात वर्णन, हैजे की कर्त्तव्यपरायणता कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता आदि प्रसिद्ध निबंध हैं। अध्यापक पूर्ण सिंह ने कम मात्रा में निबंध लिखे, लेकिन प्रभावपूर्ण लिखे। आचरण की सभ्यता सच्ची वीरता, कन्यादान, मजदूरी और प्रेम इनके निबंध हैं जिसमें इन्होंने श्रम एवं कर्म की महत्ता प्रतिपादित की है।

श्यामसुंदर दास के निबंधों में विद्वता की झलक दिखाई देती है। समाज और साहित्य का विवेचन, भारतीय साहित्य की विशेषताएँ आदि निबंध साहित्य की अमूल धरोहर है।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी के निबंधों में प्रगतिशीलता, मनोविनोद, प्रवृत्ति तथा चुलबुलापन भी दिखाई देता है। कछुआ धर्म, मारेसि मोहि कुठाऊं, शिशु नाग, मूर्तियाँ व पुरानी हिंदी श्रेष्ठ निबंध हैं।

(ग) शुक्ल युग 1920 से 1936 तक – द्विवेदी युग के सर्वाधिक चिंतनशील निबंधकार आचार्य शुक्ल हैं। इन्होंने क्रोध, करुणा, उत्साह, घृणा, ईर्ष्या, लोभ और प्रेम, श्रद्धा और भक्ति आदि भावनात्मक निबंधों का सृजन किया। बौद्धिकता के दर्शन, कविता क्या है? इनके काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था, रहस्यवाद आदि निबंध सिद्धांत को व्यक्त करते हैं। भारतेंदु हरिशचंद्र, तुलसी का भक्तिमार्ग, मानस की धर्म भूमि व्यवहारिक निबंध हैं। गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, शांति प्रिय द्विवेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, माखन लाल चतुर्वेदी, विहोगी हरि आदि प्रसिद्ध निबंधकार हैं।

शुक्लोत्तर युग 1936 – शुक्लोत्तर युग के निबंधकारों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', विद्यानिवास मिश्र का योगदान अविस्मरणीय रहा है। नंद दुलारे वाजपेयी, जैनेन्द्र कुमार, यशपाल विद्यानिवास मिश्र, जोशी, अज्ञेय आदि निबंधकारों का योगदान सराहनीय रहा है। द्विवेदी के व्यक्तित्व में कालिदास की सौंदर्य चेतना, बाणभट्ट का समास गुंफन, रवींद्र की मानवीय दृष्टि का मस्त मौलापन दिखाई देता है। लालित्य का लावन्य देखने को मिलता है। नाखून क्यों बढ़ते हैं?, मेरी जन्म भूमि, एक कुत्ता और एक मैना, वसंत आ गया है, वसंत सिरीज के फूल आदि प्रसिद्ध निबंध हैं।

नारी संबंधी निबंधों के लिए महादेवी वर्मा के निबंध श्रेष्ठता के सूचक हैं। पीड़ितों, शोषितों के प्रति अगाध निष्ठा है। अनुभूति एवं विवेचन का चित्रण है। शृंखला की कड़ियाँ उनका श्रेष्ठ निबंध है। समीक्षात्मक निबंधों में डॉ0 रामविलास शर्मा का नाम आता है। साहित्य, संस्कृति, कला, विनोद, इतिहास, परंपरा का विवेचन किया गया है। विद्यानिवास मिश्र, प्रभाकर माचवे, कुबेर नाथ राय, हरिशंकर परसाई, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के निबंध पाठकों का ज्ञानवर्द्धन करते हैं।

'निबंध निकाय' के अंतर्गत विभिन्न निबंधकारों के निबंधों की व्याख्या की गई है। प्रथम निबंध 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा लिखा गया है। इस निबंध में दर्शाया गया है कि किस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण होता है। प्रत्येक साहित्य को उस युग की परिस्थितियाँ प्रभावित करती हैं। उन्होंने माना है कि युगीन मूल्यों में भी परिवर्तन होने लगता है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहता। रामायण और महाभारत काल

में पाई जाने वाली नैतिकता की भिन्नता का भी उन्होंने वर्णन किया है। द्वितीय निबंध आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' है। इस निबंध में द्विवेदी जी ने उर्मिला के प्रति कवियों की उपेक्षादृष्टि को रेखांकित किया है तथा अपनी आत्मीयता व सहानुभूति को प्रदर्शित किया है। तीसरा निबंध सरदार पूर्ण सिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' है, इसके अंतर्गत श्रम की महत्ता व किसान की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। निबंधकार श्रम की उपयोगिता पर बल देते हुए जहाँ एक ओर मानव निर्मित वस्तुओं व कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देते हैं वहीं दूसरी ओर मशीनीकरण के दुष्परिणामों का भी उल्लेख करते हैं। इन निबंधों से अलग निबंध 'कविता क्या है?' है। आचार्य रामचंद्र शुक्त द्वारा रचित इस निबंध में कविता को परिभाषित करते हुए उसके प्रभाव का वर्णन किया गया है। शुक्ल जी का मानना है कि कविता एक ऐसा माध्यम है जो मानव के हृदय को रसात्मकता में पहुँचा देती है। मानव सांसारिक बंधनों के साथ स्वयं के राग द्वेष से भी दूर हो जाता है तथा वैयक्तिकता सार्वभौमिकता में बदल जाती है। इस कड़ी का एक अन्य निबंध आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखू क्यों बढ़ते हैं?' में मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों व आदिमानव व वर्तमान मानव का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। उन्होंने मानव की पाशवित प्रवृत्ति को दूर करने के लिए अपने चिंतन से अवगत कराया है। एक अन्य निबंध 'पगडंडियों का जमाना' निबंधकार हरिशंकर परसाई की रचना है। इस निबंध में परिसाई जी ने मनुष्य के द्वारा सत्य के मार्ग पर चलते समय आने वाली बाधाओं व परीक्षाओं का जिक्र किया है। इस निबंध में समाज में बदलते मानदंडों का भी उल्लेख है। निबंधों की इस शृंखला की आखिरी कड़ी के रूप में निबंध 'अस्ति की पुकार हिमालय' है जिसके रचियता भारतीय संस्कृति के पोषक विद्या निवास मिश्र हैं। इस निबंध में हिमालय की महिमा का बखान किया गया है। हिमालय के धार्मिक व पौराणिक स्वरूप के साथ ही उसे राष्ट्रीय एकता का प्रतीक व भारतीय संस्कृति का रक्षक भी माना गया है। इन निबंधों के द्वारा हिंदी साहित्य के विभिन्न पहलुओं का परिचय प्राप्त होता है।

41 इकाई के उद्देश्य :

पाठ्यक्रम की इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझने योग्य होंगे –

'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास' नामक निबंध के अंतर्गत युगीन परिस्थितियों के साहित्य पर प्रभाव को;

'कवियों की उर्मिला विषयक' उदासीनता के अंतर्गत कवियों की उर्मिला के प्रति उपेक्षा भाव को;

'मजदूरी और प्रेम' निबंध के माध्यम से श्रम की महत्ता को;

'कविता क्या है?' निबंध के द्वारा मानव मन पर पड़ने वाले कविता के प्रभाव को;

'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' के अंतर्गत आदिमानव व वर्तमान मानव के तुलनात्मक अध्ययन को;

'पगडंडियों का जमाना' नामक निबंध के माध्यम से समाज के बदलते मानदंडों को;

अंतिम निबंध 'अस्ति की पुकार हिमालय' के अंतर्गत हिमालय की महत्ता को।

4.2 साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है (श्री बालकृष्ण भट्ट)

बालकृष्ण भट्ट जी भारतेन्दु युग के प्रमुख निबंधकार हैं। शुक्ल जी से पूर्व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को चित्रित करने वाले प्रथम निबंधकार हैं। भाषा के माध्यम से भावों तथा विचारों की सफल प्रस्तुति की जाती है। भाषा में विविध भाषाओं के शब्दों के प्रयोग से हिंदुस्तानी भाषा को प्रमुखता मिलती है। सहृदय व्यक्ति शब्दों में भावों को पिरोकर

जन सामान्य की सुप्त भावनाओं को जगाने का प्रयास करता है। भट्ट जी ने इस निबंध के द्वारा साहित्य के विविध रूपों, प्रमुख ग्रंथों, वेदों, उपनिषद, पुराण, भाषा जैसे विविध प्रसंगों को भाषा द्वारा ही अभिव्यक्ति प्रदान की है। भाषा में कसावट तथा सरलता से काव्य की प्रसिद्धि के स्वर मुखरित होते हैं।

4.2.1 व्याख्या खंड :

प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है। जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिलुप्त रहती है वे सब उसके भाव उस समय के साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकते हैं। मनुष्य का मन जब शोक–संकुल, क्रोध से उद्दीप्त या किसी प्रकार की चिंता से बेचिंता रहता है तब उसकी मुखच्छति तमसाच्छन्न, उदासीन और मलिन रहती है, उस समय उसके कंठ से जो ध्वनि निकलती है वह भी या तो फुटही ढोल समान, बेसुरी बेताल, बेलय या करुणापूर्ण, गद्‌गद् या विकृत स्वर–संयुक्त होती है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यांश भारतेंदु युग निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में लेखक साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध युगीन संदर्भ में उद्‌घाटित करता है।

व्याख्या : समाज में घटित होने वाली घटनाएँ देश काल, वातावरण के सजीव चित्रण की झांकी युगीन साहित्य की मौलिकता द्वारा दर्शाती हैं। समाज एवं साहित्य की पारस्परिक आत्मनिर्भरता वातावरण की प्रस्तुति को मुखरित करती है। समसामाजिक घटनाक्रम की यथार्थ प्रस्तुति साहित्यकार की सजगता का बोध कराती है। समाज की उन्नति, अवनति, हर्ष–विषाद की सफल प्रस्तुति ही युगीन रचना की प्रसिद्धि का कारण बनती है। यथा समाज तथा साहित्य की उक्ति चरितार्थ होती है। यदि मानव की मनःस्थिति सुखद वातावरण का परिचय कराती है तो साहित्य भी सुखद आत्मानुभूति के दर्शन कराने के लिए बाध्य होगा। मनुष्य के स्वभाव का वर्णन करते हुए बालकृष्ण भट्ट जी कहते हैं कि समाज के साथ साहित्य में परिवर्तन युग की मांग का प्रतीक है। मानव का मन जब वेदना, पीड़ा से त्रस्त होता है, क्रोध का प्रतिकार करता है, चिंतित रहता है तो उसकी मुखाकृति में इन भावों की झलक सहज ही देखी जा सकती है वह मुंह लटकाए, उदासी को धारण किये रहता है। ऐसी स्थिति में उसके मुंह से निकलने वाली वाणी में कर्कशता का आना स्वाभाविक है यह गला फाड़–फाड़कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। उसके कंठ से निकलने वाली आवाज जो कभी श्रोताओं के कानों में अमृत करती थी वही फूटे ढोल के समान बेसुरी सी लगती है। उसमें किसी स्वर की तलाश करना मूर्खता होती है। न मधुरता का अंश होता है, न संगीत का प्रभाव। ऐसी करुणामयी वाणी में भले ही जीवन की सच्चाई का सार छिपा हो, लेकिन विकृति से परे होना असंभव है क्योंकि जाति से ही समाज का अस्तित्व संभव है। समाज से राष्ट्र से विश्व की कल्पना साकार होती है। बिंब प्रतिबिंब की अनिवार्यता ही साहित्य को समाज का दर्पण कहलाने पर बाध्य करती है।

विशेष :

बालकृष्ण भट्ट जी ने साहित्य को जन समूह के हृदय का विकास कहा है।

मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है। वह हालातों के अनुसार अभिव्यक्ति करने पर बाध्य होता है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दों के प्रयोग से भाषा में कसावट का गुण आ गया है।

युगीन यथार्थ की झांकी सार्वकालिक तथ्य को मुखरित करती है।

कथात्मक भाषा की प्रस्तुति है।

चिंता का डर भीमकाय शरीर को शीघ्र ही मौत के मुंह में ढकेल देता है।

कहा भी जाता है कि 'चिंता चिता समान है।'

'फिक्र से फाका भला' उक्ति चिंता के दुष्परिणाम का बोध कराती है।

चिंतित मनुष्य ही भविष्य के प्रति क्रियाशील रहता है।

फूटही ढोल समान उपमा अलंकार है।

सात स्वरों की झंकार रोते व्यक्ति को भी हंसा देती है।

प्रसाद गुण, अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग है।

'मनुष्य के संबंध में इस अनुल्लंघनीय प्रकृति के नियम का अनुसरण प्रत्येक देश का साहित्य भी करता है। जिसमें कभी तो क्रोध पूर्ण भयंकर गर्जन, कभी तो प्रेम का उच्छवास, कभी तो शोक और परितापजनित हृदय–विदारी करुण–निस्वन, कभी तो वीरता गर्व से, बाहुबल के गर्व में भरा हुआ सिंहनाद, कभी तो भक्ति के उन्मेष से चित्त की द्रविता का परिणाम, अक्षुपात आदि अनेक प्रकार के प्राकृतिक भावों का उद्‌गार देखा जा सकता है। इसलिए साहित्य को यदि जनसमूह के चित्त का चित्रपट कहा जा तो न्याय संगत है। किसी देश का इतिहास पढ़ने से केवल बाहरी हाल हम उस देश का जान सकते हैं पर साहित्य के अनुशीलन से कौम के सब समय–समय के आभ्यंतरिक भाव हमें परिस्फुट हो सकते हैं।

संदर्भ : यह अवतरण भारतेंदु युगीन प्रसिद्ध निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में भट्ट जी का मानना है कि मानव व्यवहार युगीन परिस्थितियों पर निर्भर करता है। मानव व्यवहार में परिवर्तन मनःस्थिति का द्योतक है।

व्याख्या : भट्ट जी का मानना है कि मानव व्यवहार को जानने के लिए हम परिस्थितियों की उपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि मनुष्य परिस्थितियों का सेवक है। व्यवहार की भिन्नता प्राकृतिक नियम का अनिवार्य अंग है। जिस प्रकार प्रसन्न व दुःखी स्थिति में मानव की व्यवहार शैली बदल जाती है, ठीक उसी प्रकार देश का साहित्य भी इसी नियम का पालन करता है। साहित्य मानव के उत्थान, पतन, जय पराजय की गाथा का प्रमाण होता है। कभी वह अपने क्रोध से युग को अवगत कराता है तो कभी प्रेम से वशीभूत होकर मानवता का आचरण करने को बाध्य होता है। कभी मानव ही मानव के प्राण लेने पर उतारू हो जाता है तो कभी स्नेहातुर होकर अपनी जान की बाजी लगाकर मानवता को जीवंत रखता है। विषम परिस्थितियों में वही मानव कभी करुणा के भाव व्यक्त करता है तो कभी क्रोध के वशीभूत होकर सिंह के समान गर्जन कर अपने स्वभाव से परिचित करा देता है। कभी असहाय होकर आंसुओं की बारिश में डुबो देता है, कभी सांसारिक हलचल से भयभीत होकर भक्ति के सागर में डुबकी लगाता है। साहित्य का क्षेत्र मानव की भावना पर टिका होता है। इसीलिए साहित्य को मानव के क्रिया कलापों को चित्रित करने वाली चित्रशाला भी कजा जाता है। साहित्य द्वारा हम देश की आंतरिक एवं बाह्य परिस्थितियों से अवगत हो जाते हैं। साहित्य के द्वारा हम स्थान विशेष की जाति, समाज की तस्वीर तथा धार्मिक दशा, प्रचलित रीति रिवाजों को भली–भांति जान सकते हैं।

विशेष :

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है।

मानव स्वभाव का आंकलन युगीन साहित्य के झरोखें से ही हो सकता है।

मनुष्य का द्रवित होना व प्रसन्नता युक्त होकर मानवोचित व्यवहार करना मानवता का द्योतक है।

सच कहा जाए तो यह संसार ही रंग स्थल है, जिसमें समयानुसार मानव क्रियाकलापों द्वारा समाज को अवगत कराता है।

इतिहास का अध्ययन अतीत के ज्ञान के साथ भविष्य को सुधारने के लिए भी किया जाता है।

साहित्य में वह अमोघ शक्ति है जो मनुष्य को विषम परिस्थति में भी आशा का संचार कराती है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

प्रसाद–गुण है

अविधा शब्द शक्ति की छटा दृष्टव्य है।

'उस समय अब के समान राजनैतिक अत्याचार कुछ न था इससे उनका साहित्य राजनीति की कुटिल उक्ति–युक्ति से मलिन नहीं हुआ था। आए हुए आर्यों की नूतन ग्रथित समाज के संस्थापन में सब तरह की अपूर्णता थी। यहीं पर सबका निर्वाह अच्छी तरह होता जाता था। किसी को किसी प्रकार का अस्वास्थ्य न था, आपस में एक दूसरे के साथ अब का सा बनावट का कुटिल बर्ताव न था। इसलिए उस समय के उनके साहित्य वेद, में भी कृत्रिम भक्ति, कृत्रिम सौहार्द, कपट–वृत्ति, बनावट और चुनांचुनीं ने स्थान नहीं पाया। उन आर्यों का धर्म अब के समान गला घोटने वाला न था।

संदर्भ : यह अवतरण भारतेंदु युगीन प्रसिद्ध निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में भट्ट जी ने आर्यों के साहित्य तथा वेदों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहा है –

व्याख्या : लेखक वर्तमान समाज में व्याप्त राजनैतिक अस्थिरता तथा राजनैतिक अत्याचारों से व्यथित होकर आत्म मंथन को विवश है। वर्तमान की, आर्यों के साहित्य एवं वेद से तुलना करते हुए कहते हैं कि समय के साथ मनुष्यों के स्वभाव में भी परिवर्तन आने लगा है। आर्यों के वेद और साहित्य इन कुप्रवृत्तियों से दूर थे। युगीन अत्याचारों से कोसों दूर रहते थे। छल–कपट का नामों निशान न था। वर्तमान की राजनीतिक सोच में गिरावट का दौर जारी है। अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए प्रशंसा का सहारा लेकर आलंकारिक शब्दावली का प्रयोग करने लगे हैं। आगे आने वाली पीढ़ी के लिए भी स्वच्छंदता के अवसर नगण्य ही थे। सुख सुविधाओं से वंचित होने पर भी मनुष्य असद् वृत्तियों से परहेज करता था। अपनी जीवन शैली को स्वाभाविकता के साथ जीता था। पारस्परिक मतभेद नज़र नहीं आते थे। सबका जीवन सुखों से परिपूर्ण था। वर्तमान युग में चारों ओर व्याप्त छल कपट, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या–द्वेष, कृत्रिमता तथा स्वार्थ लिप्सा का बोलबाला है। यह कुत्सित प्रवृत्तियाँ उस समय नहीं थीं। मनुष्यों के बीच आपसी मेल जोल था। स्नेह सागर में विचरण करते थे। इन्हीं गुणों के कारण आर्यों के वेद और साहित्य बनावटीपन से मुक्त थे। व्यर्थ की बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता था। आसुरी प्रवृत्तियाँ दुम दबाकर भागती थीं। आर्यों का धर्म सत्य एवं सदाचार पर आश्रित था, किसी दूसरे को गड्ढे में ढकेलने की प्रवृत्ति नहीं थी। धार्मिक परिवेश, रूढ़ियों, कुरीतियों एवं अंधविश्वासों से मुक्त था। आर्यों के साहित्य में स्थान–स्थान पर भोलापन एवं सरलता के लक्षण विद्यमान रहते थे।

विशेष :

आर्यों के साहित्य एवं वेद की प्रशंसा की गई है।

वर्तमान और अतीत के साहित्य एवं वेद में व्याप्त असमानता का दिग्दर्शन कराया गया है।

पथभ्रष्ट राजनीति की ओर संकेत किया गया है।

वेद चार माने जाते हैं –

(क) ऋग्वेद, (ख) यजुर्वेद, (ग) सामवेद, (घ) अथर्ववेद।

अतीत के अध्ययन द्वारा हम वर्तमान को सुधारने एवं भविष्य को संभालने का कार्य करते हैं।

लेखक पथभ्रष्ट समाज के प्रति चिंतित है।

मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

संस्कृनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया है।

अविधा शब्द शक्ति प्रयोग में लाई गई है।

प्रसाद गुण की छटा दृष्टव्य है।

'रामायण के समय से महाभारत के समय के लोगों के हृदयगत भाव में कितना अंतर हो गया था कि रामायण में दो प्रतिद्वंद्वी भाई इस बात के लिए विवाद कर रहे थे कि यह समस्त राज्य और सिंहासन हमारा नहीं है यह सब तुम्हारे हाथ में रहे, अंत में रामचंद्र ने भरत को विवाद से पराभूत कर समस्त साम्राज्य उनके हस्तगत कर आप आनंद–निर्भर चित्त हो सस्त्रीक वनवासी हो गये। वहीं महाभारत में दो भाई इस बात के लिए कलह करने पर संबद्ध हुए कि जितने में सुई का अग्रभाग ढक जाए इतनी पृथ्वी भी बिना युद्ध के हम न देंगे।

संदर्भ : यह अवतरण भारतेंदु युगीन प्रसिद्ध निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में भट्ट जी का मानना है कि समय के साथ युगीन मूल्यों में भी परिवर्तन होने लगता है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहता। रामायण और महाभारत काल में पाई जाने वाली नैतिकता की भिन्नता का वर्णन करते हुए भट्ट जी कहते हैं –

व्याख्या : समाज और साहित्य की बदलती प्रवृत्ति के साथ मानव के स्वभाव व भावों में भी परिवर्तन होने लगत है। मनुष्य का दृष्टिकोण समय–सीमा को लांघता युगानुरूप बदलता रहता है। भट्टट जी ने इस विचार को रामायण ओर महाभारत के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। रामायण युग सर्वश्रेष्ठ युग था। मानवीय मूल्यों, नैतिकता, सदाचार का बोलबाला था। समय बदला, परिस्थितियाँ बदलीं, मनुष्यों का नजरिया भी बदल गया। महाभारत में वही गुण अवगुण में परिवर्तित हो गए। समाज में ईर्ष्या, द्वेष, छल–कपट का साम्राज्य स्थापित हो गया। स्वार्थ लिप्सा की भावना पनपने लगी। रामायण में जो दो भाई आपस में इस बात के लिए झगड़ रहे थे कि यह राज्य मेरा नहीं है तुम्हारा है। राज्य के प्रति अनिच्छा का भाव था। आपस में कितना स्नेह था। एक दूसरे को राजा बनाने को तैयार थे। अंततः भगवान राम ने तर्क के द्वारा भरत को इसके लिए राजी कर लिया। अपनी पत्नी सीता के साथ वन को चले गए। मन में किसी प्रकार का भेदभाव न था। रामाया का काल समाज में प्रगति को प्राप्त था। मानवीय भावना चरमोत्कर्ष पर थी। धर्म का बोलबाला था, नैतिकता का साम्राज्य था, एक दूसरे का सम्मान था। महाभारत काल में सभी विपरीत हो गया। गुणों की छाप अवगुणों में बदल गई। मूल्य, संस्कृतियों, सम्मान तथा नैतिकता में बदलाव आ

गया था। पारस्परिक स्पर्धा, द्वेष, प्रतिकार की भावना पनपने लगी थी। महाभारत में दो भाई इस बात के लिए संघर्ष कर रहे थे कि राज्य मेरा है मैं ही वास्तविक स्वामी हूँ भाइयों के बीच प्रेम घृणा में बदल गई थी। एक इंच जमीन न देने की प्रतिज्ञा करने लगे। युद्ध के लिए एक दूसरे को आमंत्रित करने लगे।

विशेष :

भट्ट जी ने रामायण तथा महाभारत काल की विशेषताओं का उल्लेख किया है।

समाज में मूल्यों का पतन युगीन परिप्रेक्ष्य को दर्शाता है।

मानवीय मूल्यों की रक्षा, नैतिकता का समर्थन, त्याग की भावना के कारण ही रामायण का काल स्वर्मिण काल कहलाता है, जबकि मूल्यों के विघटन, कुप्रथाओं का बोलबाला, तथा नैतिकता के पतन के कारण महाभारत का युग 'युद्ध का युग' कहा जाता है।

समाज तथा समय के बदलने पर मूल्यों में परिवर्तन आना स्वाभाविक है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग है।

रागात्मक भाषा की छटा दृष्टव्य है।

भगवान राम ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर 'रघुकुल रीति' का पालन किया।

'जिनकी कविता के प्रधान नायक श्री रामचंद्र आर्य जाति के प्राण, दया के अमृत सागर, गांभीर्य और पौरुष की मानो सजीव प्रतिकृति थे। वे प्रीति और समभाव से महानीच जाति के चांडाल तक को गले लगाते थे। उन्होंने लंकेश्वर से प्रबल प्रतिद्वंद्वी शत्रु को भ कभी तृण के बराबर नहीं समझा। स्वर्ण मंडित सिंहासन और तपोवन में पर्ण कुटी उन्हें एक सी सुखकारी हुई। उनके स्मितापूर्णाभिभाषित्व और उनकी बोलचाल की मुग्ध माधुरी पर मोहित हो दंडकारण्य की असभ्य जाति ने भी अपने को उनका दास माना।

संदर्भ : यह गद्यावतण प्रसिद्ध निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के ह्रदय का विकास है' नामक निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : उक्त पंक्तियों में भट्ट जी ने रामचंद्र जी की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है –

व्याख्या : भट्ट जी का मानना है कि आदिकवि की अमर रचना 'वाल्मीकि रामायण' के प्रमुख नायक भगवान रामचंद्र गुणों के भंडार हैं। समस्त आर्य जाति उन पर गर्व करती है। वे आर्य जाति के सिरमौर हैं। दया के सागर हैं अर्थात् सहनशील हैं। पौरुष की साक्षात् मूर्ति हैं। उनका उदार ह्रदय सभी के लिए खुला है। उनकी दृष्टि में सभी समान हैं। वे निम्न से निम्न जाति को भी गले लगा लेते हैं, उन्हें ऐसा करने में संकोच का अनुभव नहीं होता। भेदभाव की काली छाया उनके निकट नहीं फटकती। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण लंका का राजा रावण, या उससे भी अधिक प्रबल शत्रु को भी अपने से नीचे नहीं माना। वे समभाव से रहते हैं। राज सिंहासन का लोभ भी उन्हें आकर्षित नहीं कर सका। उन्हें घास की झोपड़ी और राज सिंहासन में कोई अंतर नहीं लगा। वे सुख और दुःख में समभाव रहने वाले हैं। उनके मधुर होठों पर मंद मुस्कान चिर परिचित लगती है। उन्होंने अपनी मधुर वाणी से असभ्य तथा बर्बर कही जाने वाली जाति को भी अपना बना लिया। अर्थात् स्वयं उनके अनुचर हो गये।

विशेष :

भट्ट जी ने भगवान राम के गुणों का वर्णन किया है।

मानवोचित गुणों के फलस्वरूप ही लंका का विभीषण उनका सेवक बन जाता है तथा रामचंद्र जी ने विभीषण को भी गले लगाकर उदार हृदय का परिचय दिया।

तुलसीदास जी ने रामचंद्र की विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार किया है –

'ऐसो को उदार जग मांही

बिनु, सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिस कोऊ नाही।'

मधुर वाणी का प्रभाव अमिट होता है। कबीर दास जी का मानना है कि –

'मधुर वचन हैं औषधि

कटुक वचन है तीर।'

मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया गया है।

प्रसाद–गुण है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली की छटा है।

'शत्रु–संहार और जिन कार्य साधन निमित व्यास ने महाभारत में जो–जो उपदेश दिए हैं और राजनीति की काठ–ब्योंत जैसी–जैसी दिखाई है उसे सुनकर विस्मार्क सरीखे इस समय के राजनीति के मर्म में कुशल पुरुषों की अकिल भी चरने चली जाती होगी। इससे निश्चय होता है कि प्रभुत्व और स्वार्थ साधन तथा प्रवंचता परवश भारत वर्ष उस समय कहाँ तक उदार भाव संवेदना आदि उत्तम गुणों से विमुख हो गया था।

संदर्भ : प्रस्तुत निबंध प्राख्यात निबंधकार, भारतेंदु के अनन्य सहयोगी बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' नामक निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में महाभारत युग की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए भट्ट जी कहते हैं–

व्याख्या : भट्ट जी कहते हैं कि आदि कवि ने वाल्मीकि रामायण में जिन अवगुणों से राम को विमुक्त रखा था वही महाभारत काल में आकर गुणों की परिधि में आ गए। महाभारत में वेदव्यास जी ने शत्रुओं एवं राक्षसों का संहार करने के लिए जिन नियमों का अतिक्रमण दिखाया है अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति हेतु जिन कार्यों, हथकंडों, साधनों व युक्तियों को अपनाया है तथा स्वार्थ पूर्ति हेतु राजनीतिक अधिकारों का दुरुपयोग किया है वे सभी कार्य समाज के विपरीत हैं। समाज द्वारा त्यक्त हैं। इनको पढ़कर प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ विस्मार्क भी शर्म से सिर झुका लेता है। दांतों–तले उंगली दबाने पर विवश है कि भारत जिन घृणित कार्यों से रामायण काल में कोसों दूर था। तब प्रेम, उदारता, संवेदना आदि सद्‌गुणों का साम्राज्य था, महाभारत युग उनसे विमुख हो गया। लेखक को लगता है कि महाभारत कालीन भारत इन दुर्गुणों के कारण अपयश का भागीदार बन गया है।

विशेष :

लेखक ने महाभारत कालीन छल प्रपंच का वर्णन किया है।

युद्ध की विभीषिका का मूल कारण दुर्गुणों की वृद्धि होना था।

दूषित राजनीति का पर्दाफास किया है।

अविधा शब्द–शक्ति है।

प्रसाद गुण की छटा है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

रामायण और महाभारत ग्रंथ दो युग के सार्थक दस्तावेज हैं।

'हमारी एक हिंदू जाति के असंख्य टुकड़े होते–होते यहाँ तक खंड हुए कि अब नये–नये धर्म और मत–प्रवर्तक होते ही जाते हैं। ये टुकड़े जितना वैष्णवों में अधिक हैं इतना शैव शाक्तों में नहीं और आपस में एक–दूसरे का दूसरे के साथ मेल और जान–पाना जितना कम इनमें है इतना औरों में नहीं। राम के उपासक कृष्ण से लड़ते हैं, कृष्ण के उपासक राम उपासकों से इत्तिफाक नहीं रखते।

संदर्भ : यह गद्यांश भारतेंदु मंडल के निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' नामक निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में भट्ट जी ने हिंदू जाति का विभाजन होने की स्थितियों के कारणों का वर्णन करते हुए लिखा है –

व्याख्या : भारतीय संस्कृति की विशेषता 'अनेकता में एकता' का भाव भी पारस्परिक मतभेदों के फलस्वरूप विशृंखलित हो चला है। हिंदू समाज में अनेक मत प्रचलित हो गए हैं। नए धर्मों एवं मत प्रवर्त्तकों के होने से भोली जनता असमंजस्य में पड़ गई है। एक दूसरे की टांग–खिंचाई से एकता का भाव समाप्त होने लगा है। वैष्णव धर्म इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। शैव और शाक्तों में वर्गीकरण की प्रक्रिया कुछ सीमा तक कम दिखाई देती है। आपसी उठना–बैठना, खाना–पीना भी नहीं हो पाता। वैचारिक समानता का प्रश्न ही नहीं उठता। राम उपासक कृष्ण उपासकों से मतभेद रखते हैं वहीं कृष्ण उपासक भी राम उपासकों से कोई रागात्मक संबंध नहीं रखते।

विशेष :

भट्ट जी ने हिंदू समाज के विघटन का उल्लेख किया है।

धर्म प्रर्वतकों की विचारधारानुसार ही देश में विघटन की स्थिति पैदा हो गई है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

उर्दू शब्द इत्तिफाक प्रयुक्त हुआ है।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग है।

4.2.2 विशेषताएँ :

बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है निबंध साहित्य और समाज के अन्योन्याश्रित संबंध को निरूपित करता है। समाज में घटित घटना चक्र ही सहृदय लेखकों को अभिव्यक्ति के लिए बाध्य करता है। इस निबंध की विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

(क) अभिव्यक्ति का स्रोत : साहित्य मनुष्य के परिवेश–वातावरण की यथार्थ अभिव्यक्ति होता है। मनुष्य का हृदय जब दुख से ग्रस्त होता है तो उसकी संवेदना भावों द्वारा व्यक्त होकर साहित्य विधा के रूप में सामने आती है। मनुष्य का क्रोध, चिंता की लकीरें उसकी मुखाकृति को व्यंजित करती हैं। उसमें वेदना होती है। आत्ममंथन की प्रेरण होती है। जब मनुष्य का मन आनंदित होता है तो उसके मुख पर प्रसन्नता के चिन्ह् दिखाई देते हैं, होठों पर कमल सी ताजगी मंद–मंद मुस्कान उसके आंतरिक भावों को मुखरित करती है। मुख पर कमल सी ताजगी, नेत्रों में चमक तथा कंठ ध्वनि कोकिल के समान सभी में आनंद का संचार करती है।

(ख) आर्यों की वेद उपनिषद के रूप में साहित्यिक झांकी – वेदों को आर्यों की साहित्यिक अभिरूचि का माध्यम माना गया था। प्रारंभिक अभिव्यक्ति में भोलापन, उदार भावना, निष्कपट व्यवहार से साहित्य महिमा मंडित थी। वेदों में वर्णित महापुरुषों का जीवन समाज के आंतरिक वर्ण भेद तथा उन्नति ह्रास के झगड़े से दूर था। प्राकृतिक छानबीन में समय बर्बाद नहीं करते थे। न वासनान्ध होकर कविता कामिनी के इर्द–गिर्द चक्कर लगाते थे। प्रकृति की भोर बेला का पान करते थे। राजनैतिक छलप्रपंच से दूर रहते थे। साहित्य में राजनीति की झलक नहीं मिलती थी। कृत्रिमता न थी। पारस्परिक मेल जोल था।

प्राकृतिक पदार्थों का अनुशीलन करते हुए जो भाव पैदा हुए वही उपनिषद के नाम से जाने गए। एकता को स्थापित करने, मानवीय गुणों की रक्ष करने, सामाजिक नियमों का पालन करने हेतु स्मृतिपरक साहित्य का अस्तित्व सामने आया। विभिन्न विषयों का सूत्रपात हुआ, दर्शन ग्रंथों की रचना की गई, भाषा में सरलता का गुण समाहित हो गया।

(ग) रामायण, महाभारत ग्रंथों में वर्णित साहित्य – रामायण साहित्य का प्रमाण था। भारतीय सभ्यता का यौवन था। पुरुष प्रधान समाज का वर्चस्व था। निस्पृहता का भाव था, त्याग की भावना थी, पारस्परिक स्नेह था, सम्मान था। वहीं महाभारत में विपरीत होने लगा, छल प्रपंच का बोलबाला होने लगा, कूट–युद्धों का स्वरूप सामने आने लगा। राज्य लिप्सा बढ़ने लगी थी, त्याग की भावना समाप्त हो गई। भूमि विवाद का कारण बनी, फल विनाश के रूप सामने आया। रामायण के राम दया के सागर हैं, सहृदयशील हैं, प्रीति और समभाव को गले लगाते हैं। समय के बदलने से रामायण क विशेषताएँ महाभारत में अवगुण में बदल गई।

(घ) बौद्ध ग्रंथों का निर्माण – रामायण महाभारत के बाद बौद्ध युग प्रधान हो गया। साहित्य में भी बदलाव आने लगा। वेदों तथा ब्राह्मण गुणों की आलोचना की जाने लगी। संस्कृत के स्थान पर प्राकृत भाषा सर्वोपरि हो गई। नंद तथा चंद्रगुप्त का समय इसका स्वर्ण युग था। श्रेष्ठ साहित्य को इनाम भी दिया जाता था।

(ङ) पुराण के रूप में साहित्य– बौद्ध युग के बाद पुराणों, स्मृतियों के रूप में साहित्य देखने को मिला। जातिगत विषमता पुराणों की ही देन थी। शुद्ध सात्विकी धर्म को प्रमुखता दी जाने लगी। अनेक देवी देवताओं का अस्तित्व सामने आया। तत्रंमंत्र प्रधान होने लगा था। शैव, शाक्त, वैष्णव धर्म सामने आने लगे थे। राम और कृष्ण के उपासक भी आपस में लड़ने झगड़ने लगे।

(च) भाषाओं का स्वरूप – प्राकृत के बाद समाज में खड़ी बोली, अवधी, मराठी, पंजाबी, बंगाली, गुजराती आदि भाषाओं को बोला जाने लगा। पद्मावत और पृथ्वीराज रासो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ दो भाषाओं के प्रबल प्रमाण हैं। भोजपुरी, बुंदेली भाषा भी बोली जाने लगी। कबीर, सूर, तुलसी जैसे महान साहित्यकारों से पाठक वर्ग अवगत होने लगा था।

(छ) आलोचना का स्वरूप – छिद्रान्वेषण की प्रकृति मानव प्रवृत्ति का द्योतक है। आलोचना का सूत्रपात हो चुका था। 'उर्दू' को उसका खामियाजा भी उठाना पड़ा। अपनी भाषा को श्रेष्ठ साबित करने के लिए कुचक्रों की बुनियाद भी पड़ गई।

4.2.3 भाषा शैली :

भाषा पर भट्ट जी का पूर्णाधिकार था। हिंदी के साथ संयुक्त भाषा का चित्रांकन सरलता का द्योतक है। उन्होंने खड़ी बोली को जन सामान्य तक सर्वग्राह्य बनो के लिए प्रयत्न किया। भाषा के विविध स्वरूपों में काव्यात्मक, वर्णनात्मक वर्णन भाषा द्वारा ही प्रभावी बने हैं। भाषा में जीवंतता, व्यावहारिकता का प्रभाव है। भाषा में पूर्वी व अवधी भाषा का प्रभाव परिलक्षित होता है। भाषा में तद्भव शब्दों की प्रधानता है। भाषा सहज सरल, सुबोध एवं बोधगम्य है। संस्कृत सूक्तियों का प्रयोग भी मिलता है। यथा –

'सूच्यग्रं, नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशवः।' भिन्न रूचिहि लोकः अश्वत्थामा हतः नरों वा कुजरो वा।

काव्यात्मक भाषा का उदाहरण देखा जा सकता है –

'मनुष्य का मन तब शोक–संकुल, क्रोध से उद्दीप्त, या किसी प्रकार की चिंता से दोचिता रहता है जब उसकी मुखच्छवि मतसाच्छन्न, उदासीन और मलिन रहती है। उस समय उसके कंठ से जो ध्वनि निकलती है वह भी या तो फुटही ढोल समान बेसुरी, बेताल, बेलय या करुणापूर्ण गद्गद तथा विकृत–स्वर–संयुक्त होती है।' इस निबंध में तत्सम शब्दों का प्रयोग, मुहावरा, उत्प्रेक्षा, उपमा अलंकार की छटा भी दिखाई देती है। मिल्टन, प्रोज, ॲगस्तन पीरिऍड, अंग्रेजी के शब्द भी हैं। जारी, बुनियाद, कौमियत, उमदा, निहायत, अलबत्ता, कौम, फिरके, करतूत जैसे उर्दू, फारसी शब्दों का प्रयोग भी है।

भट्ट के निबंधों में भावात्मक, वर्णनात्मक, अलंकारिक शैली की छटा देखने को मिलती है। अलंकारिक शैली का उदाहरण देखा जा सकता है– 'ज बवह चित्त आनंद की लहरी से उद्वेलित हो नृत्य करता है और सुख की परंपरा में मग्न रहता है उस समय मुख विकसित कमल सा प्रफुल्लित नेत्र मानो हंसता सा, और अंग–अंग चुस्ती और चालाकी से फिरहरी की तरह फाका करता है।' वर्णनात्मक शैली का वर्णन इन शब्दों में मिलता है– 'मनु, अत्रि हारीत, याज्ञवल्क्य ने अपने–अपने नाम संहिता में बनाए; विविध प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक संबंधी विषयों का सूत्रपात किया। इन्हीं के समकालीन गौतम कणाद्, जैमिनि पतंजलि आदि हुए जिन्होंने अपने–अपने सोचने का परिणाम रूप दर्शनशास्त्रों की बुनियाद डाली।'

4.2.4 निष्कर्ष :

भारतेन्दु मण्डल के विचारात्मक निबंधकारों में बालकृष्ण भट्ट का नाम सर्वोपरि है। आपके निबंध विद्वता के द्योतक हैं। 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' निबंध में भट्ट जी की बहुज्ञता प्रदर्शित है। समाज और साहित्य का अन्योन्याश्रित संबंध युगीन परिवेश को व्यक्त करता है। साहित्य का अवलोकन करने के लिए मनुष्य से संबंधित परिदृश्यों का अध्ययन अपेक्षित है। प्रस्तुत निबंध में समाज, वेद, इतिहास, कवि, उपनिषद्, महत्त्वपूर्ण रचनाएँ, बौद्धयुग, भाषा, पुराण, जाति आदि पक्षों का साहित्यिक आइने में बिंब प्रतिबिंब दिखाया है।

साहित्य मनुष्य का अनुगमन तो करता है मार्ग दर्शन भी करता है। मानव हृदय की झांकी साहित्य दर्पण में दिखाई देती है। जब मानव का मन चिंता से व्यथित होता है, तो उसके क्रिया कलापों, अभिव्यक्ति में भी खिन्नता का स्वर मुखरित होता है। सुखद स्थिति में वही मन आनंदित होकर स्वर लहरियों की अभिव्यक्ति करता है। उसके मुख पर तेज झलकता है। वीरता के प्रसंग पर उसकी आंखों से क्रोध दिखाई देता है। इतिहास केवल बाह्य परिवेश को अभिव्यक्त करता है जबकि साहित्य आंतरिक पक्ष को भी मुखरित करता है।

आर्यों की साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम वेद थे। आर्यों की शैशवावस्था में भोलापन टपकता था, व्यवहार में सादगी झलकती थी। वेदों में वर्णित चरित्र मनु और याज्ञवलक्य के समाज की संकीर्णताओं से मुक्त थे। वायु को शक्ति मानकर पूजा को तत्पर रहते थे। वर्तमान धर्म की अपेक्षा उनके धर्म में सहानुभूति थी। आर्यों के ईश्वर संबंधी विचार उपनिषद के नाम से अविहित किये गए। रीतिरिवाज के पालन, पारस्परिक एकता तथा सामाजिक नियमों के

पल्लवन के लिए स्मृतियों को सवीकार किया गया। अनेक संहिताओं का निर्माण किया गया, दर्शन शास्त्रों की नींव पड़ी। भाषा में स्वाभाविकता का गुण सम्मिलित किया गया। लोक और वेद की भाषा का स्वरूप सामने आया।

रामायण और महाभारत साहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथ माने जाते हैं। रामायण काल, संस्कृति सभ्यता का चरमोत्कर्ष था। महाभारत काल में आकर सभ्यता पतन के गर्त में चली गई। रामायण में मनुष्यों के बीच पारस्परिक मैत्री भाव था। त्याग की भावना सर्वोपरि थी। राज्य के प्रति अनिच्छा का भाव था, जबकि महाभारत में भाइयों में मतभेद हो गये, भाई–भाई एक दूसरे के दुश्मन हो गए। राज्य के लिए आपस में झगड़ने लगे। वाल्मीकि तथा व्यास रूस, यूनान, इटली, इंग्लैंड में भी गले का हार बन गए। राम का अलौकिक व्यक्तित्व वाल्मीकि की कल्पना समुद्र का वह स्वर्ण कमल था जिसकी रामराज्य की सुगंध ने सभी को मोह लिया।

महाभारत के बाद साहित्य क्षेत्र में परिवर्तन हुआ तथा बौद्ध साहित्य का वर्चस्व हो गया। वेद और ब्राह्मणों का विरोध होने लगा। संस्कृत के स्थान पर प्राकृत भाषा का प्रचलन होने लगा। चंद्रगुप्त और नंद के समय प्राकृत भाषा का बोलबाला रहा। वे जैनियों के ग्रंथों की भाषा बनी।

बौद्ध युग के पतन के गर्त से पुराण और संहिताओं का स्वरूप सामने आया। वेदों में व्यक्त रीति–रिवाजों का शुद्धिकरण कर शुद्ध सात्विक धर्म का स्वरूप सामने आया। अनेक देवताओं की पूजा की जाने लगी, मांस भक्षण का चलन होने लगा। पुराणों के फलस्वरूप समाज में (हिंदू जाति) में जाति–पाति का भाव पनपने लगा। शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध धर्म के वर्ण बनने लगे। छुआछूत सर्वोपरि था। राम और कृष्ण उपासक आपस में झगड़ते थे।

प्राकृत के पश्चात् विभिन्न भाषाओं का प्रचलन होने लगा था। अवधी भाषा में रामचरित मानस के पहले पद्मावत ने मनुष्यों का ध्यान आकृष्ट किया। साहित्यिक उपलब्धि के लिए पद्मावत अनमोल उपलब्धि है। पृथ्वी राज रासो द्वारा चारण भाषा का अस्तित्त्व सामने आने लगा था। तत्पश्चात् गुजराती, मराठी, बंगाली, पंजाबी, बृजभाषा तथा बुंदेलखंडी भाषाओं को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जाने लगा था। आलोचना द्वारा 'उर्दू' भाषा की प्रगति का मार्ग अवरूद्ध करने की प्रवृत्ति से परहेज करने पर बल दिया।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. साहित्य किसका दर्पण होता है?
2. वेद कितने प्रकार के होते हैं?
3. जन समूह के हृदय के विकास को क्या कहते हैं?
4. त्याग की भावना किस ग्रंथ में मिलती है?
5. आनंद के समय मुख कैसा होता है?
6. मनुष्य के हृदय का आदर्श क्या कहलाता है?
7. दुखी व्यक्ति की आवाज किसके समान होती है?
8. साहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथ कौन–कौन से हैं?

4.3 कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता (आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी)

भारतेंदु युग में प्रस्फुटित निबंध विधा में अनेक विषयों का समावेश महावीर प्रसाद द्विवेदी को सरस्वती पत्रिका में हुआ। द्विवेदी युग प्रवर्त्तक थे। उन्होंने भाषा को परिस्कृत, सुगम व बोधगम्य बनाया। युगीन ज्वलंत विषयों की ओर लेखकों का ध्यान आकृष्ट किया। वर्णित निबंध द्विवेदी युग की उपलब्धि बन गए। साहित्य, राजनीति, भाषा, संस्कृति,

जीवन, भूगोल आदि पर व्यक्त विचारों में मौलिकता झलकने लगी। द्विवेदी जी ने कवियों, लेखकों को नएपन के भावबोध से संपन्न बनाया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने इस निबंध द्वारा रामायण में वर्णित पात्रों में उर्मिल की स्थिति को चित्रित किया है। उर्मिला जो सीता की सहेली थी, दशरथ की पुत्रवधू थी, लक्ष्मण की पत्नी थी, उसका भी पालन–पोषण व शिक्षा–दिक्षा सीता समान ही हुई थी, राम वन गमन के समय उसकी ओर किसी ने आंख उठाकर नहीं देखा। उसके व्यक्तित्त्व पर दो शब्द कहने का साहस नहीं जुटा पाए। द्विवेदी जी ने इसी उर्मिला विषयक प्रसंग में अपनी मौलिकता व कविों के उपेक्षापूर्ण रवैये का वर्णन किया है।

4.3.1 व्याख्या खंड :

'जी में आया तो राई का पर्वत कर दिया; जी में न आया तो हिमालय पर्वत की तरफ भी आंख उठाकर न देखा।' यह उच्छृंखलता, उदासीनता सर्वसाधारण कवियों में तो देखी ही जाती है, आदि कवि तक इससे नहीं बचे। क्रोंच पक्षी के जोड़े में से एक पक्षी का निषाद द्वारा वध किया गया, उसे देख जिस कवि–शिरोमणि का हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया, और मुख से 'मा निषाद' इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी वहीं पर वह दुःखिनी वधू को बिल्कुल ही भूल गया।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावरण द्विवेदी युग के प्रणेता, पुरोधा, खड़ी बोली के समर्थक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में द्विवेदी जी का मानना है कि विषय को महत्त्व प्रदान करना लेखकों, कवियों की मनःस्थिति पर निर्भर करता है। वाल्मीकि, तुलसीदास तथा संस्कृत कवि भवभूति की दृष्टि भी उर्मिला के जीवन को न देख पाई। द्विवेदी जी ने कवियों की उदासीनता का वर्णन करते हुए कहा –

व्याख्या : द्विवेदी जी का मानना है कि कवि आम मनुष्यों से अधिक संवेदनशील एवं चेतना संपन्न होता है। रचना के विषय चयन में उनकी वैयक्तिक रूचि का योगदान होता है। वे चाहें तो तुच्छ से तुच्छ विषय को भी अपनी अभिव्यक्ति, क्षमता एवं संवेदना से पाठकों के लिए सर्वग्राह्य बना सकते हैं। अगर उनका मन विषय के प्रति आकृष्ट नहीं है तो महान विषय की गंभीरता भी पाठक की उदासीनता का कारण बन जाती है। भले ही वह विषय चाहे हिमालय ही क्यों न हो। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण रामायण की उर्मिला है। किसी ने उसे आंख उठाकर नहीं देखा। कवियों का यह समाज विचित्र तथा स्वच्छंद ही रहा। वाल्मीकि जैसा प्रकांड विद्वान भी अपने गुणों का बखान करते हुए द्विवेदी जी कहते हैं कि वह वाल्मीकि जिसने क्रौंच पक्षी के वध को देखकर रामायण रच डाला वह महर्षि भी रामायण की प्रसिद्ध पात्र उर्मिला के विषय में सोचना उचित नहीं समझता। लेखिनी चलाना ध्येय नहीं समझा। विश्वास नहीं होता जो हृदय कभी दया, सेवा, करुणा, ममता जैसे गुणों से युक्त रहता था वही उर्मिला के विषय में बोलना या लिखना उचित नहीं समझता।

विशेष :

लेखक ने कवियों की स्वच्छंद प्रवृत्ति एवं मनोवृत्ति का वर्णन किया है।

उर्मिला के प्रति कवियों की उदासीनता का वर्णन किया है।

वाल्मीकि रामायण के सृजन के मूल में निषाद द्वारा क्रौंच पक्षी के वध से उत्पन्न दया, क्रंदन ही था।

इस संसार में राई को पर्वत और पर्वत को राई करने की क्षमता परमेश्वर की है, लेकिन साहित्य जगत में विषय की महत्ता कवियों की मनःस्थिति पर निर्भर है।

वाल्मीकि को आदि कवि तथा कवियों का शिरोमणि भी कहा जाता है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया है।

उपेक्षित पात्र को महिमा मंडित करके महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मौलिकता का परिचय दिया है।

प्रसाद गुण है।

आंख उठाकर न देखना 'मुहावरा' है।

उसका चरित्र सर्वथा गेय और आलेख्य होने पर भी, कवि ने उसके साथ अन्याय किया। मुने! ठस देवि की इतनी उपेक्षा क्यों? इस सर्वसुख वंचिता के विषय में इतना पक्षपात–कार्पन्य क्यों? क्या इसलिए कि इसका नाम इतना श्रुति सुखद, इतना मंजुल, इतना मधुर है और तापस जनों का शरीर सदैव शीत–ताप सहने के कारण कर्कश होता है –पर नहीं, आपकी गाथा पढ़ने से तो यही जान पड़ता है कि आप कठोरता प्रेमी नहीं।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण द्विवेदी युग के कर्णधर, शिरोमणि, भाषा परिष्कारक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता से अवतरित है।

प्रसंग : इस अवतरण में उर्मिला के प्रति कवियों की उदासीनता, उपेक्षित भावना को मुखरित किया गया है। साथ ही उर्मिला के प्रति अपनी संवेदना, सहानुभूति का भाव भी व्यक्त किया है। यहाँ उर्मिला की विशेषताओं का वर्णन करते हुए द्विवेदी जी ने कहा –

व्याख्या : द्विवेदी जी का मानना है कि पति विहीन नारी की स्थिति जल विहीन सरिता के समान होती है। उसका सौभाग्य तभी सुरक्षित रहता है जब उसका पति परमेश्वर साथ रहता है। उसका मानना है कि जब भरत और शत्रुघ्न अपनी–अपनी पत्नियों के साथ अयोध्या में रहते थे तो वियोग का नामोनिशान न था। भगवान रामचंद्र जी के वनगमन के समय लक्ष्मण भी साथ गये। लक्ष्मण के बिना उर्मिला विरह से तड़पती रही। युगीन सहृदयों, महानुभावों ने केवल राम के जीवन पर दृष्टि को सीमित कर लिया उनकी दृष्टि उपेक्षित, पति प्रेम से वंचित उर्मिला को नहीं देख सकी। रामायण काल में अकेली उर्मिला ही ऐसी स्त्री थी जिसे पति का वियोग सहना पड़ा। उसके चरित्र में कहीं भी स्वच्छंदता एवं उच्छृंखलता देखने को नहीं मिलती। उसका चरित्र प्रशंसनीय होने पर भी वाल्मीकि ने रामायण में कहीं भी स्थान नहीं दिया। द्विवेजी जी आदि कवि वाल्मीकि को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे मुनि! आपने सभी सुखों से कोंसों दूर, देवि के समान पवित्र उर्मिला के साथ पक्षपात का रवैया क्यों अपनाया? क्या आपको उसके नाम से ईर्ष्या थी? क्योंकि उसका नाम इतना सुंदर, मधुर और सुनने में मनोरम, सुखदायी लगने वाला था। आपका संबंध कठोर तपस्या करने वालों से था शायद आप उर्मिला की कोमलता नहीं सह पाए। आपकी हृदयहीनता ने उर्मिला को कोई महत्त्व प्रदान नहीं किया। आप द्वारा रचित वाल्मीकि रामायण को पढ़कर यह दृष्टिकोण पनपता है कि आपका यह ग्रंथ कठोर हृदय नहीं बल्कि करुणा के सागर का भंडार है। अर्थात् एक ओर ग्रंथ की करुणा और दूसरी ओर उर्मिला को महत्त्व न देना दो विरोधाभास से लगते हैं।

विशेष :

आचार्य महावीर प्रसाद जी की उर्मिला के प्रति सहानुभूति, संवेदना का चित्रण व्यक्त है।

कवि वाल्मीकि की त्रुटियों की ओर संकेत किया है।

उर्मिला के प्रति उपेक्षा एवं कीट तिरस्कार की भावना का वर्णन है।

हिंदू धर्मानुसार पत्नी का सुहाग पति ही होता है।

उर्मिला की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली की प्रधानता है।

प्रवाहमयी एवं भावानुकूल भाषा का प्रयोग है।

इतनी घोर दुःखिनी होने पर भी आपने दया न दिखाई। चलते समय लक्ष्मण को उसे एक बार आंख भर देख भी न लेने दिया। जिस दिन राम लक्ष्मण, सीता देवि के साथ, चलने लगे– जिस दिन उन्होंने अपने परित्याग से अयोध्या नगरी को अंधकार में, नगरवासियों को दुःख में, और पिता को मृत्यु मुख में निपतित किया, उस दिन भी आपको उर्मिला याद न आई। उसकी क्या दशा थी, वह कहाँ पड़ी थी, सो कुछ भी आपने न सोचा, इतनी उपेक्षा।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यांश सरस्वती पत्रिका के यशस्वी संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता नामक निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : कवि ह्रदय द्विवेदी जी ने उर्मिला के विषय में कवियों की उदासीनता, उपेक्षा को उजागर किया है। वाल्मीकि के 'रामायण' ग्रंथ को पढ़कर कवि को यह अहसास हुआ कि उर्मिला के दुःख को अनदेखा करना तर्क संगत नहीं हुआ। एक क्रौंच पक्षी का वध जिन्हें रामायण लिखने को प्रेरित कर सकता है तो फिर वह उर्मिला की दीनता, विकलता, उदासी को देखकर क्यों द्रवित नहीं हुए? इसी कथन पर प्रकाश डालते हुए द्विवेदी जी कहते हैं–

व्याख्या : भगवान रामचंद्र जी जब अयोध्या से वन गए तो पति वियोग में उर्मिला तड़पती रही। एक तो पति साथ नहीं है, दूसरी ओर जानकी भी अब उनके साथ नहीं है। जानकी अपने पति के साथ है, आज्ञाकारी लक्ष्मण राम के साथ में है। एकांतवास केवल उर्मिला के हिस्से में आया है। कवियों को संबोधित करते हुए द्विवेदी जी कहते हैं कि हे कवियो! आपकी दृष्टि इस अछूते पक्ष की ओर क्यों नहीं गई। दुःखी स्थिति को देखकर कवियों की आंखें क्यों नहीं खुली। 14 वर्ष के लिए लक्ष्मण जब अयोध्या से वन जा रहे थे तब भी आपने उर्मिला को लक्ष्मण से दूर ही रखा। जब तीनों राम, लक्ष्मण और जानकी अयोध्या को अंधकार में डुबोकर जा रहे थे, समस्त अयोध्यावासी दुःख के सागर में गोते लगा रहे थे। उनके गमन से पिता दशरथ भी दुःख में डूब गए थे। मृत्यु ने अपनी दस्तक देना प्रारंभ कर दिया था। इन प्रसंगों को अनदेखा कर देना आदि कवि वाल्मीकि को शोभा नहीं देता। उन्हें दुःख में डूबी करुणामयी उर्मिला याद नहीं आई। उसकी पति वियोग में क्या स्थिति होगी? यह भी विस्मृत कर दिया। उसका एक मात्र सहारा जानकी थी वह भी रामचंद्र जी के साथ चली गई। पति वियोग में एकांत में आंसू बहाने पर विवश थी। उसकी अवस्था का चित्रण न करके कवियों तथा महर्षि वाल्मीकि ने ह्रदयहीनता का परिचय दिया है। अर्थात् सामान्य कवियों के साथ आदि कवि वाल्मीकि भी 'रामायण' में उर्मिला को स्थान न दे सके। यह उदासीनता एवं उपेक्षा वाल्मीकि के बारे में प्रश्न खड़ा करती है।

विशेष :

उर्मिला के प्रति द्विवेदी जी की सहानुभूति का चित्रण है।

कवियों के स्वच्छंदता एवं उच्छृंखल भाव को व्यक्त किया गया है।

राम के वन जाने से अयोध्या वासियों का दुःखी होना स्वाभाविक है क्योंकि राम भावी अयोध्या नरेश थे तथा

दशरथ का सहारा थे।

अयोध्या वासियों की विरह वेदना का चित्रण है।

करुण रस का चित्रण है।

प्रसाद गुण है।

अविद्या शब्द शक्ति है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

मुहावरेदार भाषा का चित्रण है।

'उसने अपनी आत्मा की अपेक्षा भी अधिक प्यारा अपना पति राम जानकी के लिए दे डाला और यह आत्मोसर्ग उसने तब किया जब उसे ब्याह कर आए कुछ ही समय हुआ था। उसने अपने सांसारिक सुख के सबसे अच्छे अंश से हाथ धो डाला। जो सुख विवाहोत्तर उसे मिलता उसकी बराबरी 14 वर्ष पति–वियोग के बाद का सुख कभी नहीं कर सकता। नवोढ़त्व को प्राप्त होते ही जिस उर्मिला ने, रामचंद्र और जानकी के लिए अपने सुखसर्वस्व पर पानी डाल दिया उसी के लिए अंतर्दर्शी आदि कवि के शब्द भंडार में दरिद्रता।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण युगप्रवर्त्तक, भाषा के प्रचारक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता नामक निबंध से उदृधृत है।

प्रसंग : इस गद्यावतरण में उर्मिला के प्रति कवियों की उपेक्षा दृष्टि को रेखांकित किया गया है तथा साथ ही अपनी आत्मीयता प्रदर्शित करते हुए लेखक कहते हैं –

व्याख्या : पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर भगवान रामचंद्र जब अयोध्या से वन जाने लगे तो उनके साथ आदर्श भ्राता भी अपनी इच्छा को नहीं रोक सके। सेवा भाव के फलस्वरूप जाना श्रेयस्कर समझा। स्वयं की इच्छाओं का दमन करने में इति श्री समझी। समर्पण भाव के फलस्वरूप महानता को प्राप्त हुए। उर्मिला के त्याग के सामने लक्ष्मण की त्याग भावना टिक न सकी। उसने अपने जीवन साथी का वियोग सहा। वह पत्नी (उर्मिला) जो पति (लक्ष्मण) को प्राणों से अधिक चाहती थी वैवाहिक क्षण भी आंखों के सामने आ रहे थे। काल की क्रूरता भी जिसे भयभीत न कर सकी थी, ऐसी उर्मिला ने अपने सभी सुखों का परित्याग कर दिया। अपने आराध्य को भगवान राम के चरणों में समर्पित कर दिया। उर्मिला का त्याग लक्ष्मण की अपेक्षा अधिक मर्मस्पर्शी था। द्विवेदी जी का मानना है कि जो वैवाहिक सुख उर्मिला को मिलना चाहिए था वह न मिल सका। जिन भौतिक सुखों की उत्तराधिकारी थी उनसे वंचित होना ही भाग्य में लिखा था। जो सुख वैवाहिक बेला में मिलना चाहिए था वह क्या 14 वर्ष पश्चात् मिल सकता है? अर्थात् कभी नहीं। द्विवेदी जी आगे कहते हैं कि रतिक्रिया एवं वैवाहिक क्षण के लिए कम उम्र का होना अनिवार्य होता है। आयु बढ़ने के साथ बुद्धि बढ़ने लगती है। महावीर प्रसाद द्विवेदी कवियों की उदासीनता को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि वाल्मीकि का काव्य भी इस दोष से मुक्त न हो सका। उन्होंने भी राम और सीता का बखान करना ही श्रेयस्कर समझा। उर्मिला की विरह वेदना से उनका हृदय नहीं पिघला। जिस उर्मिला ने अपने स्वार्थ को त्यागकर पति के साथ स्वयं न रहकर राम के साथ भेज दिया। स्वयं दुःखों के पहाड़ को झेला। दिनरात आंखों से आँसू बहते रहे, ऐसी त्यागनी उर्मिला की कथा को चित्रित करने में कवियों ने अनिच्छा का भाव प्रदर्शित किया। लगता है कवि के पास शब्दों की दुनिया उजड़ गई हो। दो शब्दों में उर्मिला का बखान करने से लगता है उनका अर्जित यश कम हो जाता।

विशेष :

उर्मिला की चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण है।

त्याग भावना के कारण उर्मिला का महान व्यक्तित्व पाठकों की आंखों का आकर्षण रहा।

वैवाहिक जीवन का सुखद आनंद उठाने के लिए युवा मन के साथ स्वस्थ तन का होना भी आवश्यक है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

प्रसाद गुण है।

मुहावरेदार भाषा की प्रधानता है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

उर्मिला भी पति परायणता धर्म को अच्छी तरह जानती थी। पर उसने वन गमन की हठ, जानबूझकर नहीं की। यदि वह भी साथ जाने को तैयार होती तो लक्ष्मण को अपने अग्रज राम के साथ उसे ले जाने में संकोच होता और उर्मिला के कारण लक्ष्मण अपने उस आराध्य–युग्म की सेवा भी अच्छी तरह न कर सकते। यह बात उसके चरित्र की बहुत बड़ी महत्ता की बोधक है। वाल्मीकि को ऐसी उच्चादर्श रमणी का विस्मरण करते देख किस कविता मर्मज्ञ को आंतरिक वेदना न होगी।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण द्विवेदी युगीन प्रसिद्ध निबंधकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : उर्मिला के प्रति कवियों का उपेक्षा भाव देखकर द्विवेदी जी व्यथित हैं। अपनी संवेदना को व्यक्त करते हैं साथ ही आदि कवि वाल्मीकि की अदूरदर्शिता का भी परिचय देते हैं कि उन्होंने भी उर्मिला के महान व्यक्तित्त्व को अनदेखा कर दिया। द्विवेदी जी उर्मिला के पतिव्रत प्रेम तथा धर्म शिक्षा का बखान करते हुए कहते हैं –

व्याख्या : भगवान रामचंद्र जी ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर तथा लक्ष्मण ने भाई के प्रति अगाध प्रेम के वशीभूत होकर 14 वर्ष के लिए वन जाना सहर्ष स्वीकार कर लिया। स्वयं को सुख सुविधाओं से वंचित कर राम के चरणों में स्वयं को समर्पित कर दिया। पति के समान उर्मिला भी महान गुणों से युक्त थी। जानकी सीता के समान ही उर्मिला की शिक्षा–दीक्षा हुई थी। एक ही परिवार और समान संस्कारों में जीवन व्यतीत हुआ था। उसका भी पति के प्रति प्रेमभाव जानकी से कम नहीं था। उर्मिला ने स्वयं जानबूझकर साथ जाने की जिद न करके महानता का परिचय दिया। उर्मिला ने ऐसा करके एक ओर त्याग का परिचय दिया दूसरी ओर राम के साथ रहने से जो लज्जा, संकोच का भाव था वह भी समाप्त हो जाता। मर्यादा का पालन करना मुश्किल होता। द्विवेदी जी का मानना है कि अगर लक्ष्मण उर्मिला को साथ ले जाते तो भाई की आज्ञा का पालन तथा सेवा भाव का दायित्व बोध के साथ पालन नहीं कर पाते। उर्मिला ने दूरगामी परिणाम को जानकर ही साथ जाने की जिद न की। यह गुण उसके व्यक्तित्व में चार–चाँद लगा देता है। ऐसी महान व्यक्तित्व वाली उर्मिला के विषय में वाल्मीकि ने रामायण में कुछ न लिखकर उचित नहीं किया। सहृदय पाठकों को रामायण पढ़ते समय अगर उर्मिला का वर्णन नहीं मिलेगा तो निराशा ही हाथ लगेगी। आंतरिक वेदना का सामना करना पड़ेगा। कवि को उच्च आदर्शों से युक्त स्त्री के बारे में काव्य में स्थान देकर अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए था।

विशेष :

द्विवेदी जी ने उर्मिला के प्रति पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर श्रद्धा का परिचय दिया है।?

उर्मिला की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया है।

लक्ष्मण की राम, सीता के प्रति श्रद्धा भावना व्यक्त की है।

व्यक्तित्त्व का निर्माण संस्कारों से सुसज्जित होकर ही श्रेष्ठता को प्राप्त होता है।

आदर्श गुणों के कारण ही उर्मिला का चरित्र जानकी सीता की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी ळै।

अविधा शब्द शक्ति है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

'आपके इष्टदेव के अनन्य सेवक 'लक्ष्मण' पर इतनी सख्ती क्यों? अपने कमण्डलु के करुणावारि की एक भी बूंद आपने उर्मिला के लिए न रखी। सारा का सारा कामण्डलु सीता को समर्पित कर दिया। एक ही चौपाई में उर्मिला की दशा का वर्णन कर देते अथवा उसी के मुंह से कुछ कहलाते। पाठक सुन तो लेते कि राम जानकी के वनवास और अपने पति के वियोग के संबंध में क्या–क्या भावनाएँ उसके कोमल हृदय में उत्पन्न हुई थीं।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण हिंदी भाषा के विद्वान, सरस्वती पत्रिक के यशस्वी संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी कृत 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इस गद्यावतरण में भक्तिकाल के राम भक्ति धारा के शिरोमणि महाकवि, तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरित मानस' में उर्मिला को महत्त्व न देने का प्रसंग वर्णित है। आचार्य द्विवेदी जी महाकवि तुलसीदास को संबोधित करते हुए कहते हैं –

व्याख्या : आपने अपने महान ग्रंथ 'रामचरितमानस' में राम–सीता के साथ उर्मिला पति (लक्ष्मण) के वन गमन वृत्तांत को उद्घाटित न करके उपेक्षा का व्यवहार प्रदर्शित किया है। जो लक्ष्मण 14 वर्ष के लिए अयोध्या से राम–सीता के साथ जा रहे थे ऐसी स्थिति में भी उर्मिला से मिलने का अवसर प्रदान नहीं किया। उर्मिला के विषय में उपेक्षा का भाव प्रदर्शित करना उचित नहीं है। तुलसीदास जी ने भावना के कमण्डल से करुणा रूपी जल की एक बूंद भी उर्मिला के लिए अर्पित नहीं की। तुलसीदास के उदात्त हृदय में उर्मिला के लिए करुणा का एक अंश भी नहीं मिला। उनका ध्येय राम–सीता की महिमा का गुणगान करना ही था। द्विवेदी जी कहते हैं कि अधिक वर्णन न करके कम से कम एक ही चौपाई में उर्मिला की वेदना तथा दयनीय स्थिति का वर्णन कर दिया जाता या फिर लक्ष्मण के मुख से एक संवाद ही कहलवा दिया होता। लेकिन तुलसीदास जी ने ऐसा न करके उर्मिला के साथ अन्याय किया। अगर तुलसीदास जी अपने कर्त्तव्य का पालन करते तो उर्मिला के चरित्र वर्णन सुनकर पाठक को संतुष्ठि हो जाती। पाठक भी उसके मुख से सुन लेते कि राम–सीता के वनवास जाने और अपने पति लक्ष्मण के वियोग के संबंध में उसके मन में कौन–कौन से भाव पैदा हुए हैं। तुलसीदास जी ने उर्मिला को जनकपुर से अयोध्या पहुँचाकर मुंह फेर लिया जो उचित नहीं था।

विशेष :

उर्मिला के प्रति संवेदना का भाव व्यक्त किया है।

महाकवि तुलसीदास की उर्मिला विषयक उपेक्षा का वर्णन किया है।

रामचरित मानस महाकाव्य की त्रुटियों की ओर संकेत किया है।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति है।

तत्सम शब्दावली की प्रधानता है।

4.3.2 विशेषताएँ :

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने रामायण के उपेक्षित पात्र उर्मिला विषयक वृतांत को प्रस्तुत कर पाठकों, साहित्य मर्मज्ञों का ध्यान आकर्षित कर दायित्वबोध से अवगत कराया है। राम को सभी पलकों पर बिठाते हैं लेकिन उर्मिला को फूटी आंखों से नहीं देखा। प्रस्तुत निबंध की विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

(क) कवियों के स्वभाव का चित्रण – सामान्य मनुष्यों की भाँति कवियों का स्वभाव उन्मुक्त व स्वच्छंद प्रवृत्ति का होता है। ये मन के राजा होते हैं अगर इच्छा हुई तो राई को पर्वत समान गौरवान्वित कर दिया अगर मन ने नहीं चाहा तो पर्वत को भी आंख उठाकर नहीं देखा। साधारण कवियों की अपेक्षा महान कवि के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। आदि कवि वाल्मीकि भी इससे अछूते न रह सके उन्होंने उर्मिला के बारे में अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त न कर स्वच्छंद प्रवृत्ति का परिचय दे दिया है।

(ख) उर्मिला की विशेषताएँ – उर्मिला नारियोचित गुणों से युक्त थी। वह सीता की आदर्श बहन थी, सहनशीला, उदार व्यक्तित्व वाली, त्यागमयी, दुःखी मनःस्थिति वाली, भाग्य हीना, भविष्य दृष्टा थी।

(ग) कवियों का उपेक्षित व्यवहार – उर्मिला कवियों की उपेक्षा का शिकार बनी। सर्वगुणसंपन्न, आदर्श पत्नी, त्यागमयी होना कवियों की दृष्टि से ओझल हो गया। वाल्मीकि ने राम को महिमा मंडित किया लेकिन उर्मिला को अनदेखा कर हृदयहीनता का परिचय दिया। राम वनगमन के समय उर्मिला भी पति वियोग से तड़प रही थी, किसी ने उसकी पुकार को नहीं सुना। पतिप्रेम और पति पूजा का गुण सीता के साथ उर्मिला में भी विद्यमान था। महान कवि तुलसीदास ने भी अपनी स्नेहमयी दृष्टि से उर्मिला को न देखा। लक्ष्मण को उर्मिला से मिलने का अवसर न देकर पक्षपात किया। लक्ष्मण तो राम के उपासक थे उन्होंने भी पत्नी की ओर ध्यान नहीं दिया।

(घ) भवमूति का योगदान – उर्मिला विषयक वृतांत पर भवमूति ने विहंगम दृष्टि डाली। उन्होंने उर्मिला की विरह यातना को देख सीता द्वारा बहलवाया– लक्ष्मण कौन है? लेकिन लक्ष्मण मुख से कुछ न बोल सके, उन्होंने मौन भाव से उर्मिला के चित्र को हाथ से ढक लिया अर्थात् लक्ष्मण ने अपनी मूक वाणी से सब कुछ कह दिया जिसे पढ़कर पाठक राहत की सांस लेता है।

4.3.3 भाषा शैली :

द्विवेदी के निबंधों में गंभीरता का स्वर मुखरित होता है। वे भाषा के संशोधक हैं। व्याकरण सम्मत भाषा के पक्षपाती हैं। ज्ञानात्मक व साहित्यिक निबंधों में गंभीर व्यक्तित्व की छाप है। व्यवस्थित वाक्य, विराम चिन्हों का प्रयोग, विचारों का क्रमबद्ध विवेचन, उर्दू शब्दों के प्रयोग के हामी हैं, संस्कृतनिष्ठ भाषा के दर्शन होते हैं।

(क) संस्कृत शब्दों की छटा – मा निषाद, अल्पादल्पतरा, श्रुतिसुखद, हा हविधिलसते, दुःखाश्रुमोचन, आत्मसुखोत्सर्ग, नाना पुराणनिगमागसम्यत, बचने दरिद्रताः।

(ख) मुहावरा – आंख उठाकर न देखना, पानी डालना।

(ग) उपमा – छिन्न मूल शाखा की तरह।

(घ) आग से अधिक संताप में अतिशयोक्ति अलंकार है।

(ङ) खुशी, जरूरत, सख्ती, वक्त उर्दू का प्रयोग है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में विचारात्मक, वर्णनात्मक, समीक्षात्मक शैली का प्रयोग देखने को मिलता है।

वर्णनात्मक शैली की छटा दृष्टव्य है– 'कवि स्वभाव से ही उच्छृंखल होते हैं, वे जिस तरफ झुक गए। जी में आया तो राई का पर्वत करा दिया, जी में न आया तो हिमालय की तरफ भी आंख उठाकर न देखा। जिनके मुख से मा निषाद इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी वहीं पर दुःख कातर मुनि रामायण निर्माण करते समय, एक नव परणीता दुःखिनी वधू को बिल्कुल ही भूल गया।

4.3.4 निष्कर्ष :

भाषा का परिष्कृत स्वरूप प्रदान करने वाले द्विवेदी युग के प्रवर्त्तक, सरस्वती पत्रिका के सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उर्मिला विषयक वृतांत पर अपनी विहंगम दृष्टि से विचार व्यक्त किए हैं –

कवि स्वभाव से ही हरफन मौला तथा स्वच्छंद होते हैं, मन के राजा होते हैं। उनकी दृष्टि जिस तरफ झुक गई उसी विषय में चार–चाँद लगा देते हैं, वे चाहें तो राई का पर्वत और पर्वत को राई बना देते हैं। यह गुण साधारण से साधारण व्यक्ति तथा कवि में भी पाया जाता है। विशिष्ट कवि का क्या कहना। आदि कवि वाल्मीकि में यह गुण देखकर कवि को दुःख हुआ, क्योंकि क्रौंच पक्षी के विलाप से महान ग्रंथ की रचना कर दी, लेकिन उर्मिला के दुःख को अपनी आंखों से ओझल कर दिया। उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा, उन्होंने कैसे नव वधू को उपेक्षित कर दिया।

वह उर्मिला जो गुणों का भंडार थी, सीता की बचपन की सहेली थी। जिसने अग्नि से भी दहकता पति वियोग झेला। ऐसी बाल वियोगिनी को अनदेखा कर दिया। जिसका नाम कर्ण प्रिय, सुखद तथा मनोहर था पर भाग्य की छोटी उर्मिला मुनि वाल्मीकि की निगाहों से ओझल हो गई।

राम वन गमन के समय भी उर्मिला के लिए पति (लक्ष्मण) के दर्शन न हुए। रामचंद्र जी के राज्याभिषेक की तैयारियों के समय प्रसन्न उर्मिला की सारी खुशियाँ विरह की भट्टी में जलकर भस्म हो गई। कवि ने राम के बिना अयोध्या, प्रजा, राजा दशरथ को देखा, लेकिन उर्मिला विरह की भट्टी में जल रही थी देखा तक नहीं। लक्ष्मण को आदर्श भाई का साथ मिल गया लेकिन उर्मिला निर्निमेष दृष्टि से पति को जाता देखती रही। अपने हृदय पर पत्थर रख लिया। सांसारिक सुखों से वंचित कर दी गई। सीता और उर्मिला एक घर की थी फिर उर्मिला के साथ अन्याय क्यों किया।

वन गमन के समय स्वयं धैर्य का परिचय देकर उर्मिला ने सभी का मन मोह लिया। पति लक्ष्मण की आराध्य–युग्म की सेवा में विघ्न नहीं डालना चाहा। सीता के समान वन जाने के लिए जिद् नहीं की। त्यागमयी के प्रति उपेक्षा का भाव प्रदर्शित कर कवियों ने हृदय हीनता का परिचय दिया है।

रामचरित मानस के रचयिता तुलसीदास ने भी उर्मिला को महत्त्वहीन ही समझा। राम (आराध्य) के भाई के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित कर हृदयहीनता का परिचय दिया है। अपनी करुणामयी दृष्टि से वंचित कर दिया। जनकपुर से साकेत पहुंचकर विस्मृत करना अच्छा नहीं लगा।

भूवमूति ने उर्मिला को महत्व प्रदान कर अपनी सहृदयशीलता का परिचय दिया। सीता लक्ष्मण से पूछती है कि कौन है जो तुम्हारी प्रतीक्षा का रही है? किंतु लज्जालु लक्ष्मण ने मौन भाषा में उर्मिला के विषय में बताकर अपना काम समाप्त कर दिया। अपनी धर्मपत्नी उर्मिला के चित्र को हाथ से छिपाकर महत्त्व को कम कर दिया।

द्विवेदी जी ने उर्मिला विषयक वृतांत को प्रस्तुत कर पाठकों एवं शोधार्थियों की दृष्टि उर्मिला पर केंद्रित कर महत्त्वपूर्ण गौरव प्रदान किया है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किस पत्रिका का संपादन किया?

10. पतिविहीन नारी की स्थिति कैसी होती है?

11. कवियों का स्वभाव कैसा होता है?

12. उर्मिला किसकी सहेली थी?

13. उर्मिला के बारे में किसने वर्णन किया?

14. वाल्मीकि रामायण के सृजन का कारण क्या था?

15. उर्मिला किसकी पत्नी थी?

16. राम का वनवास कितने वर्ष का था?

4.4 मजदूरी और प्रेम (सरदार पूर्ण सिंह)

द्विवेदी युग के निबंधकारों में श्रम की महत्ता प्रतिपादित करने वाले नैतिक व सामाजिक विषयों पर लेखिनी चलाने वाले मानवता की प्रतिष्ठा के समर्थक कर्म की उपयोगिता सिद्ध करने वाले अध्यापक पूर्ण सिंह के निबंध समाज के दर्पण हैं। कम निबंध लिखे लेकिन सारगर्भित संस्कृति के प्रति समर्पित भाव उनके निबंधों की विलक्षणता रही है। कन्यादान, पवित्रता, सच्ची वीरता, आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम उनके श्रेष्ठ निबंध हैं। मजदूरी और प्रेम निबंध लिखने के मूल में किसानों की सादगी, गडरिए का भोलापन, प्रेम रस का परिपाक, क्रियाशीलता पर बल, मजदूर और फकीर के स्वभाव का वर्णन, कल्याणकारी जीवनबोध, यंत्रीकरण के दुष्परिणामों का वर्णन, मानवतावाद की प्रतिष्ठा आदि प्रसंगों का विवेचन कर अपनी अभिव्यक्ति से अवगत कराना है।

4.4.1 व्याख्या खंड :

हल चलाने और भेड़ चराने वाले प्रायः स्वभाव से ही साधु होते हैं। हल चलाने वाले अपने शरीर का हवन किया करते हैं। खेत उनका हवनकुंड है। उनके हवनकुंड की ज्वाला की किरणें चावल के लंबे और सफेद दानों के रूप में निकलती हैं। गेहूं के लाल–लाल दाने इस अग्नि की चिंगारियों की डालियाँ सी हैं। मैं जब कभी अनार के फूल और फल देखता हूँ तब मुझे बाग के माली का रूधिर याद आ जाता है। उसकी मेहनत के कण–जमीन में गिरकर उगे हैं और हवा तथा प्रकाश की सहायता से वे मीठे फलों के रूप में नज़र आ रहे हैं। किसान मुझे अन्न में, फूल में, फल में आहुति सा दिखाई देता है।

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण द्विवेदी युग के प्रसिद्ध गद्य लेखक, नैतिकता के समर्थक, श्रम की उपयोगिता को सहर्ष स्वीकार करने वाले अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : भारत कृषि प्रधान देश है। किसान कृषि का देवता, कर्ता–धर्ता माना जाता है। अपने खून पसीने की गाढ़ी कमाई से अन्न पैदा कर भारतीयों की पेट की अग्नि को शांत करता है। किसान की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करते हुए पूर्ण सिंह कहते हैं –

व्याख्या : मनुष्य के स्वभाव से व्यक्तित्त्व का आभास सहज ही हो जाता है। स्वभाव और व्यक्तित्त्व अन्योन्याश्रित होते हैं। किसान और गड़रिये का स्वभाव लगभग एक जैसा होता है। किसान को हल चलाने के कारण हलधर भी कहा

जाता है। भेड़ों के खानपान की व्यवस्था करना गड़रिये का कार्य होता है। किसान अन्न पैदा करने के लिए अथक परिश्रम करता है। शारीरिक कष्टों को सहकर खेतों को हरा–भरा बनाता है। खेत उनकी हवनशाला होते हैं। चावल की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि चावल के लंबे और सफेद दाने हवन कुंड से निकलने वाली अग्नि की पलटों, किरणों के समान होते हैं। गेहूं के दाने लालिमायुक्त होने के कारा आग की चिंगारियों की डालियों के समान सुशोभित होते हैं। बागों में पुष्पित और फलित अनार को देखकर माली का लहू याद आ जाता है, जो अप्रत्यक्ष रूप से माली की मेहनत को दर्शाता है। माली के परिश्रम का प्रतिफल अनार के रूप में सामने है। ईश्वर प्रदत्त हवा और प्रकाश ने इन फलों को मधुर बना दिया है। पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि किसान के दर्शन अनाज में, फूलों में, फलों में होते हैं लगता है किसान ने अपने प्राणों की आहुति देकर इनको पल्लवित किया है।

विशेष :

किसान की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया है।

लेखक पूर्ण सिंह जी ने किसान और गड़रिये का स्वभाव समान माना है।

हल चलाने के कारण किसान को 'हलधर' भी कहा जाता है।

किसान के परिश्रम की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है।

कहा जाता है 'मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक' उसी प्रकार किसान का कार्यक्षेत्र खेत होते हैं।

उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(क) गेहूं के लाल दाने चिंगारियों की डालियों से।

(ख) चावल के लंबे और सफेद दाने हवन कुण्ड की ज्वाला की किरणों के समान

(ग) किसान मुझे अन्न में, फूल में फल में आहुति सा।

यह यथार्थ है कि किसान के परिश्रम में जब तब प्राकृतिक हवा और प्रकाश का योगदान न होगा तब तक बीज का उगना, पल्लवित होना, फूलना और फलना संभव नहीं है।

प्रसाद गुण है।

संस्कृत, उर्दू व अरबी शब्दों का प्रयोग किया गया है।

किसान का क्रिया–कलाप आहुति से युक्त माना है।

यज्ञ करने के लिए हवन कुण्ड बनाया जाता है तत्पश्चात् सामग्री को हवनकुण्ड में प्रज्वलित अग्नि में डाला जाता है जिसमें मानसिक शुद्धि के साथ वातावरण की पवित्रता बनी रहती है।

अविद्या शब्द शक्ति है।

भावानुकूल भाषा की छटा दृष्टव्य है।

अन्न पैदा करने में किसान भी ब्रह्मा के समान है। खेती उसके ईश्वरीय प्रेम का केंद्र है। उसका सारा

जीवन पत्ते–पत्ते में, फूल–फूल में विचर रहा है। वृक्षों की तरह उसका भी जीवन एक तरह का मौन जीवन है। वायु, जल, पृथ्वी, तेज और प्रकाश की निरोगता इसी के हिस्से में है। विद्या यह नहीं पढ़ा, जप और तप यह नहीं करता, संध्या वंदनादि इसे नहीं आते, ज्ञान–ध्यान का इसे पता नहीं, मस्जिद गिरजा, मंदिर से इसे सरोकार नहीं। केवल साग–पात खाकर ही यह अपनी भूख निवारण कर लेता है। ठंडे चश्में और बहती नदियों के शीतल जल से अपनी प्यास बुझा लेता है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण प्रसिद्ध गद्यकार, द्विवेदी युग के निबंधकार, अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध के हल चलाने वाले का जीवन' खंड से अवतरित है।

प्रसंग : श्रम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए पूर्ण सिंह जी ने किसान की सादगी, निश्छलता का वर्णन करते हुए लिखा है –

व्याख्या : लेखक कहता है कि यह संसार ब्रह्मा की इच्छा का ही परिणाम है। अर्थात् ब्रह्मा जी ने अपने प्रेम के वशीभूत होकर ही इस संसार का सृजन किया। इसीलिए ब्रह्मा जी को सृष्टा भी कहा जाता है। लेखक ने किसान की तुलना व समानता ब्रह्मा से की है क्योंकि दोनों का स्वभाव लगभग समान ही है। किसान भी ब्रह्मा के समान संसार में अनाज को पैदा करता है। ब्रह्मा के बनाए संसार का अस्तित्व भोजन के बिना संभव नहीं है। अपने परिश्रम के बल पर ईश्वर के निकट पहुँच जाा है। अर्थात् जो व्यक्ति अपना कार्य स्वयं करते हैं उनकी ईश्वर भी मदद करता है। खेत के कण–कण में उसकी आत्मा का वास होता है। उसका समस्त जीवन पत्तों, फूलों और फलों के रखरखाव में व्यतीत हो जाता है। खेतों में फैली हरियाली, फलते वृक्ष किसान की महिमा का गुणगान करते हैं। किसान की तुलना वृक्ष से करते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि वृक्ष के समान किसान भी मौन व्रत रखते हुए अपना जीवन व्यतीत करता है। जिस प्रकार वृक्ष अपने फूल और फल दूसरों को प्रदान करके कभी उसका बखान नहीं करते, ठीक उसी प्रकार किसान भी कभी अपनी मेहनत की गाथा को जुबान पर नहीं लाता। वह वायु, जल, पृथ्वी, तेज और आकाश से ऊर्जा ग्रहण कर अपने शरीर को निरोगी बनाता है। किसान के निश्छल व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए पूर्ण सिंह जी ने कहा है कि किसान का दिल सादा होता है। अहंकार, छलकपट, आडंबरों तथा प्रपंचों से दूर होता है। इसीलिए वह न तो विद्या ग्रहण करता है न जप तप करके बाह्याडंबर का दिखावा करता है। उसे प्रातः व संध्या वंदना की आवश्यकता नहीं पड़ती। मंदिर, मस्जिद तथा गुरुद्वारे का कभी दर्शन नहीं करता। उसे समय पर जो मिल जाए वही रूखा–सूखा साग–पात खाकर अपनी भूख मिटा लेता है। चश्में और नदियों के ठंडे जल से अपनी प्यास बुझा लेता है।

विशेष :

किसान की विशेषताओं का उल्लेख है।

सादगी किसान के जीवन का अंग होती है।

किसान की तुलना ब्रह्मा से की है।

अपनी खेती की देखभाल संतान के समान करता है।

वृक्ष और किसान का स्वभाव एक सा होता है।

किसान की निरोगता का कारण प्राकृतिक धरोहर है।

किसान में आत्मसंतोषी प्रवृत्ति पाई जाती है।

अब स्थिति बदल गई है। शिक्षित किसान अपनी खेती को वैज्ञानिक ढंग से करने लगे हैं।

किसी ने ठीक ही कहा है –

'देख पराई चूपड़ी मत लालचावै जी

रूखी–सूखी खाय कै ठण्डा पानी पी।'

मानव शरीर की रचना इन्हीं पाँच तत्त्वों से की गई है।

अविद्या शब्द शक्ति है।

प्रसाद गुण है।

संस्कृत फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है।

भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है।

किसान और वृक्ष दोनों का जीवन परमार्थ युक्त होता है। परंतु यह दुर्भाग्य ही है कि किसान आत्महत्या करने पर विवश है।

ये प्रकृति के जवान साधु हैं। जब कभी मैं इन बे–मुकुट के गोपालों के दर्शन करता हूँ, मेरा सिर स्वयं ही झुक जाता है। जब मुझे किसी फकीर के दर्शन होते हैं, तब मुझे मालूम होता है कि नंगे सिर, नंगे पाँव, एक टोपी सिर पर, एक लंगोटी कमर में, एक काली कम्बली कंधे पर, एक लंबी लाठी हाथ में लिए हुए गौवों का मित्र, बैलों की हम जोली, पक्षियों का हमराज, महाराजाओं का अन्नदाता, बादशाहों को ताज पहनाने और सिंहासन पर बिठाने वाला, भूखों और नंगों को पालने वाला समाज के पुष्पोद्यान का माली जा रहा है।

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण द्विवेदी युग के प्रबुद्ध निबंधकार अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा 'मजदूरी और प्रेम' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : श्रम की महत्ता तथा भोले किसान के जीवन पर प्रकाश डालते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं–

व्याख्या : लेखक का मन किसान की सादगी से प्रभावित होकर अभिव्यक्ति के लिए विवश है। जिस प्रकार प्रकृति में कृत्रिमता का लेशमात्र भी भग नहीं होता, ठीक उसी प्रकार किसान का जीवन सादगी की दास्तां बयान करता है। लेखक का मानना है कि किसान राजा से कम नहीं होता, वास्तविक राजा कहलाने का गौरव किसान को ही है। प्रातः उठकर गायों की सेवा करना अपना दैनिक कर्त्तव्य मानता है। उनकी सेवा से संतान को शुद्ध दूध पीने को मिलता है। किसानों को गोपाल भी कहा जाता है। किसान के सामने लेखक के साथ सामान्य जन भी श्रद्धा से अपना मस्तक झुका लेता है। छल, कपट, प्रतिकार पास से नहीं गुजरता। जब किसी संन्यासी या साधु के दर्शन होते हैं तो किसान की निर्मलता रहित मूर्ति आंखों के सामने आकर खड़ी हो जाती है। ऐसा लगता है मानो किसान ही साधु के वेश में साक्षात् सामने खड़ा हो। किसान की वेशभूषा एवं व्यवहार का वर्णन करते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि किसान का सिर नंगा रहता है। पैरों में जूतियाँ नहीं मिल पातीं, सिर पर रखी टोपी उसकी अस्मिता की पहचान होती है। कमर में लंगोटी ही वस्त्र की सूचक होती है। कंधे पर काली कमली रखना नहीं भूलता जिसे चादर भी कहा जाता है। जंगली जानवरों से आत्मरक्षा के लिए लाठी पास रखता है। गायों के साथ हमजौली सा व्यवहार करता है। पक्षियों की हिफाजत करना धर्म समझता है। राजा और महाराजाओं की पेट की भूख को शांत

करता है तथा बादशाह को सिंहासन पर बिठाता है। भूखे को भोजन और प्यासे को पानी पिलाना कर्त्तव्य समझता है। सामाजिक व्यवस्था का पुरोधा होता है। खेतों की रक्षा माली के समान करता है। खेतों का वास्तविक मालिक किसान ही होता है। स्वयं के अस्तित्व की चिंता न करके दूसरों के अस्तित्व की रक्षा करता है। इन्हीं गुणों के कारण उसकी फकीर से तुलना करना तर्क संगत है।

विशेष :

किसान की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

किसान और फकीर की तुलना कर समानता का वर्णन किया है।

भगवान श्री कृष्ण को भी गोपाल नाम से जाना जाता है।

त्याग भावना के कारण ही किसान का दृष्टिकोण सर्वजनहिताय का होता है।

लेखक ने किसान का चित्र उपस्थित कर दिया है। चित्राात्मकता के दर्शन होते हैं।

भारत कृषि प्रधान देश है। कृषि करने वाला कृषक होता है। किसान की खुशहाली से ही देश की प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है।

प्रसाद गुण है।

अविद्या शब्द शक्ति है।

संस्कृत और उर्दू शब्दों का प्रयोग किया गया है।

भाषा में सजीवता व प्रवाह का गुण विद्यमान है।

मुझे तो मनुष्य के हाथ से बने हुए कामों में उनकी प्रेममय पवित्र आत्मा की सुगंध आती है। रामेल आदि के चित्रित चित्रों में उनकी कला–कुशलता को देख इतनी सदियों के बाद भी उनके अंतःकरण के सारे भावों का अनुभव होने लगता है। केवल चित्र का ही दर्शन नहीं, किंतु उसमें साथ में छिपी हुई चित्रकार की आत्मा तक के दर्शन हो जाते हैं, परंतु यंत्रों की सहायता से बने हुए फोटो निर्जीव से प्रतीत होते हैं। उनमें और हाथ के चित्रों में उतना ही भेद है जितना कि बस्ती और श्मशान में।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण द्विवेदी युगीन निबंध परंपरा को प्रखर बनाने वाले अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित मजदूरी और प्रेम निबंध के प्रेम मजदूरी खंड से अवतरित है।

प्रसंग : परिश्रम ही सफलता का मूल मंत्र है। लेखक ने हस्तकला की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहा है –

व्याख्या : कर्म करना प्राणी मात्र का धर्म होता है। निष्क्रिय जीवन आलस्य को बढ़ावा देता है। संसार में उन्हीं देशों ने प्रगति की है जिन्होंने अपनी क्रियाशीलता को बनाए रखा है। पूर्ण सिंह का मानना है कि जो कार्य मनुष्य के हाथों से किया जाता है उसमें उसकी आत्मीयता एवं रागात्मक बोध प्रदर्शित होता है। उसमें उसकी पवित्र आत्मा का निवास होता है। अपने किये गए कार्यों को फलित देखकर मंत्र मुग्ध हो जाता है। जिस प्रकार रामेल द्वारा बनाए गए चित्र एवं क्रियाशीलता सदियों बाद भी मनुष्य के अंतःकरण को बरबस आकृष्ट कर लेती है काल का प्रभाव भी इन चित्रों के सामने वाष्प के समान उड़ जाता है। चित्र के साथ चित्रकार की मनोवृत्ति, स्वभाव एवं लगन का आभास होने लगता है। उनके चित्र चित्रकार की आत्मा के दर्शन करा देते हैं। यंत्रीकरण के प्रभाव को स्पष्ट करते हुए पूर्ण सिंह जी ने कहा है कि मशीनीकरण से बने चित्रों में कृत्रिमता का गुण अवश्य दिखाई देता है। यंत्र

और मनुष्य के चित्रों में उतना ही अंतर होता है जितना कि बस्ती और श्मशान में होता है।

विशेष :

लेखक ने यंत्रीकरण का विरोध कर मानव की उपयोगिता सिद्ध की है।

रामेल के चित्र काल की सीमा तोड़कर प्रत्येक युग में आकृष्ट करते रहेंगे।

मशीनीकरण से उत्पन्न विभीषिका की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

मनुष्य को बस्ती और यंत्र को श्मशान के रूप में चित्रित कर भावी पीढ़ी को सचेत किया है।

लेखक का विश्वास है कि यंत्रों की प्रगति की कामना करना मनुष्य को बेकारी की भीड़ में खड़ा कर देना है।

तत्सम् और तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है।

वर्णात्मक शैली अपनाई गई है।

प्रसाद गुण है।

हाथ की मेहनत से चीज में जो रस भर जाता है वह भला लोहे के द्वारा बनाई हुई चीज में कहाँ। जिस आलू को मैं स्वयं बोता हूँ, मैं स्वयं पानी देता हूँ, जिसके इर्द–गिर्द की घास–पात खोदकर मैं साफ करता हूँ, उस आलू में जो रस मुझे आता है वह टीन में बंद किये हुए अचार या मुरब्बे में नहीं आता। मेरा विश्वास है कि जिस चीज में मनुष्य के प्यारे हाथ लगते हैं उसमें उसके हृदय का प्रेम और मन की पवित्रता सूक्ष्म रूप से मिल जाती है और उसमें मुर्दे को जिंदा करने की शक्ति आ जाती है।

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण द्विवेदी युग के श्रेष्ठ 'आत्म व्यंजक निबंधकार अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित मजदूरी और प्रेम नामक निबंध के 'प्रेम मजदूरी' खण्ड से अवतरित है।

प्रसंग : परिश्रम की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं –

व्याख्या : जो वस्तु मनुष्य स्वयं बनाता है, निर्माण करता है, अपने मनोभावानुकूल वस्तु को स्वरूप प्रदान करता है, उसमें विशेष आनंद की प्राप्ति होती है। यह आनंद उसे आत्मिक शांति प्रदान करता है। मशीनों द्वारा निर्मित वस्तुओं में आनंद का संचार नहीं होता। प्रेम एवं आत्मीयता के दर्शन मनुष्य की सहभागिता को दर्शाते हैं। लेखक स्वयं की सहभागिता को दृष्टिगत रखकर अपना वक्तव्य स्पष्ट करता है कि मैं आलू को बोता हूँ और खाद–पानी की व्यवस्था करता हूँ। मेरे आलू का उत्पादन बड़े पैमाने पर हो इसके लिए मैं स्वयं उसमें उगी खरपतवार को अपने हाथों से उखाड़कर साफ करता हूँ, तत्पश्चात् उत्पादित वस्तु (आलू) को खाने में जो रसानुभूति प्राप्त होती है उसका कोई मोल नहीं है। टीन में बंद अचार या मुरब्बे में भी उसको प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह आलू मेरा अपना है उसमें मेरा परिश्रम मिश्रित है। लेखक का विश्वास है कि जिस वस्तु के उत्पादन में मनुष्य के स्नेह से युक्त हाथों का योगदान होगा वह वस्तु रसात्मकता से पूर्ण होगी। क्योंकि उस वस्तु में मन की पवित्रता के साथ प्रेम भी होगा। निष्क्रिय वस्तुएँ भी मूल्यवान हो जाती हैं, मनुष्यों को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। प्रेम भाव का स्वरूप स्वयं निर्मित वस्तुओं में प्रत्यक्ष झलकता है, जबकि मशीनीकरण से उत्पादित वस्तुएँ मनुष्यों के व्यापारिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती हैं।

विशेष :

लेखक मानव निर्मित वस्तुओं की उपयोगिता सिद्ध कर कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना चाहता है।

मशीनीकरण से निर्मित वस्तुओं को त्याज्य बताया है।

श्रम की उपयोगिता सिद्ध की गई है।

फारसी, उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है।

तत्सम शब्दावली युक्त भाषा प्रयोग में लाई गई है।

अविधा शब्द शक्ति है।

आजकल भाप की कलों का दाम हजारों रुपया है, परंतु मनुष्य कौड़ी के सौ–सौ बिकते हैं। सोने और चांदी की प्राप्ति से जीवन का आनंद नहीं मिल सकता। सच्चा आनंद तो मुझे मेरे काम से मिलता है। मुझे अपना काम मिल जाए तो फिर स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा नहीं, मनुष्य पूजा ही सच्ची ईश्वर–पूजा है। मंदिर और गिरजे में क्या रखा है? ईंट, पत्थर, चूना कुछ भी कहो आज से हम अपने ईश्वर की तलाश मंदिर, मस्जिद, गिरजा और पौथी में न करेंगे। अब तो यही इरादा है कि अनमोल आत्मा में ईश्वर के दर्शन करेंगे।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण निबंधकार अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित मजदूरी और प्रेम निबंध से मजदूरी और कला खण्ड से अवतरित है।

प्रसंग : लेखक ने मशीनीकरण का विरोध कर कुटीर उद्योगों को महत्त्व प्रदान कर भारतीय संस्कृति के दिग्दर्शन के साथ मानवतावादी भाव व्यक्त किया है।

व्याख्या : अध्यापक पूर्ण सिंह का मानना है कि वैज्ञानिक युग में जहाँ एक ओर यंत्रीकरण से उत्पादन क्षमता की वृद्धि हुई है, वहीं दूसरी ओर मानवतावादी भावना का ह्रास भी हुआ है। यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि मानव निर्मित वस्तुओं का मूल्य यंत्रीकरण द्वारा निर्मित वस्तुओं से कम ही आंका जाता है। एक वस्तु जो यंत्रीकृत है वह हजारों में बिकती है जबकि मानव निर्मित वस्तु कौड़ी के दाम में बेचने की विवशता है। इसमें मानव की उपयोगिता नष्ट होती जा रही है। मनुष्य शांति की प्राप्ति के लिए इधर–उधर भटक रहा है। उसके चेहरे की हवाइयाँ उड़ रही हैं। भविष्य की चिंता तिल–तिलकर सता रही है। सोने–चांदी को प्राप्त करने में शांति मिले यह आवश्यक नहीं है, उल्टे बेचैनी असुरक्षा की भावना का डर पल–प्रतिपल व्यथित करता रहता है। पूर्ण सिंह जी कार्य की उपयोगिता सिद्ध करते हुए कहते हैं कि वास्तविक आनंद अपने कार्य से ही प्राप्त होता है। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' का भाव भी कर्मयुक्त जीवन में चरितार्थ हो सकता है। कहा भी जाता है मानसिक संतुष्टि का मोल स्वर्गीय आनंदे से कहीं श्रेष्ठ होता है। स्वर्ग की इच्छा पूर्ण हो जाती है। मानव के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि मनुष्य का जीवन बहुमूल्य है। अनेक जन्मों का प्रतिफल मानव रूप में प्राप्त होता है। मानव की उपेक्षा करना मानवता को कलंकित करना है। मानव पूजा ही सच्ची पूजा है, सच्ची इबादत है, क्योंकि मानवता के दर्शन मस्जिद, मंदिर या गिरजेघर में नहीं होती न पोथी पढ़कर मानवता को जाना जा सकता है। लेखक की हार्दिक इच्छा है कि मैं मनुष्य के दर्शन करता रहूँ, ईश्वरीय दर्शन स्वतः ही पूर्ण हो जाएंगे, क्योंकि मानव आत्मा की सेवा करना ही प्राणी मात्र का धर्म है।

विशेष :

वैज्ञानिक उपलब्धियों से उत्पन्न विषय विभीषिका के दुष्परिणामों का उल्लेख किया है।

लेखक ने मानव की उपयोगिता सिद्ध कर मानवतावादी भाव को अभिव्यक्त किया है।

मानव पूजा ही संसार की सबसे बड़ी पूजा है।

मनुष्य की अतृप्त भावना ही स्वर्ग की इच्छा का भाव पैदा करती है।

अध्यापक पूर्ण सिंह की मार्क्सवादी भावना व्यक्त हुई है।

मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया गया है।

आध्यात्मिक दृष्टि से ईश्वर की प्राप्ति न मंदिर में संभव है न गिरिजा में और न मस्जिद में।

सोने–चांदी की प्राप्ति से भौतिक समृद्धि तो प्राप्त की जा सकती है लेकिन मानसिक शांति की प्राप्ति मानव पूजा द्वारा ही संभव है।

ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है उसके लिए स्थान विशेष का चयन अज्ञानता का द्योतक है।

मनुष्य की बदलती मानसिकता का वर्णन है।

कर्म की महत्ता प्रतिफपादित की गई है।

प्रसाद गुण है।

अविधा एवं लक्षणा शब्द शक्ति है।

भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है।

सच्ची मित्रता ही तो सेवा है। उससे मनुष्यों के हृदय पर सच्चा राज हो सकता है। जाति–पाति, रंग–रूप और नाम –धाम तथा बाप–दादा का नाम पूछे बिना ही अपने आपको किसी के हवाले कर देना प्रेम धर्म का तत्त्व है। जिस समाज में इस तरह के प्रेम धर्म का राज्य होता है उसका हर कोई हर किसी को बिना उसका नाम धाम पूछे ही पहचानता है, क्योंकि पूछने वाले का कुल और उसकी जात वहाँ वही होती है जो उसकी जिससे कि वह मिलता है वहाँ सब लोग एक ही माता–पिता से पैदा हुए भाई–बहन हैं। अपने ही भाई–बहनों का नाम पूछना क्या पागलपन से कम समझा जा सकता है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण प्रसिद्ध निबंधकार अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' निबंध के 'मजदूरी और फकीरी' से लिया गया है।

प्रसंग : मित्रता की उपयोगिता तथा आदर्श प्रेम की महत्ता प्रतिपादित करते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि –

व्याख्या : प्रेम की परिपक्वता के लिए किसी वर्ग विशेष का होना आवश्यक नहीं है। जाति–पाति की दीवारें प्रेम के मार्ग को अवरूद्ध करती हैं। रूप–रंग की बाध्यता भी समाप्त हो जाती है। नाम तथा बाप–दादाओं का नाम नहीं पूछा जाता। प्रेम धर्म का निर्वाह जाति–पांति, देश, नाम से परे रहकर ही किया जा सकता है। जिस समाज में प्रेम धर्म का बोलबाला होगा वह संकीर्णता से परे होगा। उसे किसी पहचान की आवश्यकता नहीं पड़ती। जाति और कुल का बंधन निश्चित भू–भाग का बोध कराता है। इस संसार में सभी एक ही ईश्वर की संतानें हैं। आपस में सभी भाई–बहन हैं। अपने ही परिवार से नाम और वंश का विवरण पूछना मूर्खता सिद्ध करती है, क्योंकि माँ–बाप का नाम उसका पूछा जाता है जिसके बारे में हम नहीं जानते। जब आपस में एक–दूसरे से घनिष्टता से जुड़े हैं तो प्रेम–धर्म के सफल निर्वाह के लिए नाम का पूछा जाना सार्थक नहीं है।

विशेष :

प्रेम शब्द व्यापकता का बोध कराता है, जिसकी सीमा में परिवार, समाज, देश तथा राष्ट्र समाहित हो जाता है।

कहा भी जाता है– ''प्रेम न देखे जात कुजात भूख न देखे बासी भात।''

जगतपिता परमेश्वर ने प्रेम के वशीभूत होकर ही संसार का सृजन किया।

मलिक मुहम्मद जायसी ने प्रेम को वैकुण्ठ धाम के समान माना है। यथा–

मानुष प्रेम यऐयु वैकुण्ठी

आध्यात्मिक दृष्टि से 'मनु' ही सृष्टि के पिता हैं।

परमात्मा के वर्चस्व का गुणगान किया है।

प्रसाद गुण है।

तत्सम शब्दावली तथा उर्दू का प्रयोग हुआ है।

अविधा शब्द शक्ति है।

भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है।

पाश्चात्य देशों में नया प्रभात होने वाला है। वहाँ के गंभीर विचार वाले लोग इस प्रभात का स्वागत करने के लिए उठ खड़े हुए हैं। प्रभात होने के पूर्व ही उसका अनुभव कर लेने वाले पक्षियों की तरह इन महात्माओं को इस नये प्रभात का पूर्ण ज्ञान हुआ है और हो क्यों न? इंजिनों के पहिये के नीचे दबकर वहाँ वालों के भाई–बहन नहीं उनकी सारी जाति पिस गई, उनके जीवन के धुरे टूट गये, उनका समस्त धन घरों से निकलकर एक ही दो स्थानों में एकत्र हो गया है। साधारण लोग मर रहे हैं, मजदूरों के हाथ पांव फट रहे हैं, लहू चल रहा है, सर्दी से ठिठुर रहे हैं। एक तरफ दरिद्रता का अखंड राज्य है, दूसरी तरफ अमीरी का चरम दृश्य।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण प्रसिद्ध निबंधकार अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' निबंध के पश्चिमी सभ्यता का एक नया आदर्श खंड से अवतरित है।

प्रसंग : मशीनीकरण से उत्पन्न विभीषिका के दुष्परिणामों का वर्णन करता हुआ निबंधकार कहता है कि –

व्याख्या : समयानुसार मनुष्यों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। पाश्चात्य देश के लोगों के विचारों में, चिंतन में बदलाव आने लगा है। पाश्चात्य समाज अब परिवर्तन को चिंतन के धरातल पर स्वीकार करने लगा है। नये प्रभात की बेला का स्वागत करने के लिए बेचैन हैं। बुद्धिजीवी भी परिवर्तन को अवश्यंभावी मानकर उत्सुक दिखाई दे रहे हैं। मशीनीकरण के दुष्परिणामों से परिचित होकर मानव निर्मित वस्तुओं को महत्त्व प्रदान करने लगे हैं। उदाहरण देकर समझाते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि जिस प्रकार प्रातःकाल का स्वागत करने के लिए पक्षी उत्सुक रहते हैं ठीक उसी प्रकार पाश्चात्य देशों को भी अब परिवर्तन की बेला का आभास होने लगा है। स्वागत की बेचैनी का कारण बताते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि मशीनीकरण से बेरोजगारी फैली है। सामाजिक व्यवस्था भी छिन्न–भिन्न होने लगी है। मजदूरों को रोजी–रोटी की समस्या है। उद्योग–धंधे चौपट हो गये हैं। जीवन रूपी गाड़ी के धुरे टुट चुके हैं। जीविका के लिए इधर–उधर भाग रहे हैं। चंद मुट्ठीभर मनुष्य पूंजीपति होते जा रहे हैं

जबकि बड़ा वर्ग मजदूर बेरोजगारी, भूख तथा शोषण के कारण मृत्यु को प्राप्त हो रहा है। शोषण में पिसते रहने से पैरों से रक्त बहने लगा है। उनके पास भूख मिटाने के लिए पर्याप्त भोजन नहीं है न तन ढकने को वस्त्र मिल रहे हैं। मशीनीकरण से गरीब और गरीब होता जा रहा है। अमीर और अमीर हो रहा है। मशीनीकरण के दुष्परिणाम सभी के सामने हैं।

विशेष :

मशीनीकरण के दुष्परिणामों का वर्णन किया है।

समाज में गरीब और अमीर का जन्म मशीनीकरण से ही होता है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। परिवर्तन से ही जीवन की क्रमबद्धता बनी रहती है।

प्रातःकालीन बेला का आभास सर्वप्रथम पक्षियों को होता है।

लेखक मशीनीकरण की अपेक्षा लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देना समय की मांग समझता है।

बेरोजगारी की भीड़ में यंत्रीकरण ही उत्तरदायी है।

समाज में व्याप्त भुखमरी, शोषण, दीनता, निर्धनता तथा असमय मृत्यु का होना आदि के मूल में यंत्रीकरण ही है।

तत्सम शब्दावली के साथ अरबी, उर्दू शब्दों का प्रयोग है।

रोटी, कपड़ा और मकान के बिना स्वस्थ्य समाज की संरचना संभव नहीं है।

इंजन अंग्रेजी शब्द का प्रयोग है।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग है।

विषयानुकूल भाषा का प्रयोग है।

4.4.2 विशेषताएँ :

आत्मव्यंजक शैली के जन्मदाता अध्यापक पूर्ण सिंह द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबंधकार हैं। सामाजिक विषयों पर अपनी लेखिनी चलाकर भावनाओं को व्यक्त कर मौलिक संवेदना से अवगत कराया है। मजदूरी और प्रेम निबंध सामाजिक निबंध है। इसकी विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

(क) कृषक जीवन का चित्रण – भारत कृषि प्रधान देश है। खेतों का वास्तविक स्वामी कृषक होता है। उसका जीवन सादगी की तस्वीर होता है। अन्न पैदा करने से उसे ब्रह्मा भी कहा जाता है, खेती उसको प्राणों से अधिक प्यारी होती है। वह वृक्षों के समान आत्मसंतोषी होता है, उसकी मौन भावना व्यक्तित्व की परिचायक होती है। वह शिक्षित नहीं होता तथा धार्मिक आडंबरों से दूर रहता है। मंदिर, मस्जिद, गिरिजा घर से कोई वास्ता नहीं रखता। रूखी–सूखी खाकर ठंडा पानी पी लेता है। बच्चे ईश्वरीय कृपा से धूल में खेलकर बड़े हा जाते हैं। मधुर वचनों द्वारा अतिथि का स्वागत करता है, पत्नी आज्ञाकारी होती है। नंगे पैर, नंगे बदन रहकर जीवन व्यतीत करता है। माली की तरह सेवा भाव होता है।

(ख) गड़रिये की विशषताएँ – गड़रिये का जीवन सादगी का प्रतीक है। उसे अपनी भेड़ों को चराने में आनंद आता है। उसकी भौली स्त्री पति की अनुगामिनी है। भेड़ों की सेवा करना सर्वोत्तम कार्य होता है। बीमार भेड़ की सेवा में जान की बाजी लगा देता है। पशुओं के अज्ञान में ज्ञान का सागर समाहित है।

(ग) व्यवहारशीलता – मजदूर की मजदूरी का कोई मूल्य नहीं होता। प्रेम भाव से ही उसको जाना जा सकता है। अपना तन और मन अर्पित कर कर्म में डूब जाता है। परिवार का पालन करना उसका सर्वोपरि धेय होता है। उसकी विधवा माँ अपने भाग्य को नहीं कोसती अपितु कर्म में रत रहती है। स्वयं को परिवार की सेवा में डुबो देती है। इसका यह तन्मय भाव, इबादत से बढ़कर है उसे नमाज, प्रार्थना की कोई आवश्यकता नहीं होती।

(घ) कर्म पर बल – कर्म पर बल प्रदान कर पूर्ण सिंह जी ने मानव को महिमा मंडित कर मानवता का मार्ग प्रशस्त किया है। मशीनीकरण के दुष्परिणामों से अवगत कराया है। परिश्रम को महत्त्व प्रदान किया है। मनुष्य की भागीदारी को महत्वपूर्ण बनाकर कुटीर उद्योगों के प्रति लगाव व्यक्त किया है।

(ङ) आलस्य को दूर करने पर बल – आलस्य को दूर करने के लिए कर्म पर बल देना आवश्यक है। बिना काम, बिना बजदूरी, बिना चिंतन के जीवन व्यर्थ ही है। धर्म के ठेकेदारों को भी कर्म की प्रेरणा दी है। निकम्मापन चिंतन को थका देता है। देश की उन्नति तभी होगी जब मनुष्य आलस्य को त्यागकर क्रियाशील बनेगा। किसान, मजदूर, लुहार, मूर्तिकारों का जीवन क्रियाशीलता को दर्शाता है।

(च) मजदूरी और फकीरी में समानता – दोनों का स्वभाव एक समान है। मानव क्रियाशीलता विकास के लिए आवश्यक है। बिना परिश्रम के मजदूरी और फकीरी का महत्त्व घट जाता है। प्रातःकाल में जागना, उठकर कर्म में लग जाने से बुद्धि में ताजगी आती है। साधारण जीवन भी ईश्वरमय हो सकता है।

(छ) मित्रता की कसौटी – सच्ची मित्रता सेवा ही है। इसमें तन के साथ मन भी सम्मिलित होता है। नाम, जाति, स्थान का बोध संकीर्णता को दर्शाता है। सभी समान हैं, एक ही ईश्वर की संतान हैं। सारा विश्व वसुधैव कुटुम्बकम में है।

(ज) मजदूरी जीवन का अभिन्न अंग – मजदूरी जीवन का अभिन्न अंग रहा है। जोन ऑफ आर्क की फकीरी, टॉल्सटॉय का त्याग व जूते गांठना, उमर खैयाम का तम्बे सिलना, खलीफा उमर का महलों में चटाई बुनना, कबीर रैदास का शूद्र होना, नानक और भगवान श्री कृष्ण का पशुओं को चराना इसका प्रमाण है।

(झ) पश्चिमी सभ्यता में बदलाव – मशीनीकरण से उत्पन्न विभिषिका से मनुष्य अवगत हो गया है। वह मनुष्यों की ओर मुंह उठाये देख रहे हैं। यंत्रीकरण से मानव जाति का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। बेकारी, दरिद्रता, दिखाई देने लगी है। मशीनें काल बनकर मानव जाति पर टूट पड़ी हैं।

(ञ) कुटीर उद्योगों की महत्ता – मशीनीकरण से ग्रस्त मनुष्य कुटीर उद्योगों की ओर भागने लगे हैं। यंत्रीकरण से धन एकत्रित किया जा सकता है। लेकिन स्नेह, प्रेम भावना नहीं। व्यवहारशीलता से ही मानव जाति का कल्याण संभव है। मनुष्य ही मनुष्य का दुश्मन हो गया है। विचार मंथन से उसका भ्रम टूट गया है। लेखक का मानना है कि जब सभी अपने–अपने दायित्व का पालन करेंगे तभी मानव व्यवहार में अपनापन, त्याग की भावना पैदा होगी।

4.4.3 भाषा शैली :

पूर्ण सिंह भाषा के चितेरे हैं। उनकी भाषा में मनुष्य को मंत्रमुग्ध करने की शक्ति है। भाषा में सहजता, चित्रात्मकता, प्रभावोत्पादकता का गुण विद्यमान है। भाषा में वर्णित सौंदर्य निम्नवत् है –

(क) तत्सम शब्दों की प्रधानता – आहुति, वृक्ष, दर्शनार्थ, प्रार्थना, प्रातः दृश्य, धर्म, निष्कपट।

(ख) उपमा का सौंदर्य – चिनगारियों की डालियों सी, आहुति सा, विष्णु के समान, भरत मिलाप का समां सा।

(ग) अंग्रेजी शब्द – इंजन, टॉल्सटॉय, रॉफेल।

(घ) उर्दू, अरबी, फारसी शब्द – धोखा, फकीर, हमजोली, हमराज, मकां, इशारे, अश्क, खुदा, मजदूर, दिल्लगी, जिल्दसाज, समां, नमाज, सितम, निसार, मयस्सर।

(ङ) चित्रात्मकता – प्रातःकाल उठना, बैलों को नमस्कार करना, खेत जोतना, बच्चों का मिट्टी में खेलना, आसमान की ओर देखना, आदि प्रसंगों में चित्रात्मकता है।

पूर्ण सिंह जी ने विषयों की प्रस्तुति के लिए भावात्मक, चित्रात्मक, वर्णनात्मक, लाक्षणिक शैलियों का प्रयोग किया है। मजदूरी और प्रेम निबंध में चित्रात्मक भावात्मक व वर्णनात्मक शैली की प्रधानता मिमलती है। निबंध में वर्णित शैलियों के उदाहरण निम्नवत् हैं–

(क) चित्रात्मक शैली – नंगे सिर, नंगे पांव, एक टोपी सिर पर, एक लंगोटी कमर में, एक काली कमली कंधे पर, एक लंबी लाठी हाथ में लिए।

(ख) भावात्मक शैली – मेरी आत्मा का वस्त्र है इसको पहनने में ही मेरी तीर्थ यात्रा है। इस कमीज में उस विधवा के सुख–दुःख, प्रेम और पवित्रता के मिश्रण से मिली हुई जीवन–रूपिणी गंगा की बाढ़ चली आ रही है।

(ग) वर्णनात्मक शैली – जॉन ऑफ आर्क की फकीरी, भेड़ों चराना, ऑल्सटॉय का त्याग और जूते गांठना, उमर खैयाम का तंबू सीते फिरना, खलीफा उमर का रंगमहल में चटाई बुनना, ब्रह्मज्ञानी कबीर और रैदास का शूद्र होना, गुरु नानक और भगवान श्री कृष्ण का मूक पशुओं को लाठी लेकर हांकना सच्ची फकीरी का अनमोल भूषण है।

4.4.4 निष्कर्ष

मजदूरी और प्रेम अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित निबंध है। इसमें श्रम की महत्ता व मानवतावाद की प्रतिष्ठा कर सादा जीवन उच्चविचार को चरितार्थ कर मशीनीकरण से उत्पन्न विभीषिका से अवगत कराया गया है। यह निबंध पूर्ण सिंह जी की बहुज्ञता तथा उदार दृष्टिकोण का परिचायक है।

हल चलाने वाले किान कहलाते हैं, किसान का जीवन सादगी का परिचायक होता है। परिश्रम उसका साथी है। आलस्य उससे कोसों दूर भागता है। वह अन्न पैदा कर ब्रह्मा के समान होता है। चहुं ओर फैली वनस्पति ही उसका जीवन है। वृक्षों के समान मौन धारण कर जीवन यापन करता है। धार्मिक कृत्यों से दूर रहता है। बैलों की पूजा करना नहीं भूलता। गांव की मिट्टी में उसकी आत्मा बसती है। अतिथि सत्कार मृदुल व्यवहार, स्नेहमयी वाणी, शीतल जल तथा अन्न से करता है। धोखा देना नहीं सीखा। पत्नी आदर्श गुणों से पूर्ण है। दया तथा प्रेम का उपासक है। किसान प्रकृति के जवान साधु नजर आते हैं।

किसान के समान गड़रिया भी सादगी की मूर्ति होता है। भेड़ों को चराना, ऊन काटना उनकी दिनचर्या है। बर्फीले स्थान पर भगवान विष्णु के समान लगता है। भेड़ों की सेवा व पालन तन्मयता से करता है। भेड़ के बीमार होने पर रातभर बैठकर सेवा करता है। कवि का मन भी गड़रिये के जीवन के प्रति अनुरक्त है। अपने ज्ञान सागर को भूलकर गड़रिया वन जाना चाहता है। इनका जीवन अनुभवों की खान होता है।

मजदूर की मजदूरी उसका परिश्रम ही होता है। पैसों के साथ अगर मधुर वाणी का मिश्रण हो जाए तो चार–चाँद लग जाते हैं। मनुष्य की, मजदूरी का कोई मोल नहीं है। प्रेमभाव ही उसका मूल्य है। मजदूर के परिवार के दर्शन करना तीर्थ यात्रा के समान है, जिसके सामने प्रार्थना, संध्या और नमाज भी व्यर्थ है।

हाथ से बनी वस्तुओं में आत्मीयता का बोध होता है। मशीनों से उत्पादन बढ़ाया जा सकता है, लेकिन

आत्मा के दर्शन करना संभव नहीं। मनुष्य के हाथों से किये गये कार्यों में हृदय का प्रेम, मन की पवित्रता मिल जाती है। होटल के खाद्य पदार्थ नीरस होते हैं, जबकि गृहिणी के हाथों से बने भोजन में खुशबू व परिश्रम के दर्शन होते हैं। दिनभर की दौड़धूप व परिश्रम करके पवित्र मन से निमग्न होकर जो भोजन तैयार होता है वह यांग का ही द्योतक है।

परिश्रम करना मनुष्य का कर्म है। भौतिक सुख सुविधाओं में भी वह सुख नहीं मिलता जो सुख अपने द्वारा किये गए कार्यों में मिलता है। मानव पूजा ही सर्वोपरि है। मशीनों से मनुष्य बेकार हो रहे हैं। मनुष्य की अनमोल आत्मा में ही सच्चे ईश्वर के दर्शन होते हैं। प्रगति का मार्ग आलस्य से कुंठित हो जाता है। उन्नति के मूल में परिश्रम ही खाद का कार्य करता है। निष्क्रियता से चिंतन शक्ति थक जाती है। चाहे वह कवि ही क्यों न हो। नये साहित्य का जन्म मजदूरों से ही होता है। कार्य कोई भी हो सबमें तन्मयता की गंध आवश्यक है। मजदूर की मजदूरी ही सच्ची उपासना है तभी सच्चे कवियों का जन्म होगा, औलियों का अवतार होगा। ?

फकीर और मजदूर के स्वभाव समान होते हैं। बिना परिश्रम के मजदूरी का कोई मूल्य नहीं होता, ठीक उसी प्रकार फकीरी का सम्मान भी गिर जाता है। कर्म करना प्राणी मात्र का धर्म है। जब तक संसार क्षेत्र में मनुष्य कर्मरत रहेगा उसका आदर्श भी जीवित रहेगा। चाहे वह मौलवी हो, पंडित हो, साधु हो, संन्यासी हो सभी को मजदूरी करनी आवश्यक है। इसके बिना बुद्धि में पैनापन नहीं आ सकता। बाह्य आडंबरों की कोई आवश्यकता नहीं है। साधारण जीवन में ही ईश्वर दर्शन संभव है। मजदूरी के बदले मिलने वाला स्नेह ही सच्ची मित्रता है। जाति–पाति की दीवारों को तोड़कर स्वयं को सेवा में लगा देना ही प्रेम धर्म का पूरक है। सभी एक ईश्वर की संतानें हैं। नाम पूछकर संकीर्णता प्रदर्शित होती है। एक परिवार के दर्शन संसार में होते हैं। आपसी मित्रता होगी, सभी समान होंगे, तो स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आयेगा। मजदूरी करना जीवन का ध्ययेे है। टॉल्सटॉय, खैय्याम, खलीफा उमर, कबीर, रैदास, गुरुनानक, श्रीकृष्ण के जीवन वृतांत इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

कवि का मानना है कि मजदूरी करने से मन पवित्र होता है तथा सच्चे ऐश्वर्य के दर्शन होते हैं। जब तक धन एवं ऐश्वर्य के स्थान पर मजदूरी को महत्त्व नहीं दिया जायेगा तब तक श्रेष्ठ भारत का निर्माण असंभव है। कविता, साधु और फकीरी ये तीनों दिव्यता से युक्त हैं। इन्हीं से मानव जाति का कल्याण संभव है। जहाँ समरसता का अभाव है वहाँ इनको नहीं देखा जा सकता। बिना शुद्ध पूजा के मूर्ति पूजा व्यर्थ ही है। हम जातिगत वैमनस्य के फलस्वरूप ही जातिगत दरिद्रता को भोग रहे हैं।

पाश्चात्य देशों ने भी अब अपने मानदंडों में परिवर्तन कर लिया है। कल कारखानों की अपेक्षा मानव पूजा होने लगी है। मशीनीकरण के दुष्परिणामों से अवगत होकर अब चेतना संपन्न हो गए हैं। एक ओर गरीबी का साम्राज्य है तो दूसरी ओर मजदूरों के श्रम से बनी ऊंची अट्टालिकाएँ इतरा रही हैं। इंजनों के दुष्परिणाम भुखमरी, बेकारी के रूप में सामने आए हैं। मनुष्य को मनुष्य ही सुख दे सकता है। धन की पूजा करना नास्तिकता का सूचक है। मनुष्य जाति को सुखी बनाना ही सच्ची पूजा, सच्ची इबादत है। चैतन्य पूजा से ही मनुष्य का कल्याण संभव है। समाज का पल्लवन करने वाली धूद की धारा मनुष्य के प्रेममय हृदय, निष्कपट मन तथा मित्रता पूर्ण नेत्रों से ही प्रस्फुटित होगी। तभी चहुंओर हरियाली के दर्शन होंगे। आज से ही यह दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि हम अब हाथ पर हाथ रखकर नहीं बैठेंगे। नियत कर्म को करने में जुट जायेंगे, घर–घर में प्रेम का द्वीप प्रज्वलित होगा, प्रत्येक घर में अनाज के ढेर लगे होंगे और मनुष्य मजदूरी करके प्रेमामृत का मान कर प्रसन्नचित्त होंगे।

'अपनी प्रगति जांचिए'

17. लेखक ने किसान की तुलना व समानता किससे की है?

18. किसकी दीवारें प्रेम के मार्ग को अवरूद्ध करती हैं?

19. समानता के भाव किस में मिलते हैं?

20. भुखमरी के लिए उत्तरदायी कौन है?

21. भेड़ें कैसी ऊन वाली थीं?

22. मनुष्य के हाथ से बने कार्यों में कैसी गंध आती है?

23. श्रम की महत्ता किस निबंध का उद्देश्य था?

24. हल चलाने वालों को क्या कहा जाता है?

4.5 कविता क्या है? (आचार्य रामचंद्र शुक्ल)

शुक्ल युग के प्रवर्त्तक, चिंतनशील निबंधकार, भावात्मक तथा सैद्धांतिक विचारक, विविध विषयों के मर्मज्ञ, अनुवादक, लोक मंगल भावना के समर्थक, रूढ़ियों, अनैतिकताओं के विरोधी, समन्वयवादी भावना को पल्लवित करने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल की साहित्यिक उपलब्धियों को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। चिंतामणि उनके निबंध का श्रेष्ठ संकलन है। कविता क्या है? निबंध में शुक्ल के चिंतन पक्ष का चित्रण मिलता है। उन्होंने सैद्धांतिक एवं मनोवैज्ञानिक निबंधों का सृजन किया।

कविता क्या है? निबंध शुक्ल का काव्यशास्त्रीय निबंध है। इसमें कविता की परिभाषा, कवि का संसार, मनोरंजन, भाषा सौंदर्य का चित्रण किया गया है। हिंदी गद्य को चिंतन तथा वैचारिकता जैसे गुणों से पूर्ण किया है। मार्मिक प्रसंगों का चित्रण करना शुक्ल जी की प्राथमिकता रही है। मानव की व्यवहारिक प्रवृत्तियों का साहित्यिक रूप में विवेचन करना उनका मुख्य उद्देश्य रहा है।

4.5.1 व्याख्या खंड :

जिस प्रकार हृदय की मुक्वावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्म योज्ञ और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण शुक्ल युग के प्रवर्त्तक आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'कविता क्या है?' से लिया गया है।

प्रसंग : कविता को परिभाषित करते हुए शुक्ल जी कहते हैं –

व्याख्या : शुक्ल जी का मानना है कि सांसारिक बंधनों का मोहजाल अपने शिकंजे में मानव को जकड़ लेता है। उसे मानसिक शांति नहीं मिल पाती। जब व्यक्ति की आत्मा इन बंधनों से मुक्त होकर स्वच्छंदता को प्राप्त होती है तब उसकी स्थिति को ज्ञान दशा कहकर संबोधित किया जाता है। यह ज्ञान की दशा ही वास्तविकता से अवगत कराती है। जब मनुष्य का हृदय निजी स्वार्थ को त्यागकर सुख–दुख, लाभ हानि, जय–पराजय, उत्थान–पतन के आकर्षण से स्वतंत्र हो जाता है तो उसके हृदय की अवस्था को रसदशा नाम से अभिहित किया जाता है। हृदय को रसात्मकता के धरातल पर लाने के लिए अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है जिसे नियमों की कड़ी भी कहा जाता है। जिस व्यक्ति की वाणी इन बनाए गए नियमों से संपृक्त होकर मुखरित होती है तो वह कविता कहलाई जाती है। कविता का यह प्रयास जिसे शब्द–साधना कहते हैं कर्म और ज्ञान के प्रांगण में, भावों के उद्वंग से कविता का अस्तित्व सामने लाता है जिसे भावयोग कहा जाता है। शुक्ल जी कवि कर्म की तुलना क्रियाशील व्यक्ति से करते हुए कहते हैं जिस प्रकार क्रियाशील व्यक्ति निस्पृह होकर अपने कर्म में डूब जाता है। ज्ञानी ज्ञान साधना द्वारा परम तत्व को प्राप्त करता है। ठीक उसी प्रकार कवि भी भावविभोर होकर कविता को जन्म देता है।

विशेष :

काव्य की परिभाषा का उल्लेख है।

यहाँ शुक्ल जी की भारतीय काव्यशास्त्र के ज्ञान की छटा दृष्टव्य है।

आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मा से मुक्ति मृत्यु के बाद ही संभव है।

काव्य का जन्म हृदय की सहृदयता द्वारा ही संभव है।

छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद भी काव्य की परिभाषा के लिए आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति का होना आवश्यक मानते हैं।

साधना शब्द आध्यात्मिक पक्ष को मुखरित करता है।

कविता का जन्म शब्दों के अस्तित्व पर आश्रित है।

लक्षणा शब्द शक्ति है।

पारिभाषिक शब्दों की छटा दृष्टव्य है।

भाषा में पैनापन व कसावट का गुण समाहित है।

कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य भाव–भूमि पर ले जाती है जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। कवि अपनी सत्ता को लोकसत्ता में लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण निबंध धारा के प्रबुद्ध आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'कविता क्या है?' से लिया गया है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में शुक्ल जी ने कविता के प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहा है –

व्याख्या : कविता एक ऐसा माध्यम है जो मानव के हृदय को रसात्मकता में पहुँचा देती है। हृदय की तन्मयता से मानव सांसारिक बंधनों के साथ स्वयं के राग–द्वेष से भी दूर हो जाता है। उसकी अपनी वैयक्तिकता सार्वभौमिकता में बदल जाती है। लोक हृदय के साथ उसका रागात्मक संबंध हो जाता है। उसे सांसारिक मोह माया का जाल नहीं फंसा पाता। वह सांसारिक गतिविधियों, संघर्षों, जय–पराजय, जीवन के गूढ़तम रहस्यों के प्रति अनासक्त भाव प्रदर्शित करता है। इस स्थिति में मनुष्य व्यक्तिगत स्वार्थ भूलकर जन सामान्य में डूब जाता है। उसका हृदय इतना संवेदना से युक्त होता है कि वह दूसरों के भावों को समझता है। आत्मसात भी करता है। इसी पुनरावृत्ति में उसके हृदय में मनोभावों की संस्कारिता होती है। सहृदय की विश्व के साथ जुड़ी रागात्मक अनुभूति के फलस्वरूप भावात्मक संबंध स्थापित होते हैं जिससे हमारे संबंधों में प्रगाढ़ता आती है।

विशेष :

कविता का जन्म मनःस्थिति के फलस्वरूप होता है।

यह नायक के साधारणीकरा भाव का वर्णन है।

स्हृदय व्यक्तित्व वैयक्तिकता की अपेक्षा सार्वभौमिकता से युक्त होता है।

मनुष्य का रागात्मक व्यवहार ही समाज तथा विश्व को भावात्मक रूप से जोड़ देता है।

लोक का प्रभाव अमिट तथा स्थायी होता है।

कविता द्वारा मनोविकारों का परिष्कार होता है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली प्रयुक्त हुई है।

प्रसाद गुण है।

अविधा व लक्षणा शब्द शक्ति है।

रागात्मक अनुभूति के फलस्वरूप ही वाल्मीकि ने रामायण का सृजन किया।

काव्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है।

सभ्यता की वृद्धि के साथ–साथ ज्यों–ज्यों मनुष्य के व्यापार बहुरूपी और जटिल होते गए त्यों–त्यों उनके मूल रूप बहुत कुछ आच्छन्न होते गए। भावों के आदिम और सीधे लक्ष्यों के अतिरिक्त और–और लक्ष्यों की उपासना होती गई, वासना जन्म मूल व्यापारों के सिवा बुद्धि द्वारा निश्चित व्यापारों का विधान बढ़ता गया। इस प्रकार बहुत से ऐसे व्यापारों से मनुष्य घिरता गया जिनके साथ उसके भावों का सीधा लगाव नहीं।

संदर्भ : यह गद्यावतरण प्राख्यात निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'कविता क्या है?' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में शुक्ल जी ने मानवीय हृदय परिवर्तन का वर्णन किया है।

व्याख्या : शुक्ल जी का मानना है कि मानव विकास के साथ उसके दृष्टिकोण में भी परिवर्तन स्वाभाविक होता है। उसका कार्य–व्यवहार भी विस्तीर्ण होता जाता है। उसके संबंधों का दायरा बढ़ता जाता है। कार्य की सिद्धि में उतने ही व्यवधान आने शुरू हो जाते हैं। उसका मन निश्चित लक्ष्य से भटक जाता है। भावनाओं में बदलाव आ जाता है। प्रारंभिक काल में उसका लक्ष्य रोटी की व्यवस्था करना, तन ढकने के लिए कपड़ा तथा प्राकृतिक मार से बचने एवं जंगली जानवरों से रक्षा के लिए मकान की आवश्यकता थी। अ बवह भौतिकता की चकाचौंध से चमत्कृत है। सांसारिक ऐश्वर्य को प्राप्त करने की चेष्टा करता है। उसके संबंधों में मन, बुद्धि के साथ वासना का भी समावेश होने लगा है। मानव ने अनेक व्यापारों तथ भावी योजनाओं का प्रयो करके देखा है जिससे उसके क्रिया–कलापों की शैली भी प्रभावित हुई है। मनुष्य की कथनी और करनी में अंतर आ गया है।

विशेष :

सभ्यता के विकास के साथ मानव के क्रियाकलापों में भी परिवर्तन आने लगा है।

वैज्ञानिक उपलब्धि तथा आधुनिक घटनाचक्र से मनुष्य का प्रभावित होना स्वाभाविक है।

ज्यों–ज्यों मानव बुद्धि सम्पन्न हुआ है त्यों–त्यों मानसिक आघात भी सहने पड़े हैं।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

विषम की गूढ़ता शुक्ल की विद्वता का सूचक है।

पुनरुक्ति अलंकार है।

विवेचनात्मक शैली का प्रयोग है।

अविधा शब्द शक्ति व प्रसाद गुण का प्रयोग है।

इसकी प्रच्छन्मता का उद्‌घाटन कवि कर्म का एक मुख्य अंग है। ज्यों–ज्यों सभ्यता बढ़ती जाएगी, त्यों–त्यों कवियों के लिए यह काम बढ़ता जाएगा। मनुष्य के हृदय की वृत्तियों से सीधा संबंध रखने वाले रूपों और व्यापारों को प्रत्यक्ष करने के लिए उसे बहुत से पर्दों को हटाना पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट है कि ज्यों–ज्यों हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के नए–नए आवरण चढ़ते जाएंगे, त्यों–त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जाएगी, दूसरी ओर कवि कर्म कठिन होता जाएगा।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण शुक्ल युग के प्रसिद्ध आलोचक निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'कविता क्या है?' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : शुक्ल जी सभ्यता के आचरण और कवि कर्म की जटिलता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि –

व्याख्या : परिवर्तन प्रकृति का नियम है। सभ्यता भी परिवर्तन के साथ बदलती है। मनुष्य के आचार–विचार, रीति–रिवाज़, मूल प्रवृत्तियाँ तथा मनोभाव भी बदल जाते हैं। कवि को चाहिए कि वह सभ्यता के इस परिवर्तन को अलग कर मानव मूल्यों, मूल मर्म की पहचान करे। कवि का यह क्षेत्र जटिलताओं से भरा हुआ है। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों तक पहुँचने के लिए उसे जीवन के स्वरूप व व्यवहरों को सामने लाना होगा, जिससे मानवता पल्लवित होती हो। विकासशील सभ्यता की गति में छिपी भावनात्मक अभिव्यक्ति खोजनी होगी। कवि के भावों को मनुष्य से तादात्म्य कराने के लिए इन कुप्रथाओं, कुप्रवृत्तियों के आवरण को दूर करना होगा। कविता की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल जी कहते हैं कि कविता के बिना सामान्य दर्शन के लिए उसे कृत्रिमता से दो–चार होना पड़ेगा। उसे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए कविता को आत्मसात् करना होगा। हम जितना सभ्य होते जाएंगे उतनी ही हमारी वृत्तियाँ नए आवरणों से लिप्त होती जाएंगी। इन परिस्थितियों से रक्षा के लिए कविता ही एक ऐसा माध्यम है जो कवि के साथ सामान्य मानव को भी अपने परिवेश के साथ सजग बनाएगी तथा दिशाबोध का भाव जाग्रत करेगी।

विशेष :

सभ्यता एवं मानव वृत्तियों को अन्योन्याश्रित संबंध है।

काव्य में यह शक्ति है जो रोते को हंसा देता है। एकांत आत्म संबल प्रदान करता है।

कविता का जन्म परिस्थितियों पर निर्भर है।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

शुक्ल के अनुसार कविता साधन है।

तुलसी के लिए कविता आत्म संतुष्टि का कारण बनी।

पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार प्रयुक्त हुआ है।

अनंत रूपों में प्रकृति हमारे सामने आती है। – कहीं मधुर, सुसज्जित या सुंदर रूप में; कहीं रूखे बेडौल या कर्कश रूप में, कहीं भव्य, विशाल या विचित्र रूप में; कहीं उग्र कराल या भयंकर रूप में। सच्चे कवि का हृदय उसके इन सब रूपों में लीन होता है, क्योंकि उसके अनुराग का कारण अपना खास सुख भोग नहीं, बल्कि चिर साहचर्य द्वारा प्रतिष्ठित वासना है। जो केवल कूंजित निकुंज और शीतल सुख, स्पर्श, समीर इत्यादि की ही चर्चा किया करते हैं, वे विषयी या भोग लिप्सु हैं।

संदर्भ : यह गद्यावतरण प्रसिद्ध निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबां 'कविता क्या है?' के 'कविता और सृष्टिप्रसार' खंड से लिया गया है।

प्रसंग : इन पंक्तियों द्वारा शुक्ल जी ने कवि वर्ग का उल्लेख करते हुए कहा है –

व्याख्या : मनुष्य प्रकृति का संबंध जन्म जन्मांतर का रहा है। सांसारिक घटनाचक्र से त्रस्त मानव आत्मिक शांति प्राप्त करने के लिए प्रकृति की गोद में जाकर विश्राम करता है। यह प्रकृति हमें मनःस्थिति के अनुरूप नज़र आती है। प्रकृति का कोमल रूप जहाँ मन को आकृष्ट कर लेता है वहीं विकराल रूप जान बचाने को व्यथित भी करता है। शुक्ल जी का कहना है कि सच्चा कवि प्रकृति के इन दोनों रूपों को स्वीकार करता है। इनके द्वारा विषयों पर अपनी राय से अवगत कराता है। प्रकृति से अटूट संबंध के कारण ही रागात्मक भाव भी व्यक्त करता है। जो कवि प्रकृति चित्रण द्वारा फूलों की गंध, लोलुप भ्रमरों, मधुर कंठी कोयल तथा शीतल पवन के स्पर्श का चित्रण करते हैं वे विषय वासनाओं तथा भोगवादी प्रवृत्ति के समर्थक होते हैं। वे सहृदय कवि कहलाने के हकदार नहीं हैं।

विशेष :

प्रकृति ने अनेक रचनाओं के सृजन हेतु पृष्ठभूमि प्रदान की है।

प्रकृति मनुष्य के सुख दुःख का परिचायक है।

कवि को अपने कर्म के प्रति सचेत किया है।

प्रकृति सुखद रूप में मनुष्य को भावविभोर करती है वहीं विकराल रूप में विचार मंथन के लिए विवश भी करती है।

अविधा शब्द शक्ति प्रयोग में लाई गई है।

प्रसाद गुण है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

छायावादी कवियों के लिए प्रकृति ने व्यापक पृष्ठभूमि प्रदान की है।

जो केवल अपने विलास या शरी–सुख की सामग्री ही प्रकृति में ढूंढा करते हैं उनमें उस रागात्मक तत्त्व की कमी है जो व्यक्त सत्ता मात्र के साथ एकता की अनुभूति में लीन करके हृदय की व्यापकता का आभास देता है। संपूर्ण सत्ताएँ एक ही परम सत्ता और संपूर्ण भाव एक ही परम भाव के अंतर्भूत हैं। अतः बुद्धि की क्रिया से हमारा ज्ञान जिस अद्वैत भूमि पर पहुंचता है उसी भूमि तक हमारा भावात्मक हृदय भी इस सत्य–रस के प्रभाव से पहुंचता है। इस प्रकार अंत में जाकर दोनों पक्षों की वृत्तियों का समन्वय हो जाता है। इस समन्वय के बिना मनुष्य की साधना पूरी नहीं हो सकती।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण शुक्ल युग के प्रहरी आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'कविता क्या है?' के कविता और सृष्टि–प्रसार खंड से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में कविता के लक्ष्य का प्रतिपादन करते हुए शुक्ल जी ने कहा है कि ईश्वर प्राप्ति एवं अंतःवृत्तियों का समन्वय कराना है।

व्याख्या : शुक्ल जी का कहना है कि प्रकृति मनुष्य के सामने सुख और दुःख दोनों को साकार रूप में लाती है। कवि का कार्य केवल सुखद स्थिति का अंकन करना ही नहीं होता अपितु दुःख की बेला को उसी रूप में स्वीकार करना है। जो केवल सुख के आकांक्षी हैं उनमें भावनात्मक दृष्टिकोण का अभाव पाया जाता है। प्रकृति द्वारा कवि संपूर्ण सृष्टि के साथ भावात्मक रूप से जुड़ जाता है जिससे समस्त संसार में परमतत्व का अनुभव होने लगता है। इससे कवि के व्यापक दृष्टिकोण का पता चलता है। संसार में भिन्न दिखाई देने वाली वस्तुओं से भी पारस्परिक संबंध पाया जाता है। इस विभिन्नता की नीड़ में एकता के चिन्ह् निहित होते हैं। विविध भाव भंगिमाओं के मूल में एक ही भाव दृष्टव्य होता है जिसे ज्ञान चक्षुओं से जाना जा सकता है। ईश्वरीय सत्य को पाया जा सकता है। हम कुत्सित विचारधारा का परित्याग कर वैयक्तिक चेतना के बल पर परम सत्ता तक पहुंच जाते हैं। भावना और बुद्धि के दो मार्ग भी आगे चलकर एकाकार हो जाते हैं। इनके पारस्परिक अलगाव के फलस्वरूप ज्ञान एवं काव्य सृजन में एकरूपता नहीं मिलती।

विशेष :

शुक्ल की समन्वयवादी भावना का चित्रण है।

पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग है।

बुद्धि, हृदय के पारस्परिक सामंजस्य से ही एकरूपता आती है।

छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद का भी यही मानना था– 'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा पूरी क्यों हो मन की, एक दूसरे से न मिल सकें, यह विडंबना है जीवन की।'

परमसत्ता की व्यापकता को स्वीकार किया है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली प्रयोग में लाई गई है।

परिनिष्ठित एवं रिमार्जित भाषा प्रयुक्त हुई है।

समन्वय के पश्चात् ही ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति होती है।

कविता का अंतिम लक्ष्य जगत के मार्मिक पद्यों का प्रत्यक्षीकरण करके उसके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य स्थापन है। इतने गंभीर उद्देश्य के स्थान पर केवल मनोरंजन का हल्का उद्देश्य सामने रखकर जो कविता का पठन–पाठन या विचार करते हैं, वे रास्ते में ही रह जाने वाले पथिक के समान हैं। कविता पढ़ते समय मनोरंजन आवश्यक होता है। पर उसके उपरांत कुछ और भी होता है और वही सब कुछ है।

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण निबंधकार आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'कविता क्या है?' निबंध के मनोरंजन खंड से लिया गया है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में काव्य प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल जी कहते हैं –

व्याख्या : कविता का लक्ष्य संसार के मार्मिक दृश्यों का वर्णन कर मानवीय संबंध स्थापित करना है। कविता के

पठन–पाठन से हृदय का साधारणीकरण हो जाता है। संसार के मार्मिक प्रसंगों (भूखे नंगे बच्चों) को देखकर कविता इनके साथ रागात्मक संबंध स्थापित कर लेती है। यही कविता का मूल लक्ष्य है। जो काव्य सृजन का लक्ष्य मनोरंजन प्राप्ति ही मानते हैं वे कविता कामिनी से अनभिज्ञ ही रहते हैं। वे शीघ्र ही थकान मानकर यात्रा स्थगित करने वाले पथिक के समान होते हैं। जिस प्रकार रास्ता कभी निश्चित मंजिल का घोतक नहीं होता वह तो लक्ष्य प्राप्ति का द्वार होता है। मनोरंजन से कविता के उद्देश्य की सिद्धि नहीं होती। हृदय की आत्मीय भावना के साथ संबंध स्थापित करना ही मूल लक्ष्य होता है। कविता द्वारा हमारी मनोवृत्तिसष्सें का शुद्धिकरण होता है यही अंतिम एवं मूल लक्ष्य भी माना जाता है।

विशेष :

कविता के प्रयोजन पर प्रकाश डाला गया है।

मार्मिक वर्णन ही कविता को जीवंतता प्रदान करते हैं।

कविता का लक्ष्य हृदय का परिष्कार करना है।

शुक्ल जी का वैचारिक चिंतन व्यक्त है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

लक्षणा शब्द शक्ति प्रयुक्त हुई है।

प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ है।

भाषा में कसावट का गुण है।

कविता केवल वस्तुओं के ही रंग रूप के सौंदर्य की छटा नहीं दिखाती, प्रयुक्त कर्म और मनोवृत्ति के सौंदर्य के भी अत्यंत मार्मिक दृश्य सामने रखती है। वह जिस प्रकार विकसित कमल, रमणी के मुख–मंडल आदि का सौंदर्य मन में लाती है उसी प्रकार उदारता, वीरता, त्याग, दया, प्रेमोत्कर्ष इत्यादि कर्मों और मनोवृत्तियों का सौंदर्य भी मन में जमाती है। जिस प्रकार वह शव को नोचते हुए कुत्तों और श्रृंगालों के वीभत्स व्यापार की झलक दिखाती है उसी प्रकार क्रूरों की हिंसा वृत्ति और दुष्टों की ईर्ष्या आदि की कुरूपता से भी क्षुब्ध करती है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'कविता क्या है?' के सौंदर्य खंड से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में कविता की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल जी कहते हैं–

व्याख्या : कविता को पढ़कर पाठक केवल वस्तु या दृश्य के ही दर्शन नहीं करता अपितु निहित कर्म और मनोवृत्ति के दर्शन भी कर लेता है। कविता समभाव दृष्टि से जगत के शोभनीय पक्षों का चित्रण करती है। जिस प्रकार कविता में हमें एक ओर कमल तथा रमणी के सौंदर्य का पता चलता है ठीक उसी प्रकार वह जीवन के उस पक्ष को भी सामने लाती है, जहाँ हमें उदारता, वीरता, त्याग, दया प्रेम का आदर्श रूप तथा मनोवृत्तियों का सौंदर्य भी मुखरित होता है। आगे शुक्ल जी कहते हैं कि कविता जीवन के शुभ पक्ष के साथ–साथ कुरूप पक्ष को भी सामने लाती है। शव को फाड़ते कुत्ते और श्रृगाल दिखाई देते हैं तथा क्रूरता की झलक, हिंसात्मक स्वरूप तथा दुष्टों की कुरूपता भी मुखरित होती है।

विशेष :

कविता के उद्देश्य पर प्रकाश डाला गया है।

कविता द्वारा भावात्क सौंदर्य का पता चलता है।

कविता में युगीन परिदृश्य के साथ कवि की वैयक्तिकता भी मुखरित होती है।

मानव मूल्यों की महत्ता प्रतिपादित की गई है।

भावानुकूल अभिव्यक्ति मुखरित होती है।

प्रसाद गुण है।

वीभत्स रस का चित्रण किया गया है।

कुरूपता युगीन यथार्थ का बिंब होती है।

मनुष्य के लिए कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य–असभ्य सभी जातियों में, किसी न किसी रूप में पाई जाती है। चाहे इतिहास न हो, दर्शन न हो, पर कविता का प्रचार अवश्य रहेगा। बात यह है कि मुनष्य अपने ही व्यापारों का ऐसा सघन और जटिल मंडल बांधता चला आ रहा है जिसके भीतर बंधा–बंधा वह शेष सृष्टि के साथ अपने हृदय का संबंध भूला–सा रहता है। इस परिस्थिति में मनुष्य को अपनी मनुष्यता खोने का डर बराबर रहता है। इसी से अंतःप्रकृति में मनुष्यता को समय–समय पर जगाते रहने के लिए कविता मनुष्य जाति के साथ चली आ रही है और चलेगी। जानवरों को इसकी जरूरत नहीं।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण शुक्ल युग के प्रवर्त्तक, आलोचक, निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'कविता क्या है?' के कविता की आवश्यकता खंड से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में मानव जीवन में कविता की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल जी कहते हैं –

व्याख्या : जिस प्रकार जिंदा रहने के लिए भोजन पानी की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार मन द्वारा प्रसादन के लिए कविता की उपयोगिता प्रतिपादित की जाती है अर्थात् मानव जीवन कविता के बिना अपूर्ण ही है। इसीलिए संसार में जितनी भी जातियाँ हैं उनके पास अपनी–अपनी कविता है। दर्शन, विज्ञान, इतिहास के बिना जीवन में क्रमबद्धता बनी रहती है लेकिन कविता के बिना रिक्तता ही बनी रहती है। विज्ञान और दर्शन का संबंध चिंतन से है। कविता का संबंध मनुष्य की स्वाभाविक व जन्मजात प्रवृत्तियों से है। प्रगति की दौड़ में मानव ने अपने चारों ओर व्यापारों का आवरण ओढ़ लिया है जिससे जगत से उसका संबंध टूटने सा लगता है जिससे कभी भी मनुष्यता के नष्ट होने का अंदेशा बना रहता है। मनुष्यता का बोध जगत के साथ संबंधों की प्रक्रिया से ही जाना जा सकता है। इस कार्य में कविता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कविता मनुष्य को प्रकृति के साहचर्य का आभास कराती रहती है। मानवीय गुणों को पल्लवित करने के लिए कविता का संबंध मानव जाति से सुदृढ़ रूप में आबद्ध होता है। कविता और मानव का यह अन्योन्याश्रित संबंध चलता ही रहेगा। जब तक मानव में पाशविक प्रवृत्तियों का जन्म नहीं होगा तब तक कविता अपनी उपयोगिता से लाभान्वित करती रहेगी।

विशेष :

कविता और मानव का संबंध प्रदर्शित है।

कविता की उपयोगिता का वर्णन है।

ज्ञान, विज्ञान तथा दर्शन में बुद्धि की अनिवार्यता है जबकि कविता के लिए भावात्क अभिव्यक्ति आवश्यक है।

शुक्ल जी का काव्यशास्त्रीय विवेचन है।

सहृदयशील व्यक्तित्व से ही मानवता पल्लवित होती है।

उर्दू शब्दों का प्रयोग है, जैसे – जरूरत आदि।

कविता द्वारा मानसिक शुद्धिकरण भी होता है जिसे विवेचन सिद्धांत कहते हैं।

मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है।

कविता का स्वरूप हमें सभ्य तथा असभ्य जातियों में भी लोक गीतों के रूप में देखने को मिलता है।

संस्कृतनिष्ठ भाषा प्रयोग में लाई गई है।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

4.5.2 विशेषताएँ :

शुक्ल युग के प्रवर्त्तक आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'कविता क्या है?' निबंध सैद्धांतिक कोटि का है। जो कविता की परिभाषा, बदलते मानदंड, काव्य सृजन की पृष्ठभूमि, मार्मिक तथ्य, व्यवहार, कल्पना, भाषा, मनोरंजन, आवश्यकता, उपादेयता शीर्षकों में विभक्त है। निबंध की विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

(क) परिभाषा – भावों, विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम कविता को माना जाता है। मनोभावों की सहज अभिव्यक्ति कविता को व्यंजित करती है। हृदय की मुक्ति, साधन हेतु जो वाणी शब्द विधान का निर्माण करती है कविता कहलाती है। कविता द्वारा व्यक्ति लोक भूमि पर पहुंच जाता है जहाँ मार्मिक तथ्यों की व्यंजना दिखाई देती है।

(ख) सभ्यता के आवरण और कविता – सभ्यता की वृद्धि के साथ कविता के स्वरूप में भी परिवर्तन होने लगता है। बुद्धि का व्यापार बढ़ने लगा, मान, मर्यादा, अधिकार की मांग बढ़ने लगी। पारस्परिक छल कपट का व्यवहार होने लगा। प्रतिकार का स्वरूप सामने आने लगा। कवियों ने इन्हें कविता में प्रस्तुत करना शुरू कर दिया। सभ्यता के बदलने से कवियों का दायित्व भी बढ़ गया।

(ग) कविता व सृष्टि प्रसार – भावात्मकता का प्रसाद बढ़ने लगा। सहृदयशील व्यक्ति में दया ममता के साथ शौर्य, पराक्रम के भाव भी पैदा हो गये। आंतरिक व बाह्य दो क्षेत्र सामने आए। प्रबंध व मुक्तक साहित्य के दो रूप में अभिव्यक्ति के दर्शन हुए। वाल्मीकि रामायण में लोक चरित्र की प्रधानता थी। बाह्य रूप में प्रकृति की छटा का वर्णन किया जाने लगा। कुमार संभव इसका प्रमाण है। भवभूति का 'उत्तर रामचरित्र' नाटक आंतरिक पक्ष पर टिका है। कालिदास का मेघदूत बाह्य पक्ष का प्रतीक है।

(घ) मार्मिकता – मानव व्यक्तित्त्व में सुख–दुःख लाभ हानि, हर्ष–विषाद, राग–द्वेष, तोष–क्षोम, कृपा–क्रोध आदि भावों की व्यंजना होती है। सुंदर कथन जिन्हें उक्ति तो कहा जाता है भी देखने को मिलती है। वर्षा की झड़ी में, हर्ष उल्लास के साथ वेदना, ग्रीष्म ऋतु में शिथिलता तथा शरद ऋतु कंपन को व्यक्त करती है। पर भावुक कवि इनमें अपनी भावनाओं की अन्विति देता है। जड़ चेतना में पाए जाने वाले रूप व्यापार भी परिस्थितियों का वर्णन माना जाता है। सूक्ष्म चित्रण में गूढ़ व्यंजना भी व्यक्त हुई है।

(ङ) काव्य और व्यवहार – भाव पक्ष ही कवि को काव्य सृजन के लिए बाध्य करता है। जब तक बुद्धि में भावना का मिश्रण न होगा कविता में मौलिकता का गुण नहीं आ सकता। भावात्मक पक्ष ही हमें कर्म के प्रति प्रेरित करता है। भावों की अभिव्यक्ति ही कविता की प्राण होती है। जिस प्रकार अर्थशास्त्री का कर्म क्षेत्र अर्थ है ठीक उसी प्रकार दृश्य वर्णन की भावनात्मक अभिव्यक्ति कवि का कार्य है।

(च) मनुष्यता की उच्च भूमि – मनुष्य की चेष्टाओं, क्रियाकलापों का भावों से संबंध होता है। पशुता से मनुष्यता का निर्माण होता है। क्रोध प्रताड़ा को, हर्ष आनंद को, प्रेम भाव अपनेपन की ध्वनित करता है। मनुष्य की दृष्टि चराचर जगत के उपादानों में सौंदर्य को ढूंढ़ लेती है। कवि, वाणी द्वारा हम संसार के सुख–दुख का अनुमान लगा लेते हैं। इसमें मनुष्यता की उच्च भूमि की प्राप्ति होती है। कविता द्वारा हृदय प्रकृत दशा में आ जाता है। मनुष्य का संपूर्ण जगत के साथ तादात्म्य स्थापित हो ही जाता है।

(ज) मनोरंजन – कविता का मूल लक्ष्य लगत के मार्मिक पक्षों का चित्रण करना है, हृदय का सामंजस्य स्थापित करना है, कविता द्वारा मनोरंजन की पूर्ति करना है। मनोरंजन से ही काव्य की युगीन प्रासंगिकता सिद्ध होती है। मार्मिक पक्ष को पढ़कर पाठक भावविभोर हो जाता है। पंडित जगन्नाथ ने रमणीयता को ही काव्य माना है। सुनिये और कहिये का भाव कौतूहल के साथ मनोरंजन प्रदान करता है।

(झ) सौंदर्य – सौंदर्य वस्तु तथा दृष्टि दोनों में निहित होता है। भावात्मक पक्ष आंतरिक सौंदर्य बोध के परिचायक हैं जबकि प्राकृतिक उपादान बाह्य पक्ष की ओर संकेत करते हैं। दया, ममता, त्याग, वीरता मानव सौंदर्य के अंग हैं। कल्याण की भावना सौंदर्य बोध को व्यक्त करती है।

(ञ) चमत्कार – मनोरंजन से चमत्कार का मार्ग प्रशस्त होता है। उक्ति के चमत्कार में वर्ण विन्यास की झांकी, शब्दों की प्रस्तुति वाक्य की वक्रता, अप्रस्तुत की प्रस्तुति, तथा दूरूह कल्पना का चित्रण देखने को मिलता है। स्वाभाविकता, मार्मिकता का भाव छिपा होता है। मार्मिक व्यंजना उक्ति द्वारा प्रभावकारी होती है।

(ट) कविता की भाषा – भाषा में अविधा, लक्षणा तथा व्यंजना तीनों शब्द शक्तियों का प्रयोग मान्य होता है सात बजे गए का अर्थ अविधा और लक्षणा से ही निकल सकता है। कवि कर्म की सार्थकता लक्षणा में निहित होती है। भावों की अभिव्यक्ति सामान्य जन भाषा की अपेक्षा रखती है। शब्दों के प्रयोग को व्येजित करता है। हाथ पकड़ा और विवाह दोनों दो भावों के सूचक हैं। गुण बोधक शब्दों से भाषा में निखार आता है।

(ठ) अलकार – भाषा में सौंदर्य अलंकारों द्वारा उत्पन्न किया जाता है। कथनी को स्पष्ट करने का ढंग है वर्णन शैली या कथन की पद्धति ही अलंकारों के स्वरूप को स्पष्ट करती है। अलंकार भावना के उत्कर्ष साधन के लिए आवश्यक है।

(ढ) कविता पर अत्याचार – शुक्ल जी का मानना है कि स्वार्थलिप्सा, आत्मप्रशंसा व स्तुति वर्णन द्वारा कविता के मार्ग को कुंठित कर दिया गया है। सच्चे सौंदर्य को महलों में देखना प्रारंभ कर दिया है जिससे घास फूंस की झोपड़ियाँ अनदेखी कर दी गई हैं। निमंत्रण, स्वागत, स्वान्तः सुखाय से कविता पर अत्याचार ध्वनित होता है।

(ण) कविता की आवश्यकता – कविता का स्वरूप प्रत्येक युग व जाति में पाया जाता है। इतिहास, विज्ञान, दर्शन के क्षेत्र भी कविता से अछूते नहीं रहे। मनुष्यता के समाप्त होते समय भी कविता ही याद आने लगती है। मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए कविता आवश्यक है। यही भावनात्मक स्तर मनुष्य और पशु में भेद को स्पष्ट करता है।

4.5.3 भाषा शैली :

रामचंद्र शुक्ल की भाषा में स्वाभाविकता, सरलता, प्रभावोत्पादकता, मार्मिकता जैसे गुणों का समावेश है। भाषागत सौंदर्य निम्नवत् है –

(क) तत्सम शब्दों का प्रयोग – प्रसून, प्रफुल्ल, मुक्तायास, स्फुरण, वक्रता, आनंदोत्सव, छन्दोबद्ध, निर्दिष्ट, प्रच्छन्न, नक्षण आदि।

(ख) अंग्रेजी शब्द – गोदाम, इंजिन, स्टेशन, मोटर, चिक आदि।

(ग) संस्कृत शब्दों का प्रयोग व वर्ण विन्यास – नाहि कर्वोरतिवृत्त मात्रनिर्वहिणात्मपद लाभः शुष्को वृक्षस्तिष्ठतत्पग्रे, तिरसतरूरिह, विलसति पुरतः स्वान्तः सुखाय है शोणित कलित कपाल।

(घ) अलंकार – भावना के उत्कर्ष साधन के लिए प्रयोग किए गए हैं। यमक, अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा का प्रयोग हुआ है।

(ङ) उर्दू, अरबी शब्दों का प्रयोग – फौजदारी, मुकद्दमा, दस्तावेज, जरा, नुसखे, गलीचा, मतलब, कमर, मजमून बंदिश, खैर आदि।

(च) अर्थ गंभीरता के शब्दों का प्रयोग – गिरिधर, मुरारि, त्रिपुरारि, दीनबंधु, चक्रपाणि, मुरलीधर, सव्यसाची, चंद्रमुखी, नंदलाल।

शुक्ल जी ने भाषा को स्पष्ट करने, विचारों, भावों की प्रस्तुति के लिए लाक्षणिक, भावात्मक, वर्णनात्मक, समास, व्यंग्यात्मक आदि शैलियों का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण निम्नवत् हैं –

(क) लाक्षणिकता युक्त शैली

(i) बनन में बागन में बगरो बसंत है

(ii) चूनरि चारू चुई सी परै

(iii) मनहु उमगि अंग–अंग छवि छलकै

(iv) धन्य भूमि वनपंथ पहारा, जहं–जहं नाथ पांव तुम धारा।

(v) समय बीत गया।

(ख) स्वाभाविक शैली – मनुष्य माया के वशीभूत क्लेश, दुःख प्राप्त करता रहता है।

उदाहरण –

डासत ही गई बीति निसा सब कबहुं न नाथ! नींद भरि सोयों।

(ग) वर्णनात्मक शैली – सामान्य दृष्टि बोध से भी मार्मिक तथ्यों की प्रस्तुति की जाती है। वर्षा से हर्ष उल्लास, ग्रीष्म से शिथिलता, शिशर से दीनता, मधुराल से उमंग–ह्रास, प्रकाश से ललक भी देखी जा सकती है।

(घ) काव्यात्मक/आलंकारिक शैली – हवा के झौंकों से उसकी टहनियाँ और पत्ते हिल–हिलकर मानो बुला रहे हैं।

(ङ) भावात्मक शैली – वह सि प्रकार विकसित कमल रमणी के मुख मंडल आदि का सौंदर्य मन में लाती है उसी प्रकार उदारता, वीरता, त्याग, दया, प्रेमोत्कर्ष इत्यादि कर्मों और मनोवृत्तियों का सौंदर्य भी मन में जमाती है।

4.5.4 निष्कर्ष :

'कविता क्या है?' शुक्ल जी का सैद्धांतिक निबंध है, इस निबंध में कविता की परिभाषा, व्याख्या, जीवन से संबंध, उपयोगिता, आवश्यकता पर विचार व्यक्त किया गया है। साथ ही कविता के आवश्यक अंगों भाषा, अलंकार तथा सौंदर्य आदि का विवेचन भी किया गया है।

रसात्मकं वाक्यं काव्यम्, शब्दार्थौ सहितां काव्यम्, रमणीयार्थ–प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्– आदि परिभाषाओं में काव्य को स्पष्ट किया गया है। शुक्ल जी ने कविता को भवयोग तथा कर्मयोग से अविहित किया है। ह्रदय की मुक्तावस्था के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती है उसे कविता नाम से पहचाना जाने लगा। कविता मनुष्य की स्वार्थलिप्सा से निकालकर लोक सामान्य भूमि पर ले जाती है।

मानव विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप मूलभाव सभ्यता के आवरण में छिपते चले गए। बौद्धिक क्लिष्टता चहुं ओद दिखाई देने लगी, जिसका प्रतिफल घृणा, द्वेष, प्रतिकार, ईर्ष्या के रूप में सामने आने लगा। धोखेबाजी ने अपना उग्र रूप धारण कर लिया। कविता भी इन दुष्प्रभावों से स्वयं को अछूता न रख सकी।

कविता का मानव की रसात्मक वृत्तियों के साथ सांसारिक घटना चक्र से भी संबंध होता है। श्रेष्ठ काव्य का जन्म मानव के इर्द–गिर्द तथा मनुष्येत्तर बाह्य सृष्टि से हो सका है। वाल्मीकि रामायण नर क्षेत्र का श्रेष्ठ उदाहरण है। कुमार संभव ब्राह्य सृष्टि का प्रमाण है। प्रकृति की मनोरम झांकी भी कविता को प्रेरणा प्रदान करती है। सच्चा कवि प्रकृति के कण–कण से अपना आत्मीय संबंध स्थापित करता है तथा अपनी काव्यात्मक अभिव्यक्ति से अवगत कराता है।

पशु–पक्षी, सुख–दुख, हर्ष–विषाद, राग–द्वेष, कृपा, क्रोध आदि मार्मिक अभिव्यक्ति के साधन हैं। पशु पक्षियों का जीवन दुष्कर हो गया है। जंगलों का कटान जारी है। इनको भी जीने का अधिकार है। फलस्वरूप सह्रदय कवि द्रवित होकर अभिव्यक्ति के लिए बाध्य होता है। व्यापार परिस्थितियाँ भी काव्य सृजन को प्रेरित करती हैं। कहीं नदी की कल–कल ध्वनि तो कहीं लोक गीत की मधुर तान मन को आकृष्ट कर लेती है। वैचारिक मंथन से अभिव्यक्ति में स्पष्टता झलकती है। मर्मस्पर्शी वर्णन इसी का प्रतिफल है।

काव्य द्वारा मानव व्यवहार भी दिखाई देता है। जटिल बुद्धि व्यापार के साथ कोमल भाव भंगिमा भी निहित होती है। करुणा, दया, भावों की दुनिया में कौटिल्य का कूटनीज्ञि पक्ष मुखरित नहीं होता। क्रोध, करुणा, प्रतिकार, भय, उत्कंठा से ही यह दोनों अपने लक्ष्य में सफल हुए हैं।

कविता मनुष्य की भाव भंगिमा का साकार रूप है। सभ्यता के विकास के साथ ज्ञान की भी वृद्धि हुई। मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन आने लगा है। कवि का ह्रदय भी प्रकृति पशु–पक्षियों के चित्रण में डूबने लगा है। संपूर्ण जगत के साथ आत्मीय संबंध स्थापित हो गये। संसार के दुःख दुर्द आनंद–क्लेश उन्मुक्त भाव से अनुभव करना ही कवि कर्म की भावभूमि है। कविता ही मनुष्य को प्रकृत दशा में पहुंचाती है। उसके आंसुओं में जगत का दुःख व्यंजित है।

काव्य का जन्म भावना और कल्पना के मिश्रण से ही संभव हुआ। साहित्य की भावना ही वर्तमान की कल्पना बन गई है। जिस प्रकार भक्ति के लिए उपासना आवश्यक है ठीक उसी प्रकार कवि के लिए कल्पना अनिवार्य है। विधायक और ग्राहक कल्पना के ही दो रूप हैं। पाश्चात्य साहित्य कल्पना की बेसाखी पर टिका है। कवि का संबंध विधायक कल्पना से होता है। ग्राहक कल्पना पाठक या श्रोता का अनिवार्य अंग है। शुक्ल जी का मानना है कि कविता द्वारा मनोरंजन होता है। इसका लक्ष्य जगत के मार्मिक पक्षों का चित्रण करना है। कविता हमारे एकांत का मिमत्र है। आनंद प्राप्ति का साधन है।

प्रकृति को सौंदर्य का भंडार कहा जाता है। रात में फैली दुग्धधवल चन्द्रमा की किरणें किसे शीतलता प्रदान नहीं करतीं। मानव मनोभावानुकूल प्रकृति को व्यंजित किया गया है। सौंदर्य का संबंध बाह्य पक्ष के साथ आंतरिक पक्ष से भी होता है। सूरदास की गोपियाँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। शुक्ल जी का मानना है कि जिस प्रकार भक्त अपने आराध्य की उपासना में स्वयं को भूला देता है ठीक उसी प्रकार कवि भी मार्मिक तथ्यों की प्रस्तुति हेतु कविता को रचता है। सह्रदय पाठक जहाँ एक ओर सीता प्रसंग पर आंसू बहाने को बाध्य होता है वहीं रावण प्रसंग पर

दाँत भींच लेता है, भौंहें तान लेता है। शुभ पक्ष का चित्रण करना ही काव्य का सौंदर्य है।

काव्य में चमत्कार का होना स्वाभाविक माना जाता है। उक्ति के चमत्कार से आशय मनोरंजन की अभिवृद्धि करना है। वर्ण विन्यास, वचन वक्रता, अप्रस्तुत विधान, कल्पना, चमत्कार के अनिवार्य अंग हैं। शुक्ल जी ने भावानुमोदित व अन्तःवृत्तियों से संबंधित चमत्कारिक उक्ति को ही काव्य माना है। उक्ति का अद्‌भुत तथा लोकोत्तर होना आवश्यक है। कविता में सौंदर्य की अभिवृद्धि करने वाले उपकरणों में अलंकार सर्वोपरि हैं। सौंदर्य की सृष्टि करने में सहायक हैं। शुक्ल के अनुसार अलंकार प्रस्तुत भाव की भावना के उत्कर्ष साधन के लिए हैं।

कविता स्वतः उत्पन्न सहृदय व्यक्तियों की अभिव्यक्ति का प्रमाण है। लेकिन स्वार्थ लिप्सा व लोभ प्रेरित मनुष्यों ने प्रशंसा, चाटुकारिता युक्त काव्य–सृजन किया जिसे काव्य नहीं माना जा सकता। निमंत्रण, आगमन, प्रशंसा से युक्त काव्य काव्य न रह कर पहेली बन जाता है। सच्चे कवि सुख, ऐश्वर्य से कोसों दूर रहते हैं।

कविता युग की सार्वभौमिक अभिव्यक्ति होती है। आदि काल से उत्पन्न अनंतकाल तक अजस्त्र रूप में होती रहेगी। दर्शन, इतिहास, विज्ञान के बिना भी कविता लिखी जाती रहेगी। मानवीय प्रतिष्ठा हेतु शब्द सृजन आवश्यक माना जायेगा। जीवन जगत की यथार्थ अभिव्यक्ति काव्य द्वारा होती ही रहेगी।

'अपनी प्रगति जांचिए'

25. कविता क्या है?

26 काव्य का जन्म कैसे संभव है?

27. कविता में किस पक्ष की प्रधानता होती है?

28. उक्ति से क्या पैदा होता है?

29. लाक्षणिकता किस युग की विशेषता है?

30. मनोवैज्ञानिक निबंध किसने लिखे?

31. भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम क्या है?

32. किसके द्वारा संस्कारों की शुद्धि का साधन संभव है?

4.6 नाखून क्यों बढते हैं? (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ऐसे कथाकार हैं, जिन्होंने स्वतंत्रता पूर्व रचना प्रक्रिया शुरू की और स्वतंत्रता पश्चात् उसे प्रौढ़ता से युक्त किया। उनके लेखन में कालिदास का लालित्य, बाणभट्ट का समास गुंफन, रवीन्द्र की मानवीय भावना, कबीर के समान मनमौजी स्वभाव देखने को मिलता है। सांस्कृतिक बोध का दिग्दर्शन कराते हैं। उनके निबंधों में विचार शृंखला देखने को मिलती है। उपन्यास, निबंधकार का गुण विद्यमान है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में विषय की गंभीरता तथा मानवतावादी भावबोध मिलता है। उनके निबंध उनकी विद्वता गंभीर व्यक्तित्व, वैचारिकता को दर्शाते हैं। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध के उत्स में जिज्ञासा मानव की मूलभूत आवश्यकता, ऐतिहासिक संदर्भ, संस्कृति की छटा, मानव व पशु का अंतर, भौतिकवादी भावना, चारित्रिक वर्णन को वर्णित करना है।

4.6.1 व्याख्या खंड :

नखधर मनुष्य अब एटम बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़

रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतर वाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के लखदंतावलंबी जीव हो पशु के साथ एक ही सतह पर विचरण करने वाले और चरने वाले।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण ललित, निबंधकार, उपन्यासकार मानवतावादी लेखक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं,' निबंध से लिया गया है।

प्रसंग : इन पक्तियों द्वारा लेखक अभिव्यक्त करता है कि वैज्ञानिक चकाचौंध से आकृष्ट होकर मानव ने विनाशकारी हथियारों का सहारा लेना शुरू कर दिा है। इससे मानव जाति का प्रगतिमार्ग अवरूद्ध हो गया है। द्विवेदी जी ने मानव की बदलती मानसिकता का वणर्न करते हुए लिखा है –

व्याख्या : जब मनुष्य आदि मानव था अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं पर आश्रित था। बाह्य आक्रमण से बचने के लिए उसके बड़े तथा नुकीले नाखून हथियार का काम करते थे। उससे मानवता कलंकित नहीं होती थी। उसके इन नाखूनों को देखकर पाशविक प्रवृत्ति का ज्ञान हो जाता था। भविष्य के प्रति चिंतित नहीं था उसका वर्तमान ही सब कुछ था। लेकिन मनुष्य ने जैसे–जैसे प्रगति की उसकी इच्छाएँ भी बलवती होती गई। फलस्वरूप अनेक विपत्तियों का सामना करना उसकी विवशता बन गई। इनको हल करने के लिए नाखूनों के स्थान पर विनाशकारी हथयारों, एटम बमों का सहारा लेना मजबूरी बन गया। आज वह विनाश के कगार पर खड़ा है कभी अपने अतीत को देखकर पश्चाताप करता है तो कभी भविष्य को देखकर उसकी आंखों से नींद उड़ जाती है। आज वह सभ्य तथा हथियारों से सुसज्जित होने पर भी संतुष्ट नहीं है। उसके नाखून आज भी उसी क्रम से बढ़ रहे हैं। विकास के पश्चात् भी पशुता, बर्बरता का प्रतीक नाखूनों में आज भी उसकी प्राचीन पशु हिंसक प्रवृत्ति विद्यमान है। द्विवेदी जी कहते हैं कि मानव जब अपने अतीत पर दृष्टिपात करता है तो उसे दांत और नाखूनों के रूप में अपना आदि मानव अस्तित्व दिखाई देता है जिससे उसके पशुवत होने का अनुमान लगाया जा सकता है। खाने–पीने तथा सोने वाले जानवर की तरह मानव का स्वरूप है। सौंदर्य बोध की झांकी के दर्शन नहीं होते हैं। एटम बमों के रूप में मनुष्य के नाखून की झलक दिखाई देती है। हथियारों के जमा करने की प्रवृत्ति से पशुवत व्यवहार का बोध होता है। अमानवीय पशुता का प्रचलन वर्तमान युग का प्रचलन हो गया है।

विशेष :

मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति का वर्णन किया है।

सभ्यता के विकास के साथ ही उसकी सोच भी बदलनी होगी तभी आधुनिकता की दौड़ में शामिल हो सकते हैं।

द्विवेदी का मानना है कि युद्ध पशुता का प्रतीक है तथा इससे मानवता कलंकित होती है।

वर्तमान युग में हथियारों के प्रति बढ़ता रूझान भविष्य के लिए खतरा पैदा करता है।

मानव के इतिहास की वर्तमान में प्रस्तुति की है।

बुद्धि, चेतना का धरातल ही पशु और मानव में अंतर स्पष्ट करता है।

द्विवेदी जी के गंभीर व्यक्तित्व की छाप दिखाई देती है।

अविधा शब्दशक्ति प्रयुक्त हुई है।

प्रसाद गुण है।

तुलनात्मक अध्ययन की छाप है।

मानव शरीर का अध्ययन करने वाले प्राणि–विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव चित्त की भांति मानव शरीर में भी बहुत सी अभ्यास जन्य सहज वृत्तियाँ रह गई हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है वे वृत्तियाँ अनायास ही और शरीर के अनजान में भी अपने–आप काम करती हैं। नाखू का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दांत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है और असल में सहजात वृत्तियाँ अनजान की स्मृतियों को ही कहते हैं।

संदर्भ : यह गद्यावतरण उपन्यासकार, निबंधकार, मानवतावादी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : आदि मानव की प्रवृत्तियों का वर्तमान में शस्त्रों के रूप में पाया जाना चिंता का विषय है। नाखून बढ़ाने की सोच के मूल में पशुता ही दिखाई देती है जबकि नाखूनों के काटने से सभ्यता एवं संस्कृति का बोध होता है। मनुष्य ने एटम बमों तथा विनाशकारी हथियारों को एकत्र करना शुरू कर दिया है जिससे मानव सभ्यता पर विनाश के बादल मंडरा रहे हैं। मानवता की हिमायत करते हुए द्विवेदी जी कहते हैं कि –

व्याख्या : मानव में पाई जाने वाली प्रवृत्तियों में पाशविक लक्षणों का पाया जाना शुभ नहीं है। विकास के फलस्वरूप भी मानव का अतीत की प्रवृत्तियों से मोह भंग नहीं हुआ है। इसीलिए वह विनाशकारी कार्यों के प्रति उत्सुकता से बढ़ रहा है। समय के साथ मनुष्यों की सोच भी बदलनी होगी तभी हम विकास कर सकेंगे। शस्त्रों की होड़ से भविष्य भी सुरक्षित नहीं रह सकता। मानव का नाखूनों को बढ़ाना आदिम युग की आवश्यकता थी आज वह व्यर्थ सिद्ध हो रही है। बार–बार इन्हीं प्रवृत्तियों का मुखर होना पशुता का प्रतीक है। इन प्रवृत्तियों से उसे संबल प्रदान होता है इसीलिए उनके प्रति चिपका हुआ है। आदिम प्रवृत्तियों का स्वरूप वर्तमान में भी दिखाई देता है। द्विवेदी जी इनका क्रमशः उल्लेख करते हुए कहते हैं कि नाखून का बढ़ना उनमें से एक है। बालों का बढ़ना भी स्वाभाविक है, दांतों का पुनः निकल आना इसका प्रमाण है। एक समय था, युग की मांग थी मनुष्य का इनके बिना जीवन सुरक्षित नहीं था। समय के बदलने के साथ अब यह प्रवृत्तियाँ व्यर्थ सिद्ध हो गई हैं। नाखूनों की आवश्यकता नहीं है फिर भी बढ़ना जारी है। पहले बालों को शारीरिक सुरक्षा का साधन माना जाता था। लेकिन अब यह फैशन का प्रतीक बन गया है। अब मनुष्य को तन ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्र उपलब्ध हैं। दांतों का प्रयोग आदि युग में भोजन चबाने में किया जाता था अब छीलने, काटने के लिए मशीनें हैं। पलकों का गिरना व पुनः उठना इनमें से एक है। द्विवेदी जी का मानना है कि यह प्रवृत्तियाँ जन्मजात हैं इसीलिए स्वाभाविक रूप से आज भी मौजूद हैं। मानव का मन इनसे मुक्त नहीं हो सकता है। आज ये जीवन का अनिवार्य अंग बन गई हैं।

विशेष :

आदि मानव और वर्तमान मानव में तुलनात्मक अध्ययन द्वारा निष्कर्ष निकाला गया है।

मानव के लिए जन्मजात प्रवृत्तियों को छोड़ पाना जटिल होता है।

द्विवेदी जी के गवेषणात्मक अध्ययन की झलक है।

द्विवेदी जी की भविष्योन्मुखी जीवन–दृष्टि का चित्रण है।

मानवता के द्वारा ही पाशविक प्रवृत्तियों को दूर किया जा सकता है।

वैज्ञानिक उपलब्धि की भीड़ में छिपी विनाशकारी लक्षणों की ओर संकेत किया है।

प्रसाद गुण प्रयुक्त हुआ है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

इतिहास का अध्ययन वर्तमान को सुधारने व भविष्य को संभालने के लिए किया जाता है।

युद्ध की विभीषिका से जन धन के साथ संस्कृति व सभ्यता भी विलुप्त हो जाती है।

हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या पर नाना भावों और नाना पहलुओं से विचार किया गया है। हम कोई नौसिखिए नहीं हैं, जो रातों–रात अनजान जंगल में पहुंचकर अरक्षित छोड़ दिए गए हैं। हमारी परंपरा महिमामयी, उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्जवल हैं। हमारे अनजान में भी ये बातें हमें एक खाद दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं। यह जरूर है कि परिस्थितियाँ बदल गई हैं। उपकरण नए हो गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है पर मूल समस्याएँ बहु अधिक नहीं बदली हैं।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबंधकार, आलोचक, उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में हथियारों की होड़ से चिंतित द्विवेदी जी मानवता संरक्षण के लिए हथियार को त्याज्य बताते हैं।

व्याख्या : द्विवेदी जी का मानना है कि इतिहास हमें भविष्य के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। इतिहास हमारे अतीत का आईना होता है। मानव की पाश्विक प्रवृत्तियों के लक्षण प्राचीन ग्रंथों में देखने को मिलते हैं। सभ्यता एवं संस्कृति हमारे अतीत का प्रमाण होती है। हमारे दर्शन ग्रंथों में इसका प्रमाण उपलब्ध है। हमारा वैचारिक पक्ष सुदृढ़ है। विभिन्न समस्याओं पर अपने विवेक से अवगत कराया गया है। परिपक्वता के फलस्वरूप ही हम नौसिखिए नहीं कहलाते। हमारा अतीत भले ही पाश्विक रहा हो लेकिर हम लक्ष्य से भ्रमित नहीं हुए। हमने प्रश्नों के मूल में जाकर समस्या का हल ढूंढ निकाला है तथा संस्कारों से अपने जीवन को सुसंस्कृत कर लिया है। परंपरानुसार हम दिशा निर्देश के आधार पर लक्ष्य को प्राप्त कर रहे हैं जिसके फलस्वरूप अनेक समस्याओं का सामना भी करना पड़ रहा है। हमारी मूल समस्याएँ भी हल होने लगी हैं। मानवता के लिए हमने अपना दृष्टिकोण नहीं बदला। हम अपनी पाश्विक प्रवृत्तियों को छोड़ने को बाध्य हो रहे हैं।

विशेष :

भारतीय चिंतन पद्धति का वर्णन है।

मानवता का समर्थन करना द्विवेदी जी की विशेषत रही है।

इतिहास हमारे अतीत का संग्रहालय है जिससे हमें भविष्य के लिए दिशा निर्देश प्राप्त होता है।

संस्कारों की संख्या 16 होती है जो मनुष्य के जन्म से मृत्योपरांत तक चलते हैं।

संस्कारित व्यक्ति ही मानवता का समर्थक होता है।

एटम बमों के आविष्कार से मानवता का मार्ग अवरूद्ध हो गया है।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति प्रयोग हुई है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

परिस्थिति अनुरूप मनुष्य का बदलना युग–चेतना का द्योतक है।

परंतु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसंधित्सा के नशे में चूर होकर अपना सर्वस्व खो दें। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नए खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जांच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण कर लेते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते हैं। सो हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्व संचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आए, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण निबंधकार, उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इस गद्यांश में द्विवेदी जी कहते हैं कि मानव की आदिम प्रवृत्तियों से पशुता का बोध होता है उसका परित्याग करना मनुष्यता का सूचक है। मानव ने हथियारों का निर्माण करके प्रगति के मार्ग में अवरोध खड़ा कर दिया है। द्विवेदी जी ने मानवता की वकालत करते हुए कहा –

व्याख्या : मानव ने भौतिकता के साथ शस्त्रों की होड़ में स्वयं को धकेल दिया है। पारस्परिक स्पर्धा के फलस्वरूप अपने संस्कारों को भूल गया है। परंपरा को विस्मृत कर दिया है। नवीनता के मोह में अपनी विरासत को भुला देना न्यायोचित नहीं है। उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सब पुराने अच्छे नहीं होते और सब नए भी ग्रहणीय नहीं होते। अच्छाई बुराई का संबंध युग विशेष की अपेक्षा नहीं रखता। विवेकशीलता ही वह माध्यम है जिससे हम नूतन और पुरातन में सामंजस्य स्थापित कर ग्रहण योग्य स्वीकार कर सकते हैं। यह तर्क के आधार पर ही संभव है। द्विवेदी जी कहते हैं कि मूढ़ व्यक्ति जिनके पास विवेक नहीं होता, अंधानुकरण के पोषक होते हैं वही लक्ष्य से भटक जाते हैं। लेखक इसके लिए परीक्षण तर्क को आधार मानकर निर्णय लेना उचित मानता है। परंपरा का मूल्यांकन करने के लिए मानव हित सर्वोपरि होना चाहिए। आलोचनात्मक विवेक द्वारा ही यह संभव हो सकता है।

विशेष :

द्विवेदी जी अंधानुकरण का त्याग कर नूतन दृष्टिकोण अपनाने पर बल देते हैं।

मानवतावादी चिंतन भारतीय दर्शन की विशेषता रही है।

वर्तमान समस्या का हल ढूंढ़ने के लिए इतिहास का अध्ययन अपेक्षित है।

संस्कृत के प्रकांड विद्वान कालिदास का अभिमत विवेक सम्मत व न्याय संगत है।

विवेक रहित व्यक्ति ही दिग्भ्रमित होता है।

द्विवेदी जी हितकारी तथ्य की प्राप्ति के लिए विवेक दृष्टि आवश्यक मानते हैं।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति प्रयोग की गई है।

शोध करने की प्रवृत्ति ही अनुसंधित्सा कहलाती है।

भारत वर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को समझने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य के लिए की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बंधनों से अपने को बांधना। मनुष्य पशु से किस बात से भिन्न है। आहार–निद्रा आदि पशु–सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख–दुःख के प्रति संवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के उद्‌भावित बंधन हैं।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबंधकार, उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों द्वारा द्विवेदी जी पाश्विक प्रवृत्तियों का परित्याग करने, मानवता की स्थापना करने, शस्त्रों की होड़ को विनाशकारी मानने, सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा करने तथा भारतीय चिंतन का दिग्दर्शन करने पर बल देते हुए कहते हैं –

व्याख्या : भारतीय संस्कृति में आत्मसात का गुण विशिष्टता का द्योतक है। यहाँ के ऋषियों ने मानव धर्म का समर्थन किया है। मानवीय पाश्विक प्रवृत्ति को दूर करने के लिए अपने चिंतन से अवगत कराया है। द्विवेदी जी का मानना है कि भारतीय इतिहास वर्णों एवं जातियों का यथार्थ बिंब प्रस्तुत करता है। संयम व धैर्य का पालन कराया गया है। मानव अपने विवेक द्वाा निर्णय कर जीवनशैली बिताता है। स्वयं सांसारिक बंधनों में आबद्ध होने पर भी कभी सत्य व विवेक का दामन नहीं छोड़ता। द्विवेदी जी ने मानव और पशु में विभाजक रेखा को स्वीकारते हुए कहा है कि विवेकशीलता व चिंतन ही दोनों के भेद का आधार हैं। मानव स्वयं अनुशासित रहकर संवेदना एवं सहानुभूति को व्यक्त करता है। तप, त्याग, मानवता, श्रद्धा, संयम के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति के आदर्शों से विमुख नहीं होता। उपरोक्त गुणों के फलस्वरूप ही वह मानवोचित व्यवहार करने को बाध्य है। यह मनुष्य का स्वयं की सोच का परिणाम है।

विशेष :

भारतीय संस्कृति एवं आदर्श का चित्रण है।

भारतीय दर्शन तथा चिंतन द्वारा मानवता की प्रतिष्ठा की गई है।

बौद्धिक चिंतन ही मनुष्य को पशु से अलग करता है।

मनुष्य के लिए साहित्य, संगीत, कला की अनिवार्यता होती है।

प्रेम, श्रद्धा, त्याग संयम, तप, मनुष्यता भारतीय संस्कृति के अंग रहे हैं।

भारत धर्मात्माओं का देश है समय–समय पर इन धर्मात्माओं ने अपने उपदेशों से समाज को दिशा–निर्देश प्रदान किया है।

चार वर्ण माने जाते हैं– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

प्रसाद गुण है।

तत्सम शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

उसने कहा था बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को उठाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्मतोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा प्रेम ही बड़ी चीज है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, स्व का बंधन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी । नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई, आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी रही।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध से लिया गया है।

प्रसंग : इन पंक्तियों द्वारा लेखक ने मानवता का समर्थन कर गांधीवादी विचारधारा का समर्थन किया है।

व्याख्या : द्विवेदी जी का मानना था कि मनुष्य को बाह्य जगत की अपेक्षा आंतरिक जगत का अवलोकन करना चाहिए क्योंकि आंतरिक नियंत्रण से बाह्य नियंत्रण स्वतः हो जाता है। मनुष्य को अपनी अभिव्यक्ति को तोलकर बोलना चाहिए। क्रोध, विनाश, हिंसा, द्वेष पाशविक प्रवृत्तियाँ हैं। इन पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। मन में प्रतिकार की भावना का परित्याग कर देना चाहिए। भ्रम के निवारण हेतु विवेक का पालन करना अपेक्षित है। गांधी जी की यही शिक्षाएँ थीं। स्वयं कष्ट सहकर दूसरों की सहायता करो। आराम करने से जीवन में शिथिलता आती है। घृणा का त्यागकर प्रेम को परिपक्व बनाना चाहिए, क्योंकि इससे मानवता बढ़ती है, संबंधों में प्रगाढ़ता आती है। अपने हृदय को शुद्ध रखना चाहिए। कर्म में लीन रहना चाहिए, अकर्मण्य रहना आलस्य को दर्शाता है। गांधी जी ने संसार में 'प्रेम' को सर्वोपरि माना है क्योंकि वह आंतरिक पक्ष की अनुभूति कराता है। उदंडता से पशुता झलकती है। गांधी जी की शिक्षाएं सर्वस्वीकार्य हैं, उनसे अलगाव या भिन्नता का कोई संबंध नहीं है। मनुष्य जब किसी की जान लेने का प्रयत्न करता है तो उसमें पाशविक प्रवृत्ति हावी हो जाती है, यम माना जा सकता है कि अभी उसने पशुवत आचरण का त्याग नहीं किया है अर्थात् उसके नाखून के समान आदिम प्रवृत्तियाँ भी जीवित हैं।

विशेष :

गांधी जी के दर्शन की अभिव्यक्ति है।

वर्तमान में मनुष्यों में पशुवत आचरण का होना चिंता का विषय है।

प्रेम का क्षेत्र व्यापक है जिसकी सीमा में परिवार, समाज तथा राष्ट्रीय परिदृश्य समाहित हो जाता है।

कर्म करना प्राणीमात्र का धर्म है।

यह संसार कर्मस्थल है कर्मानुसार फल अवश्य प्राप्त होता है।

स्वयं कष्ट सहकर दूसरों की सहायता करने से सेवा का भाव व्यक्त होता है।

आराम करना प्रगति की दौड़ में स्वयं को अलग कर देना है।

आत्म संतोष सबसे बड़ा फल है।

वृद्ध जनों की शिक्षाएँ, उपदेश व्यावहारिकता से पूर्ण होती है।

अहिंसा ही परम धर्म है।

सत्य बोलो, झूठ बोलना पाप है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

प्रसाद गुण का प्रयोग है।

संवाद शैली के दर्शन होते हैं।

भावानुकूल भाषा का चित्रण है।

सफलता और चरितार्थता में अंतर है। मनुष्य मरणास्त्रों के संचयन से बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को भी पा सकता है, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सभ्यता का नाम दे रखा है। परंतु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से देने में है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात् वृद्धि का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना है, उस स्वनिर्धारित, आत्म बंधन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबंधकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध से लिया गया है।

प्रसंग : इन पंक्तियों द्वारा मानवता का समर्थन कर चरित्र पर प्रकाश डालते हुए द्विवेदी जी कहते हैं –

व्याख्या : सफलता प्राप्त करना और मानव चरित्र की विशेषताएँ दो अलग–अलग पहलू हैं। वैज्ञानिक परिवेश में मनुष्य में शस्त्रों के प्रति आकर्षण बाह्य उपकरण कहलाता है। भौतिकता से मनुष्य के रहन–सहन का स्तर ऊंचा हुआ है। उसकी वास्तविक पग्रति तभी होगी ज बवह आंतरिक गुणों से सुसज्जित होगा। चारित्रिक विशेषताएँ सभी को स्वीकार्य होंगी। प्रेम, मित्रता, त्याग में मानवता के लक्षण समाहित हैं। स्वयं का परित्याग कर समाज कल्याण के लिए अर्पित कर देने से मानव चरित्र का उज्ज्वल पक्ष मुखरित होता है। लेकिन भौतिकता के आकर्षण से मनुष्य विमुख न होकर उसमें डूब गया है। धन एकत्र करना उसके जीवन का लक्ष्य बन गया है। लोक मंगल की भावना के बिना मानवता पल्लवित नहीं होती। जिस प्रकार नाखू बढ़ने से नैसर्गिक पक्ष का बोध होता है, ठीक उसी प्रकार उनको नियमित काटने से मानवीय चरित्र मुखरित होता है। मानव पक्ष का उज्ज्वल पहलू वह होता है जिसमें मनुष्य स्वयं कमल के समान निस्पृह रहकर निःस्वार्थ भाव से मानव सेवा में लीन रहता है।

विशेष :

मानवतावादी भावना का चित्रण है।

मानवीय गुणों के कारण ही मनुष्य पशु से श्रेष्ठ है।

चरित्र की रक्षा बलपूर्वक करनी चाहिए।

प्रेम जीवन का वह पक्ष है जिसके बिना संबंधों की संकल्पना संभव नहीं है।

त्याग भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है।

अर्पण की भावना से चरित्र की विशेषता मुखरित होती है।

सफलता और मानवता में अंतर दृष्टव्य है।

अविधा शब्द शक्ति प्रयोग में लाई गई है।

प्रसाद गुण है।

भाषा में संप्रेषण का गुण विद्यमान है।

4.6.2 विशेषताएँ :

ललित निबंधकार, सांस्कृतिक चेतना के समर्थक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाखून क्यों बढ़ते हैं? निबंध में बाल जिज्ञासा, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, समय की मांग, मानव व पशु में भिन्नता, वर्तमान युग में मनुष्य की छटपटाहट, सफलता व चरित्र में अंतर स्पष्ट किया है। निबंध की विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

(क) बाल मनोविज्ञान – बच्चे स्वभाव से जितने नटखट होते हैं उतने ही जिज्ञासु भी होते हैं। तथ्य की तह में जाकर प्रश्नों का हल खोजना बालमनोविज्ञान की विशेषता है। इस निबंध में नाखून क्यों बढ़ते हैं? साधारण प्रश्न को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है। नाखून का बढ़ना जिज्ञासा का द्योतक है।

(ख) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि – मनुष्य का इतिहास उसका लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है। नाखून क्यों बढ़ते हैं। प्रश्न की भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही है। आदि मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति, खान–पान, शत्रुओं से रक्षा व प्रतिकार के लिए नाखूनों को बढ़ाता था। यही दांत थे यही शस्त्र भी। पत्थर, हड्डी एवं दांतों से भी शस्त्रों का निर्माण कर जीवन को सुखी बनाने का यत्न किया गया। देवता और असुरों के मध्य युद्ध इसके प्रमाण हैं।

(ग) विकास – मानव विकास के साथ उसकी बुद्धि भी बदलती चली गई। भविष्य के प्रति दृष्टिकोण भी बदल गया। नाखूनधारी मानव ने एटम बमों का विकास कर लिया। लेकिन नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। नाखून रखने पर दंडित किया जाने लगा। उनको काटना सभ्य माना गया। लेकिन मनुष्य की बर्बरता कम नहीं हुई।

(घ) सौंदर्य का साधन – एक समय नाखून बढ़ाना सौंदर्य का अंग था। कामसूत्र इसका प्रमाण है। नाखूनों को विभिन्न आकारों त्रिकोण, वर्तुलाकार, चंद्राकार, दंतुलाकार में काटना कला माना जाता था। गौण देश बड़े–बड़े नाखून पसंद करते थे जबकि दक्षिण के लोग छोटे नाखून रखते थे। मनुष्य की स्वाभाविक व जन्मजात प्रवृत्तियाँ खत्म नहीं हुई।

(ङ) विवेक की आवश्यकता – द्विवेदी जी का मानना है कि विवेक मनुष्य को वास्तविकता का बोध कराता है। प्राचीन को त्याज्य समझकर झुठलाया नहीं जा सकता और न भविष्य को मुख्य मानकर ग्रहण किया जा सकता है। विवेक द्वारा निर्णय ग्रहणीय हाता है। मूढ़ व्यक्ति पथ से विचलित होते हैं। हम परीक्षा द्वारा योग्य स्वीकार करें और अयोग्य का त्याग करें।

(च) मानव और पशु में अंतर – विभिन्न संस्कृतियों के समागम से समाज में विषमता पनपने लगी थी। समय–समय पर महान आत्माओं, ऋषियों ने मध्य वर्ग को खोज निकाला। सभी वर्णों व जातियों में समान आदर्श स्थापित किए। विवेक ही वह माध्यम है जिससे मनुष्य पशु से भिन्न है। उसमें संयम है। श्रद्धा, तप, त्याग जैसे गुणों का भंडार सुरक्षित है। मानवता प्रमुख धर्म बन गया। अहिंसा, सत्य, धर्म का पालन आवश्यक माना गया।

(छ) सुख की खोज – मनुष्य ने सुख के लिए अनेक मशीनों का आविष्कार किया, उत्पादन क्षमता विकसित की। उपकरणों को बनाया। लेकिन वृद्ध द्वारा बताए गए रास्ते में सुख के लक्षण दिखाई दिए। हिंसा, मिथ्या, क्रोध, लोक महत्ता, प्रेम की अनिवार्यता से मानवता की भावना बलवती होने लगी। वह पुनः आत्म मंथन को विवश हुआ।

यंत्रीकरण क विभीषिका से दो चार हुआ। अपनी गलती स्वीकार की। घृणा को पशुता माना गया। भावनाओं की कद्र करना मानव धर्म माना गया।

(ज) सफलता व चरित्र में अंतर – दोनों ही शब्द एक दूसरे के विरोधी हैं। मनुष्य बाह्य उपकरणों से सफलता तो प्राप्त कर सकता है लेकिन चरित्र का निर्माण नहीं कर सकता। चरित्रांकन में प्रेम का गुण अनिवार्य है। त्याग की भावना का होना आवश्यक है। अर्पण की भावना का होना आवश्यक है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की सहज अंधता का सूचक है उनको काट देना, आत्मबंधन का फल है जिससे चरित्र का बोध होता है।

4.6.3 भाषा शैली :

द्विवेदी जी की भाषा में संस्कृत शब्दावली का वर्णन, उर्दू शब्दों की छटा, अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग, तत्सम शब्दावली की प्रधानता देखने को मिलती है। द्विवेदी जी का भाषागत सौंदर्य निम्नवत् है –

(क) संस्कृत/तत्सम शब्दावली – निःशेष, प्रवृत्ति, अस्त्र, वाक् निबोर्ध, निर्लज्ज

(ख) अंग्रेजी शब्दावली – एटम बम, इंडिपेंडेंस

(ग) उर्दू/फारसी शब्दों का प्रयोग – मजबूत, कम्बख्त, अनजान, निशानी, गलत शायद, जरूरत, बेहया, हाजिर।

द्विवेदी जी ने निबंध लेखन में वर्णनात्मक, विवेचनात्मक, काव्यात्मक, तुलनात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। नाखून क्यों बढ़ते हैं? निबंध में वर्णित शैलियाँ उदाहरण सहित निम्नवत् हैं–

(क) तुलनात्मक शैली – सफलता और चरितार्थता में अंतर है। मनुष्य मरणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सफलता नाम दे रखा है। मनुष्य की सहज प्रवृत्ति का परिणाम नाखून का बढ़ना है उनको काट–छांट देना चरितार्थता का द्योतक है।

(ख) चिंतन का पक्ष जहाँ वर्णित हो, विवेक सम्मत निर्णय निकल आए तो विश्लेषण शैली की झांकी दर्शनार्थ है।

(ग) सूचना प्रधान वृतांतात्मक शैली – बाहर नहीं भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्मसंतुष्टि की बात सोचो, काम करने की बात सोचो।

(घ) वर्णनात्मक शैली – मनुष्य में कुछ जन्मजात स्वाभाविक वृत्तियाँ होती हैं जो अनायास अपना काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उनमें से एक है, केश बढ़ना दूसरा है, दांत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है।

4.6.4 निष्कर्ष :

ललित निबंधकारों की परम्परा को विकसित करने वाले आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित नाखून क्यों बढ़ते हैं? निबंध में साधारण जिज्ञासा को ऐतिहासिक संदर्भ में प्रस्तुत कर मौलिकता का परिचय दिया गया है। निबंध का निष्कर्ष निम्नवत् है –

जिज्ञासा वह जन्मजात प्रवृत्ति है जो मनुष्य की चेतना को व्यक्त करती है। कभी–कभी साधारण सा प्रश्न मनुष्य को व्यथित कर देता है। उन्हीं में से जिज्ञासा बनी कि मनुष्य के नाखून क्यों बढ़ते हैं? एक इनको काट देने पर भी इनका पुनः उग आना कौतूहल का विषय है। बच्चों की जिज्ञासा को शांत करना माँ बाप का कर्त्तव्य हो जाता है।

संसार में प्रत्येक वस्तु का अपना इतिहास होता है। ठीक उसी प्रकार मानव का भी अतीत, इतिहास की

दास्तां बयान करता है। जब मनुष्य असभ्य बनमानुष समान था उसे नाखूनों की आवश्यकता होती थी वे उसकी जीवन रक्षा का कार्य करते थे। उसके शत्रु को पछाड़ने में नाखूनों की आवश्यकता होती थी। धीरे–धीरे मनुष्य पत्थरों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगा। तत्पश्चात् हड्डियों से अस्त्रों का निर्माण किया। देवता, असुर युद्ध में भी इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। तत्पश्चात् नाखून युक्त मनुष्य एटमबमों का भी आविष्कार करने लगा, लेकिन नाखूनों का बढ़ना इतिहास को व्यंजित कर रहा है।

एक समय नाखून रखना आवश्यकता थी किंतु कालांतर में नाखून रखना सभ्य नहीं माना जा रहा है। मां–बाप बच्चों को इन्हें काटने की सलाह देते हैं, क्योंकि उनकी जगह अब अस्त्रों ने ले ली है। मनुष्य की बर्बरता बढ़ती जा रही है; अर्थात् मनुष्य की पशुता खत्म होने का नाम नहीं ले रही। एक समय नाखून बढ़ाना सौंदर्य का प्रतीक बन गया था। वात्स्यायन के कामसूत्र में नाखून बढ़ाने की प्रवृत्ति का उल्लेख मिलता है। उनके काटने के अनेक प्रकार थे। कभी चौकोर काटे जाते थे, कभी वर्तुलाकार तो कभी चंद्राकार भी काटे जाते थे। मोम आदि द्वारा उन्हें रगड़कर सुंदर बनाया जाता था। गौण देश के मनुष्य बड़े–बड़े तथा दक्षिण के लोग छोटे नाखून पसंद करते थे।

नाखून का बढ़ना जन्मजात प्रवृत्ति है। आवश्यक न होते हुए भी वह अनायास बढ़ रहे हैं। शरीर में यह नाखूनों का बढ़ना जन्मजात व काटना मानव प्रवृत्ति की द्योतक है। हम किस ओर जा रहे हैं? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर। सामंजस्य स्थापित करना युग की मांग है। पुरातन से चिपके रहना हमें परंपरावादी कहलाने को विवश करता है। ठीक उसी प्रकार आधुनिकता को जीवन में रखना नयापन का बोध कराता है। इस संबंध में कालिदास के कथन को स्वीकार करना चाहिए। सभी अतीत त्याज्य नहीं है और सभी नवीन ग्रहण योग्य नहीं है। विवेक युक्त होकर आचरण करना ही श्रेष्ठ है। विवेक ही वह माध्यम है जिसके आधार पर मनुष्य और पशु में अंतर किया जा सकता है। श्रद्धा, तप, संयम त्याग, मानवीय गुण हैं। जाति समुदाय मनुष्य को विवाद में फंसाते हैं। गौतम का भी मानना था कि सुख–दुख में समभाव रखना ही मनुष्यता कहलाती है। अहिंसा, सत्य ही जीवन के अस्त्र हैं।

मनुष्य सुखी कैसे रहे? इसलिए मशीनों की खोज की, वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन किया। धन को एकत्र करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी लेकिन फिर भी मनुष्य को सुख नहीं मिला। मनुष्य को सुख भीतरी ओर देखने पर मिलेगा, हिंसा से दूर रहने को कहा गया, छूट को त्याज्य बताया। क्रोध, द्वेष से बचना बताया। प्रेम पूर्वक व्यवहार पर बल दिया गया। आत्मसंतोष को महत्त्व प्रदान किया गया। कर्म को महत्त्व प्रदान किया गया। प्रेम को सर्वोपरि माना गया।

मानव जीवन को खुशहाल बनाने के लिए अनेक आदर्शों की स्थापना की गई। नाखून बढ़ाना पशुता माना गया तथा काटना मनुष्यता का सूचक बन गया। वर्तमान युग में अस्त्र–शस्त्रों की भूख पशुता को दर्शाती है तथा इनकी प्रवृत्ति को रोकना मनुष्यता का प्रतीक है। घृणा पशुता कहलाई तथासंयम रखना, आदर करना धर्म कहलाया। अभ्यास और तप से मानवता को गौरवान्वित किया गया।

सफलता और चरित्र दोनों शब्द एक दूसरे के विपरीत हैं। मनुष्य अपने प्रयत्न से उपयोगी वस्तु को पा सकता है किंतु चारित्रिक गुणों से प्रेम, मित्रता, त्याग को शामिल किया जाता है। नाखून का स्वतः बढ़ना उस वृत्ति का परिणाम है जिससे सफलता प्राप्त की जा सकती है। उसको काट देने, निर्धारण करने में आत्मबंधन का फल है जिससे चरित्र का निर्माण होता है। नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें लेकिन पाशविक प्रवृत्ति नहीं बढ़ने दी जाए।

'अपनी प्रगति जांचिए'

33. मनुष्यों में किस आचरण का होना चिंता का विषय है?

34. मनुष्य किस गुण के कारण पशुओं से श्रेष्ठ है?

35. नाखून क्यों बढ़ते हैं? के लेखक का पूरा नाम क्या है?

36. नाखून काटना किसका प्रतीक है?

37. केश का बढ़ना कौन सी वृत्ति है?

38. सबके सुख–दुख, सहानुभूति को क्या कहते हैं?

39. नाखून किसका प्रतीक है?

40. नाखूनों को सुंदर कैसे बनाया जाता था?

4.7 पगडंडियों का जमाना (श्री हरिशंकर परसाई)

व्यंग्यात्मक लेखन की परंपरा को पल्लवित करने वाले, मार्क्सवादी, समाजवादी चिंतक प्रगतिवादी मूल्यों के समर्थक, लोक शैली के निर्माता हरिशंकर परसाई व्यंग्यात्मक लेखक हैं। यथार्थ की भूमि पर मूल्यों की क्षत होने की बेचैनी, विसंगतियों से उत्पन्न छटपटाहट, विशृंखलित समाज व्यवस्था के प्रति चिंतित हैं। शिकायत मुझे भी है, वैभव की फिसलन, सदाचार का ताबीज, विकलांग, श्रद्धा का दौर, तुलसीदास चंदन घिसे, हम एक उम्र के वाकिफ हैं, जाने पहचाने लोग आदि इनके प्रसिद्ध निबंध हैं।

पगडंडियों का जमाना निबंध में परसार्ठ जी ने सत्य मार्ग की प्रशंसा, समाज में व्याप्त अनैतिकता, स्वार्थलिप्सा, मनुष्य और देवता में अंतर, यथार्थ की झांकी, अतीत के प्रति आसक्ति आदि पक्षों को अभिव्यक्त किया है।

4.7.1 व्याख्या खंड :

मुझे आशा थी कि अब ये अपने मौलिक देव–रूप में प्रकट होंगे और कहेंगे– 'वत्स तू परीक्षा में खरा उतरा। बोल तुझे क्या चाहिए हमव र देने के मूढ़ में हैं। बोल हिंदी साहित्य के इतिहास में तेरे ऊपर एक अध्याय लिखवा दूं या कहे तो किसी समीक्षक की तरे घर में पानी भरने की ड्यूटी लगा दूं।'

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण व्यंग्य निबंधकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित निबंध 'पगडंडियों का जमाना' से उद्धृत है।

प्रसंग : इस गद्यांश में परसाई जी का मानना है कि मनुष्य जब सत्य मार्ग पर चल रहा होता है तो उसके मार्ग में अनेक विघ्न आते हैं तथा कभी परीक्षा भी होती है।

व्याख्या : परसाई जी का मानना है कि जब मनुष्य सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर ईश्वरीय साधना में डूब जाता है तो मार्ग में आने वाली बाधाएँ उसकी परीक्षा करके लक्ष्य प्राप्ति के प्रति लालसा व्यक्त करती हैं। अर्थात् साधक की साधना बिना परीक्षा के पूर्ण नहीं होती। देवता मानव शरीर धारण करके उसके धैर्य की परीक्षा करते हैं। लक्ष्य के प्रति समर्पण भाव देखकर प्रसन्न होकर वर प्रदान करने को तैयार हो जाते हैं। नंबर बढ़वाने के लिए पास आए सज्जन के रूप में इंद्र और विष्णु का रूप विद्यमान है। लेखक सोचता है 'मेरे अनैतिक कार्य को मना करने से प्रसन्न और यह कहने को बाध्य होंगे कि हे वत्स तू परीक्षा में पास हो गया है। तेरी क्या इच्छा है? मनोवांछित फल की इच्छा प्रकट कर। हम चाहें तो तेरे नाम से हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा सकते हैं जिससे तुम भाषा लेखक के नाम से अमर हो जाओगे। ईमानदारी से खुश होकर हम तुम्हारे सामने समालोचक को भी दूसरे दर्जे का मान सकते हैं अर्थात् समालोचक भी ईमानदारी से प्रभावित होकर पानी भरने को विवश हो सकता है।'

विशेष :

मनुष्य का स्वभाव है कि वह स्वार्थ सिद्धि हेतु अनैतिक कार्य करने को बाध्य होता है।

परसाई जी ने गुरु की ईमानदारी का चित्रण किया है।

सत्यवादी हरिश्चंद्र की सत्य परीक्षा हेतु इंद्र ने ब्राह्मण रूप धारण किया था।

विदेशी शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे– 'ड्यूटी' 'मूड़'।

मुहावरेदार भाषा पानी भरना के रूप में प्रयोग हुई है।

लेखक के अमर होने के पीछे लेखकों की मनोवृत्ति का वर्णन है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

अविधा शब्द शक्ति है।

प्रसाद गुण है।

सरल तथा प्रभावोत्पादक गुण है।

अच्छी आत्मा फोल्डिंग कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जरूरत पड़ी तब फैलाकर उस पर बैठ गए नही ंतो मोड़कर कोने में टिका दिया। जब कभी आत्मा अड़ंगा लगाती है, तब मुझे समझ में आता है कि पुरानी कथाओं के दानव अपनी आत्मा को दूर किसी पहाड़ी पर तोते में क्यों रख देते थे। वे उससे मुक्त होकर बे खटके दानवी कर्म कर सकते थे। देव और दानव में अब भी तो यही फर्क है– एक की आत्मा अपने पास रहती है, और दूसरे की उससे दूर।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यांश हास्य व्यंग्य लेखक, निबंधकार हरिशंकर परसाई द्वरा रचित 'पगडंडियों का जमाना' नाम निबंध से लिया गया है।

प्रसंग : इन पंक्तियों द्वारा परसाई जी बताते हैं कि जब सत्यवादी रूप धारण किया तो अतिरिक्त अंक देने की बाध्यता को नकारने पर अशोभनीय व्यवहार को सहन करना पड़ा। आत्मा ने ऐसी परिस्थिति में साहस बंधाया कि ईमानदारी का मार्ग कंटक युक्त है। समय के साथ चलना सीखो। आत्मा को फटकार लगाते हुए लेखक कहता है–

व्याख्या : कर्म के पीछे आत्मा की प्रेरणा विद्यमान रहती है। कर्म चाहे अच्छा हो या बुरा आत्मा द्वारा अस्तित्व में आता है। आत्मा को फोल्डिंग कुर्सी के समान ही होना चाहिए जिसे जब आवश्यकता हो उपयोग में लाया जाए अन्यथा एकांत में रखी रहे। वर्तमान संदर्भ में जब आत्मा बुरे कार्यों को करने से रोकती है तो मनुष्य को कर्म के प्रति सचेत करती है। चिंतन पक्ष को सुदृढ़ आधार प्रदान कराती है। प्राचीन काल की कथाओं में राक्षसों की आत्मा किसी पहाड़ी पर तोते के रूप में होती थी। इसीलिए वे निर्द्वंद्व भाव से मनमाना कार्य करते थे। देवता और दानव में यही मौलिक अंतर व विभाजक रेखा है। देवता इसीलिए पूज्य हैं क्योंकि उनकी आत्मा उनके साथ रहकर अनुचित कार्य करने से रोकती है, जबकि राक्षसों की आत्मा उनसे कोसों दूर पिंजरे में कैद रहती है इसीलिए वे घिनौने व कुत्सित कर्म करने में संकोच नहीं करते।

विशेष :

देवता और राक्षस के बीच अंतर दिखाया गया है।

कर्म में आत्मा की प्रेरणा बलवती होती है।

आत्मा की तुलना फोल्डिंग कुर्सी से की है।

उर्दू व अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है।

व्यंग्यात्मक शैली है।

जन भाषा का प्रयोग हुआ है।

स्वार्थ पूर्ति के लिए गुरुओं पर अनुचित दबाव मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति को रेखांकित करता है।

समय के साथ चलना युग की मांग है।

अविधा शब्द शक्ति प्रयुक्त हुई है।

प्रसाद गुण है।

देखता हूँ कि हर सत्य के हाथ में झूठ का प्रमाण पत्र है। ईमान के पास बेईमानी की चिट्ठी न हो तो कोई उसे दो कौड़ी का न पूछे। यही सब सोचकर मैं ढीला हो गया हूँ। अब मैं बड़े खुले मन से नंबर बढ़वाता हूँ।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण प्रसिद्ध निबंधकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित 'पगडंडियों का जमाना' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में लेखक वर्तमान समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार से त्रस्त है। मानवीय मूल्य तिरोहित हो गए हैं। लेखक चिंतन करता हुआ कहता है कि –

व्याख्या : मानव का चरित्र बदल गया है अपना यथार्थ कार्य करने के लिए मनुष्य को झूठी सिफारिश करनी पड़ रही है। झूठ एवं अनैतिकता का सहारा लेना पड़ रहा है। परिश्रमी और ईमानदार चक्की के नीचे पिस रहे हैं। लेखक का मानना है कि अगर सफलता प्राप्त करनी है तो सिफारिश की आवश्यकता है। युगीन समाज को देखकर लेखक की धारणा बदल गई है। जिस ईमानदारी का दामन उसने पकड़ा था वह धीरे–धीरे खिसकने लगा है। वह भी सामान्य व्यक्तियों की तरह ईमान भ्रष्ट करके उचित–अनुचित कार्य करने लगा है। स्थापित आदर्शों को त्याग दिया है और निश्चिंत होकर अनुचित ढंग से नंबर बढ़ाने लगा है।

विशेष :

समाज में बदलते मानदंडों का वर्णन है।

ईमानदारी, परिश्रम संस्कृति के अंग रह गए हैं।

मनुष्य संस्कृति से विमुख हो गया है अनुचित कार्य करने को उत्सुक है।

युगीन समाज का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है।

मुहावरेदार भाषा का प्रयोग है।

शिक्षा मंदिर में व्याप्त सिफारिश, मूल्य पतन को देखा जा सकता है।

अंग्रेजी शब्द 'नंबर' का प्रयोग हुआ है।

उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है।

युगीन समाज से दुःखी लेखक की मनःस्थिति का चित्रण है।

भ्रष्ट पदाधिकारियों के चरित्र का वर्णन किया गया है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

अविधा शब्द शक्ति की छटा है।

इसमें अधिकांश दया के पात्र हैं ये बेहद परेशान और घबराए हुए लोग हैं। कोई चाहता है कि उसका लड़का पास हो जाए तो उससे नौकरी करा दें, जिससे परिवार की दुर्दशा कम हो। किसी को चिंता है कि लड़का फेल हो गया, तो और एक साल उसकी पढ़ाई का खर्च कैसे चलाऊंगा। कोई चाहता है कि लड़की पास हो जाए, तो उसकी शादी करके बोझ हल्का करूँ। बहुत दुःखी और परेशान लोग होते हैं, इनमें कुछ तो इतने दीन होते हैं कि जी होता है, पहले इनके गले लगकर रो लिया जाए।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण हास्य व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित 'पगडंडियों का जमाना' नामक निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में युगीन समाज की मनःस्थिति का अवलोकन करते हुए परसाई जी कहते हैं–

व्याख्या : परसाई जी व्यक्तियों के क्रियाकलापों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य अनुचित ढंग से सफलता अर्जित करते हैं उनमें आत्म विश्वास की कमी पाई जाती है। वे सदैव परेशान व घबराए रहते हैं। इनकी सफलता में इनका परिश्रम नहीं लगा है इसीलिए इनकी स्थिति दयनीय है। लगता है समाज में इसका प्रचलन हो गया है प्रत्येक व्यक्ति जुगाड़ में रहता है कि कैसे कार्य की सिद्धि हो जाए। कोई अपने नकारा पुत्र के अंक बढ़वाकर नौकरी की इच्छा लगाए बैठा है जिससे कि घर का बोझ हल्का हो जाए। कोई पुत्र के फेल होने से भयभीत है क्योंकि एक साल की पढ़ाई का खर्च उठाना दूभर है। कोई बेटी के अंक बढ़वाकर शादी कर देना फर्ज़ समझता है। ये सभी अनुचित कार्यों के लिए व्यथित हैं। इसीलिए चेहरे पर दयनीयता झलकती है। लेखक का मन करता है कि इनको देखकर कार्य करने से पूर्व इनसे मिलकर दिल का बोझ हल्का कर लिया जाए।

विशेष :

युगीन समाज की मनोवृत्ति का चित्रण है।

अनैतिक कार्यों के लिए मनुष्य की दयनीय स्थिति का दिग्दर्शन भी है।

उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है।

समाज का यथार्थ बिंब चित्रित है।

चिंता ही वह कारण है जिससे मनुष्य क्रियाशील रहता है।

आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है।

अविधा शब्द शक्ति है।

प्रसाद गुण प्रयुक्त हुआ है।

लेखक का निजी अनुभव व्यक्त है।

लड़की के शिक्षित होने से मां–बा पके लिए उनके दिल का बोझ हल्का हो जाता है।

4.7.2 विशेषताएँ :

हास्य एवं व्यंग्य परक लेखक हरिशंकर परसाई ने 'पंगडंडियों का जमाना' निबंध में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, मनुष्य और देवता में अंतर, समाज का बदलता नजरिया, स्वार्थ लिप्सा, अतीत के प्रति लगाव व यथार्थ बोध को व्यक्त किया है। निबंध की विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

(क) ईमानदारी की रक्षा – मनुष्य के स्वभाव में ईमानदारी के प्रति निष्ठा का भाव अभिव्यक्त होता है। मनुष्य अपनी स्वार्थ सिद्धि करने के लिए दूसरे को सत्य के मार्ग से विचलित करना चाहता है। एक अध्यापक जो ईमानदार है उसके पास अनुचित कार्य करने हेतु दबाव बनाना चाहता है। ईमानदारी का भय उसको ऐसा करने की इजाजत नहीं देता। मना करने पर दुर्व्यवहार भी करता है।

(ख) देवता और मनुष्य में अंतर – अच्छी आत्मा फोल्डिंग कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जो समय पर उपयोग करने में काम आ सके। देवताओं की आत्मा उनके शरीर में रहती थी जबकि दानवों ने अपनी आत्मा दूर पहाड़ी पर तोते में कैद कर दी थी जिससे स्वछंद होकर वे मनमाना व्यवहार करते थे।

(ग) बदलता दृष्टिकोण – प्रगति व विकास के साथ मनुष्य का दृष्टिकोण भी बदल जाता है। राधेश्याम जो ईमानदार था उसे बिक्री का हिसाब रखने का दंड दफ्तर में रिश्वत देकर चुकाना पड़ता है। झूठ बिना रिश्वत के ही जीवित रहता है। देवता आदमी बनकर तो कभी आदमी देवता बनकर मनुष्य को ठगते थे। स्वार्थलिप्सा से अनुमान भी सटीक बैठने लगता है। जुलाई का समय दाखिले का और मार्च का समय पेपर के आऊट कराने का तथा मई जून का समय नंबर बढ़वाने का होता है अपना स्वार्थ पूर्ण कर दूसरे को नीचा भी दिखाया जाता था।

(घ) यथार्थ की झांकी – लेखक का मानना है कि इन प्रलोभनों, अनुचित कार्यों के मूल में यथार्थ भी झलकता है। सभी के चेहरों से बेचैनी झलकती है। दया के भूखे नज़र आते हैं। कोई लड़के को पास कराकर नौकरी के स्वप्न पालता है जिससे परिवार का बोझ हल्का हो जाए, कोई फेल हो जाने के भय से उत्पन्न अनावश्यक खर्च से बचना चाहता है। कोई लड़कियों को पढ़ाकर शादी करके मुक्त होना चाहता है। दीनता देखकर इनको गले से लगाने को मन विवश होता है।

(ङ) स्वभाव में बदलाव – पहले मनुष्य के कार्य कराने के तौर–तरीके अलग थे। उनके कहने में विनम्रता, शर्म, झिझक दिखाई पड़ती थी, लेकिन अब शर्म के स्थान पर निर्ममता आ गई है। झिझक के स्थान पर स्वाभिमान झलकने लगा है। पहले कहने का ढंग अलग था चोरी छिपे होता था अब खुली चिट्ठी आने लगी है। उसकी आंखों में चमक होती है अधिकार जमाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

(च) अतीत के प्रति लगाव – परसाई जी का मानना है कि दस वर्ष की प्रगति ने मानदंड भी बदल दिए हैं। अब अध्यापक को डर सताता है। सफलता के महल का सीधा रास्ता बंद हो गया है। चारों ओर दुर्गंध फैली हुई है। जो न्याया पथ के राही थे अपना सिर पीट रहे हैं और असत्य, कपटी, स्वार्थी अपना काम निकालने में सिद्धहस्त हो गए हैं। शर्म, संकोच हया की झाड़ियाँ सड़कों से समाप्त हो गई हैं। भ्रष्टाचार छल कपट, ईर्ष्या, प्रतिकार के कांटे उगने

लगे हैं। भविष्य का आदमी आम रास्ते को भूल जाएगा। क्योंकि सभ्यता की काट–छांट करने वाले समाप्त हो चले हैं।

4.7.3 भाषा शैली :

हरिशंकर परसाई जी ने भावों की अभिव्यक्ति के लिए सरल प्रभावकारी भाषा को आवश्यक माना। परसाई जी की भाषा की विशेषताओं का वर्णन निम्नवत् है –

(क) संस्कृत/तत्सम शब्द – प्रवर्त्तक, परीक्षा, वत्स, कपास, उज्ज्वल निर्लज्ज, संकोच।

(ख) उर्दू/अरबी/फारसी शब्द– ईमानदार, नाकामयाब, ईमान, फर्क, कोशिश, हिसाब, सिफारिश, बेईमानी, परेशान, मरम्मत, इंतजार, गलत, बाजार, बेवकूफ, बदबू।

(ग) अंग्रेजी शब्द – लिस्ट, मूड, फोल्डिंग, सिलेबस, प्रॉस्पेक्टस, पेपर, आउट, नंबर, पुलिस, प्रोफेसर, हिंट, ड्यूटी।

(घ) मुहावरे – आंखों में देखना, सेंध लगाना, पानी भरना, घूस देना

(ङ) उपमा – 1. बिजली नीग्रो सुंदरी के दांतों की तरह चमक रही हो।

2. फोल्डिंग कुर्सी की तरह।

परसाई जी ने व्यंग्यात्मक, वर्णनात्मक, भावात्मक, संवादात्मक, आलोचनात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। पगडंडियों का जमाना निबंध में व्यक्त शैली का विवेचन निम्नवत् है –

(क) संवादात्मक शैली – वत्स तू परीक्षा में खरा उतरा। बोल तुझे क्या चाहिए? हमव र देने के मूड में हैं।

(ख) भावात्मक शैली – मैं भी अब झूठा हिसाब रखूंगा। उसे घूस देकर सच्चा बनवा लिया करूंगा। सच्चाई के लिए घूस देने की अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा है कि झूठ के लिए घूस दूं। इतना महंगा ईमान अपनी हैसियत के बाहर है। इससे तो बेईमानी सस्ती पड़ेगी।

(ग) वर्णनात्मक शैली – अच्छी आत्मा फोल्डिंग कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जरूरत पड़ी तब फैलाकर उस पर बैठ गए, नहीं तो मोड़कर कोने में टिका दिया।

4.7.4 निष्कर्ष :

हरिशंकर परसाई व्यंग्यात्मक लेखन के लिए प्रख्यात हैं। उनकी रचनाएँ युग की विकृतियों का पर्दाफाश करती हैं। मनुष्यों को सोचने को विवश करती हैं। पगडंडियों का जमाना निबंध में परसाई जी ने मनुष्यों की स्वार्थ लिप्सा, चाटुकारिता का वर्णन किया है। इस निबंध का निष्कर्ष निम्नवत् है –

सत्य का मार्ग कांटों से भरा होता है। धैर्यवान ही कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर न्याय–सत्य के मार्ग पर बढ़ता जाता है। लेखक का मानना है कि ईमानदारी सर्वश्रेष्ठ गुण है लेकिन इस मार्ग में अपनों से रूष्ट होना पड़ता है। लेखक ने वर्तमान व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। आज शिक्षण संस्थानों में पढ़ाई न होना अनुचित कार्यों को बढ़ावा देता है। अध्यापक भी स्वार्थवश इस कार्य में सहयोग करने लगे हैं। लेखक ने जब ईमानदार बनने का प्रयत्न किया तो एक सज्जन नंबर बढ़वाने के लिए आये ''मैंने मन को काबू में करके प्रलोभन को ठुकरा दिया। वह महाशय नाराज होकर बुरा भला कहते हुए चले गये किंतु मैं इस प्रसंग को बहुत दिनों तक नहीं भूल सका।''

लेखक का मानना है कि आत्मा फोल्डिंग कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जिसका आवश्यकतानुसार उपयोग किया जा सके। देवताओं की आत्मा इसी पृथ्वी पर जन सामान्य के बीच रहती थी जबकि दानवों की आत्मा पहाड़ी पर तोते में रहती थी। इसीलिए वे बेखटक मनमाना व्यवहार करते थे। समाज के साथ मनुष्य के दृष्टिकोण में भी

परिवर्तन आ गया। राधेश्याम को बिक्रीकर का हिसाब रखने पर भी रिश्वत देनी पड़ी। ईमानदारी की रक्षा भी रिश्वत से हो सकी। राधेश्याम के मन में विचार आया कि क्यों न झूठ को सिद्ध करने के लिए रिश्वत दूँ। ठीक इसी प्रकार एक स्त्री को जब नौकरी के लिए चरित्र प्रमाण की आवश्यकता पड़ी तो बड़े आदमी ने पहले कमरे में चलने को कहा। पहे देवता थे बाद में आदमी लेकिन अब आदमी पहले हैं देवता बाद में। ईमानदारी की रक्षा के लिए झूठ का प्रमाण पत्र देने की आवश्यकता से दृष्टिकोण की झलक मिलती है।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने स्वार्थ के लिए गधे को बाप बना लेता है। मनुष्य का विवेक बात का अनुमान लगा लेता है। समय से आने वाले का लक्ष्य पता चल जाता है। जुलाई का महीना बच्चों के दाखिले का होता है। मार्च का महीना नंबर बढ़वाने का होता है। पहुँच हीन विद्यार्थियों का भविष्य अंधेरे में रहता है। अध्यापक इन दोनों पक्षों से अवगत होता है। वह कहने लगे कि 'भाई परीक्षा में बैठने वाला है मदद कीजिए।' परीक्षा का बुखार भी सताने वाला होता है। उन्होंने विनम्रता पूर्वक कहा –'आपके मित्र ने पर्चा बनवाया है कुछ हिंट दिलवा दें।' कोई पेपर आउट कराकर ईमान बिगाड़ना चाहता है। ईमानदारी से मित्र का सब कुछ नष्ट हो जाता है।

लेखक का मानना है कि पर्चा आउट करने वालों व नंबर बढ़वाने वालों को नकारा नहीं जा सकता। सभी के चेहरे से दयनीयता झलकती है। परेशान व घबराये हुए हैं। कोई लड़के के पास करवाने की जुगाड़ में है जिससे परिवार का खर्चा पानी चल सके। लड़के के फेल होने से एक वर्ष की पढ़ाई कैसे चलेगी? कोई लड़की के पास होने पर शादी से मुक्त होना चाहता है। अब यह आम प्रचलन हो गया है। पहले शरमाकर कहता था लेकिन अब बिना हिचक यह सब कहने लगे हैं।

मनुष्य अतीत को याद कर स्वप्नों की दुनिया में खो जाना चाहता है। प्रगति की नीड़ में भी अनिश्चितता के बादल हैं। जिस रास्ते पर कांटे, कटीली झाड़ियाँ थीं अब समाप्त हो गई हैं। चिकनी सड़कों पर लोग दौड़े जा रहे हैं, लेकिन आम आदमी इनसे दूर हटता जा रहा है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

41. आत्मा को किसके समान होना चाहिए?

42. देव और दानव में क्या अंतर है?

43. मार्च का कहीना किसका प्रतीक है?

44. दया के पात्र कौन हैं?

4.8 अस्ति की पुकार हिमालय (श्री विद्यानिवास मिश्र)

समालोचक, भाषा संपादक, कोशकार, शिक्षक, शोध निर्देशक, निबंधकार श्री विद्यानिवास मिश्र हजारी प्रसाद द्विवेदी की निबंध परंपरा के साहित्यकार हैं। उन्हें हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक तनय भी कहा जाता है। लोक जीवंतता, संस्कृति की छटा उनके निबंधों में वर्णित है। आपके निबंधों में भावात्मक पक्ष की प्रधानता देखने को मिलती है। विश्वव्यापी चेतना के फलस्वरूप मानवतावादी पक्ष मुखरित होता है। कदंब की फूली डाली वसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं, तमाल के झरोखे से लागो रंग हरी, गांव का मन, अस्मिता के लिए, तुम चंदन हम पानी उनके श्रेष्ठ निबंध हैं।

मिश्र जी अडिग आस्थावान और विश्वास के पोषक हैं। स्वार्थलिप्सा को मिटाने के लिए मिश्र जी ने स्नेहदीप प्रज्वलित कर समानता का उपदेश दिया। आपके निबंध ललित, वर्णनात्मक, भावात्मक रूप में सामने आते हैं। 'अस्ति की पुकार हिमालय' निबंध में मिश्र जी का हिमालय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, नूतन और पुरातन का सामंजस्य, महत्त्व, समाज की बदलती मानसिकता, शब्द की महत्ता, पौराणिक प्रसंगों का चित्रण करना मूल उद्देश्य रहा है।

4.8.1 व्याख्या खंड :

इस जीवन–प्रवाह में भाषा संस्कृति, समाज–चेतना ऐसा सभी कुछ शामिल है जिसका समष्टि चैतन्य से संबंध हो। राहुल के लिए जीवन भर हिमालय भूत नहीं, भविष्यत् नहीं, केवल अस्ति रहा, केवल हिमालय ही नहीं, हिमालय की प्रतिकृति, संस्कृत भाषा भी उनके लिए अस्ति रूप थी, उस भाषा के मूर्धन्य कवि कालिदास अस्ति रूप थे, हिमालय की छाया में बसी हुई सामान्य जनता शक्ति का अजस्र स्रोत थी।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबंधकार, भारतीय संस्कृति के पोषक विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित 'अस्ति का पुकार हिमालय' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में मिश्र जी हिमालय की महिमा का वर्णन करते हैं –

व्याख्या : मिश्र जी का संयोग घुमक्कड़ हरफनमौला राहुल सांस्कृत्यायन से हुआ। हिमालय के प्रति राहुल जी की अगाध निष्ठा थी, अपनी इसी भावना को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'हे मिश्र! मुझे हिमालय अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है, उसका दीदार किए बिना मुझे मानसिक शांति प्राप्त नहीं होगी। मेरा मन हिमालय के आकर्षण मं खिंचा जा रहा है। मेरे मन को अन्यत्र कहीं आराम नहं मिलेगा।' मिश्र जी राहुल की इच्छा को जानकर चकित हुए और कहने लगे कि इतने नीरस आदमी का हिमालय से क्या संबंध है? हिमालय देवताओं का स्थल है अर्थात् वहाँ देवताओं की आत्मा निवास करती है। भगवात् गीता के अनुसार हिमालय भगवान वासुदेव का विश्राम स्थल है। हिमालय को निमंत्रण देने से पूर्व राहुल को आमंत्रित करना उचित होगा। हिमालय की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए मिश्र जी कहते हैं कि हिमालय भी अपने भक्तों का ख्याल रखता है, उसकी इच्छाओं की पूर्ति करता है। राहुल भी हिमालय के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार हिमालय भारतीय संस्कृति का प्रमाण है, अभिन्न अंग है, जीवन का स्रोत है। मनुष्य की इस जीवन शैली में भाषा, संस्कृति, समाज सभी कुछ सम्मिलित हो जाता है। यह समष्टि ही व्यष्टि का विस्तार रूप है। राहुल अपनी इच्छा को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हिमालय का अस्तित्व हमेशा से था, है और भविष्य में भी रहेगा। हिमालय के साथ मानव का परिवेश भी जुड़ा हुआ है, भाषा तथा संस्कृति भी जुड़ी हुई है। संस्कृत भाषा के प्रकांड विद्वान कालिदास का नाम भी इससे जुड़ा हुआ है। हिमालय अपनी छत्रछाया में जन सामान्य को भी जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करता है। अर्थात् सामान्य मनुष्य इससे प्रेरणा को आत्मसात कर भविष्य के लिए कृतसंकल्प रहता है।

विशेष :

विद्यानिवास मिश्र जी की हिमालय के प्रति अगाध निष्ठा का वर्णन है।

राहुल जी ने हिमालय के सार्वभौमिक स्वरूप को स्वीकार किया है।

भौगोलिक दृष्टि से हिमालय भारत की बाह्य शत्रुओं से रक्षा करता है।

राहुल के अनुसार हिमालय भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है।

मानव जीवन भाषा, संस्कृति तथा समाज की सहभागिता से पूर्णता को प्राप्त होता है।

संस्कृत के कवियों में प्रकांड विद्वान नाटककार कालिदास का हिमालय से अभिन्न संबंध रहा है।

हिमालय निराश्रितों के लिए अदम्य शक्ति का संचार करता है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

संस्कृत प्राचीन भाषा है।

वर्णनात्मक शैली अपनाई गई है।

अपने को अत्याधुनिक मानने वाले भी कुंडली दिखाते हैं, ग्रहों को प्रसन्न रखने के लिए रत्न धारण करते हैं और किसी मंदिर में जाएँ या न जाएँ पर हनुमान जी के यहाँ लड्डू चढ़ाने मंगलवार को जरूर पहुंच जाते हैं, हम गाहे–बेगाहे देवताओं का दरबार करते हैं। मनौती मानते हैं, इंडियन कल्चर ककी बात करते हैं। अशोक, कालिदास को भी कृतकृत्य करते रहते हैं, पर यह सब भुलावा है, छल है। हम देवताओं को अफसर या नेता या नेता और अफसर को देवता मानते हैं। हम थान पूजते हैं, माई का हो, बह्म का हो, तेलिया मसान का हो या अगियाकीर का हो, लंगोटी वाले का हो या नंगे का हो।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित 'अस्ति की पुकार हिमालय' से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में मिश्र जी ने आधुनिक मनुष्य के दकियानूसी को वर्णित किया है।

व्याख्या : मिश्र जी का मानना है कि आधुनिकता से युक्त होने के लिए आवश्यक है मनुष्य की सोच भी बदलनी चाहिए। विवेक युक्त होकर निर्णय की क्षमता भी आवश्यक है। आधा तीतर और आधा बटेर की धारणा हानिकारक है इससे धोबी के कुत्ते की तरह स्थिति में रहना पड़ेगा। शिक्षित व आधुनिकता का स्वांग रचने वाले भी प्राचीन धारणाओं को त्याग नहीं पाते। अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु ज्योतिषी के चक्कर लगाते हैं। अपने भविष्य को मंगलमय बनाने के लिए रत्नों को धारण करते हैं। शक्ति की अकांक्षा लेकर हनुमान मंदिर में जाकर लड्डू चढ़ाते हैं। मनुष्य की कथनी और करनी में अंतर है। आधुनिक कहलाते हैं। भारतीय संस्कृति की बात करते हैं पर कालिदास, अशोक को ही पैमाने से तौलते हैं। अपने लिए नेता की भी पूजा करने लगते हैं लगता है उनकी नजर में देवता और नेता एक ही हैं। अंधविश्वासों को जीवित रखते हैं। थान पूजते हैं चाहे वह किसी का हो उसकी पृष्ठभूमि में जाने का प्रयत्न नहीं करते। यही हमारी अंधता है।

विशेष :

मिश्र जी ने मनुष्यों की कथनी और करनी की भावना को स्पष्ट किया है।

शिक्षित व्यक्ति भी धार्मिक अंधता को नहीं त्याग पाता।

मानव मनोकामना की पूर्ति हेतु मंदिरों में जाकर पूजा–अर्चना भी करता है।

अपने देवताओं को भी स्वार्थ सिद्धि हेतु वर्गों में विभक्त कर दिया है।

अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे 'इंडियन कल्चर।'

मिश्र जी ने वातावरण को साकार कर दिया है चित्रात्मकता का गुण विद्यमान है।

भारत धर्म प्रधान देश है अनेक धर्मों के अनुयायी मिलते हैं फिर भी एकता के सूत्र में बंधे हैं।

वर्णनात्मक शैली अपनाई गई है।

अशोक को महान की उपाधि प्रदान की गई है।

नाटकों के लिए कालिदास की उपमाएँ संस्कृत साहित्य की महान धरोहर है।

भारतवर्ष की राष्ट्रीय एकता की बात करनी होगी तो वहाँ जगाधिराज हिमालय का नाम जरूर लेना चाहिए, दो चार सूखे अनधुले अनरंगे रस्मी अक्षत चढ़ाने ही होंगे या पहले के चढ़ाए अक्षत ही फिर चढ़ाएँ, कोई हर्ज नहीं। अगर हिंदुस्तान की जनता से त्याग के लिए अपी करनी होगी तो श्रीमदभगवद्गीता से उद्धरण देना ही होगा, उस थान के नाते भगवान कृष्ण को भी पान–सुपारी भेंट की जाएगी। अगर हिंदुस्तान की नारी को भुलावा देना होगा तो शक्ति की आराधना के बोल निकालने ही होंगे।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण निबंधकार विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित 'अस्ति की पुकार हिमालय' निबंध से लिया गया है।

प्रसंग : इन पंक्तियों में मिश्र जी का मानना है कि एकता की रक्षा, त्याग तथा नारी की महिमा मंडित करना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए।

व्याख्या : मिश्र जी कहते हैं कि भारत धर्म प्रधान देश है। धार्मिक भिन्नता भी एकता में परिवर्तित हो जाती है। राष्ट्रीय एकता के फलस्वरूप भारत विश्व फलक पर स्थित है। राष्ट्रीय एकता को परिपक्व बनाने में हिमालय का महान योगदान है। भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग 'त्याग' माना जाता है, यह त्याग ही भारत की विशिष्टता को रेखांकित करता है। हमारे धार्मिक ग्रंथों में दिशा निर्देश मिलता है, जिस प्रकार भगवद्गीता कर्म की प्रेरणा प्रदान करती है, अन्याय व आतंक के खात्मे के लिए भगवान श्री कृष्ण को स्मरण किया जाता है। अगर नारी को शक्ति सम्पन्न बनाना होगा तो शक्ति की अराधना भी अपेक्षित होगी। भारतीय संस्कृति के इन प्रसंगों से नई पीढ़ी को दिशा–निर्देश मिलता है।

विशेष :

अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है।

भौगोलिक दृष्टि से हिमालय हमारी सीमाओं की रक्षा करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म की शिक्षा पर बल दिया गया है।

अन्याय के खात्मे के लिए श्री कृष्ण को याद किया जाता है।

नारी को शक्ति संपन्न बनाने के लिए शक्ति की आराधना अपेक्षित है।

मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हुआ है।

उर्दू भाषा का प्रयोग किया गया है।

वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

यह युग अर्थ प्रधान है रुपये की महिमा अपरंपार है, पर मैं समझता हूँ यह शब्द युग है, शुद्ध शब्द युग, शब्द जिससे अर्थ एकदम असंपृक्त हो, निरा केवली भूत शब्द हो, अर्थ के मोहपाश से युक्त हो, शब्द की महिमा के आगे किसी की महिमा नहीं। शब्द की महिमा न होती तो हिंदुस्तान के संपादक हिमालय जैसे अर्थशून्य विषय पर लेख लिखने के लिए इतना आग्रह क्यों करते। हिमालय एक शब्द है। हिंदुस्तान एक दूसरा शब्द है और हिंदुस्तान का हिमालय परस्थ लेखक एक तीसरा, पाठक एक चौथा। चारों शब्द हैं इसीलिए एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण निबंधकार विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित 'अस्ति की पुकार हिमालय' निबंध से अवतरित है।

प्रसंग : इन पंक्तियों द्वारा मिश्र जी वर्तमान व्यवस्था के प्रति अपनी इच्छा व्यक्त करते हैं।

व्याख्या : मिश्र जी कहते हैं कि वर्तमान युग में अर्थ की महत्ता है। जिसके पास धन है, दौलत है, वही सबसे बड़ा व्यक्ति है, सभी आदर्शों से युक्त हैं। मानवीय मूल्यों की महत्ता अर्थ पर आश्रित है। धनिक व्यक्ति में अवगुण भी गुणों में परिवर्तित हो जाते हैं। शब्द की महत्ता का वर्णन करते हुए मिश्र जी कहते हैं कि इस संसार में शब्द की महत्ता है। शब्दों द्वारा ही भावात्मक अभिव्यक्ति संभव हो पाती है। शब्द और अर्थ के संबंध बदल गए हैं। मानव अर्थ के आगोश में बैठ गया है। अगर शब्दों की दुनिया न होती, तो अभिव्यक्ति संभव नहीं होती। सहृदय की अभिव्यक्ति का माध्यम शब्द ही है। नीरस व शुष्क विषय भी शब्दों का आश्रय पाकर मनोरम और प्रभावोत्पादक हो जाता है। मिश्र जी वर्गीकरण द्वारा अपना आशय स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि हिमालय शब्द स्वयं में अर्थ की गंभीरता समेटे है। हिंदुस्तान भारत की विशेषताओं को चरितार्थ करता है। लेखक सहृदयता का द्योतक है वहीं पाठक वर्ग चौथा वर्ग कहलाता है। इनका पारस्परिक संबंध ही युगीन परिवेश को चरितार्थ करता है। शब्द ही वह माध्यम है जिसकी सीमा में वातावरण की सार्थक अभिव्यक्ति संभव है।

विशेष :

लेखक की दृष्टि में रुपये का महत्त्व होते हुए भी शब्द की महिमा अधिक है।

शब्दों के प्रयोग से ही हम व्यापक अर्थ तक पहुंच सकते हैं।

हिमालय एवं हिंदुस्तान शब्द अपने आप में विस्तृत अर्थ लिए हुए हैं।

हिमालय एवं हिंदुस्तान का प्रत्येक भारतीय के हृदय में विशेष महत्त्व है।

सहज, प्रभावमयी भाषा का प्रयोग हुआ है।

संस्कृत शब्दों का प्रयोग हुआ है।

वर्णनात्मक एवं भावात्मक शैली है।

4.8.2 विशेषताएँ :

ललित निबंधकार विद्यानिवास मिश्र जी ने 'अस्ति की पुकार हिमालय' निबंध में हिमालय की ऐतिहासिक उपयोगिता, परंपरा का निर्वाह, राष्ट्रीय एकता, निस्पृह की भावना, शब्द की महत्ता तथा पौराणिक वृतांत द्वारा हिमालय का वर्णनात्मक शैली में वर्णन किया है। निबंध की विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

(क) हिमालय का ऐतिहासिक महत्त्व –मिश्र जी ने हिमालय की उपयोगिता का वर्णन विविध प्रसंगों से कराया है। गीता के अनुसार हिमालय भगवान् वासुदेव का शरण स्थल है। राहुल जी ने हिमालय को भारतीय संस्कृति का अभिनन अंग माना है जिसमें भाषा, संस्कृति तथा समाज की झांकी दिखाई दती है, जिसमें समष्टि का भाव निहित है। राहुल ने हिमालय को अतीत, वर्तमान तथा भविष्य से परे माना है। संस्कृत भाषा में हिमालय की महिमा का वर्णन किया गया है। कालिदास ने हिमालय पर अपनी काव्यात्मक अभिव्यक्ति को अवगत कराया है। कुमार संभव में हिमालय का वृतांत मिलता है।

(ख) परंपरा के प्रति अनुरक्ति – मनुष्य आधुनिक होने पर भी अतीत के प्रति अपना लगाव समाप्त नहीं कर पाते। आधुनिकता का दिखावा करने वाले भी कुंडली दिखाते हैं। ग्रहों का प्रभाव स्वीकार करते हैं। नास्तिक होने पर भी हनुमान की उपासना करना नहीं भूलते। इंडियन कल्चर की बात करने पर भी कालिदास अशोक को नहीं विस्मृत करते। राष्ट्रीय एकता, त्याग की भावना व नारी सशक्तिकरण के विषय भी हिमालय की गाथा में सन्निहित हैं।

(ग) शब्द का महत्त्व – आधुनिक युग में अर्थ की प्रधानता है। संबंधों की सफलता भी अर्थ पर टिकी है। शब्दों का जाल तोड़ पाना मुश्किल है। शब्दों द्वारा ही भावों की सार्थक अभिव्यक्ति संभव है। हिमालय की महिमा भी शब्दों द्वारा संभव है। हिमालय, हिंदुस्तान, लेखक और पाठक अलग–अलग वर्ग को दर्शाते हैं। शब्द द्वारा ही आपस में विश्वास, एकता समरसता का भाव जीवित है।

(घ) पौराणिक महत्त्व – हिमालय का पुराणों में वर्णन है। भगवान शिवजी का पार्वती के साथ विवाह था। दहेज के रूप में केवल सुहाग ही दिया था। बैल वाहन था, नसेड़ी पति था। जन सामान्य ने उसी सुहाग को जीवन में उपयोग किया। ऊंची पहाड़ियाँ, उज्ज्वल स्वरूप के रूप में हिमालय विराजमान है। हमने अपने से नीचे वालों को दुत्कारा है कभी स्नेह नहीं किया इसीलिए हिमालय निर्धनों की अति वेदना से काला पड़ गया है।

4.8.3 भाषा शैली :

विद्यानिवास मिश्र जी की भाषा में संस्कृत के प्रति लगाव, लोक संस्कृति, लोक जीवंतता का चित्रण मिलता है। भावों की अभिव्यक्ति के लिए उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। भाषा में स्वाभाविकता का गुण समाहित है। जनपदीय बोलियों के शब्दों से भाषा में प्रभावोत्पादकता का गुण पैदा किया है। मनोविनोद एवं कल्पना का सामंजस्य भी विद्यमान है। भाषागत विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

(क) संस्कृतनिष्ठ शब्दावली – 'अस्ति की पुकार हिमालय' निबंध का प्रारंभ संस्कृत के श्लोक से होता है –

अस्त्युत्तरयां दिशि देवतात, हिमालयो नाम नगाधिराजः।

पूर्वापरो तोयनिधीवगाह्य, स्थितः पृथव्या इव मानदण्डः।

गीता में भी कहा गया है – 'स्थावरणां हिमालयः।'

(ख) उर्दू/अरबी/फारसी शब्दों का प्रयोग – शायद, आखिर, बुलावा, ख्याल, जरूर, किस्मत, मेहरबानी, खुद, खैर, बदमजा, काफी, गम, जिन्दगी, कौशिश, तबीयत, नक्शे, दर्द, हैशियतदारी, स्याह।

(ग) अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग – इंडियन कल्चर।

(घ) देशज शब्द – गड़बड़, मनौती, झाग, गड़ही, धनपोखर, खसूसियत, छूअन।

विद्यानिवास मिश्र जी ने अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के लिए भावात्मक, आलंकारिक, लाक्षणिक, वर्णनात्मक विश्लेषणात्मक व्यंग्यात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। ललित निबंध भावात्मक शैली में लिखे। उनका चिंतन पक्ष विचारात्मक शैली का द्योतक है। अस्ति की पुकार हिमालय निबंध में प्रयुक्त शैलियों का वर्णन निम्नवत् है –

(क) भावात्मक शैली – हम वस्तुतः सिद्धावस्था में पहुंच चुके हैं इसीलिए हमें वर्तमान नहीं छूता, हमें केवल भूत पकड़ता है, या भविष्य खींचता है, वर्तमान हमें लेशमात्र भी नहीं प्रभावित करता। इसीलिए हम अस्ति की अटपटी भाषा समझ नहीं सकते।

(ख) व्यंग्यात्मक शैली – 'अपने को अत्याधुनिक कहने वाले भी कुंडली दिखाते हैं। गृहों को प्रसन्न करने के लिए रत्न धारण करते हैं और किसी मंदिर में जाएँ न जाएँ पर हनुमान जी के यहाँ लड्डू चढ़ाने मंगलवार को जरूर पहुँचते हैं, हम गाहे–बगाहे देवताओं का दरबार करते हैं, मनौती मानते हैं, इंडियन कल्चर की बात करते हैं अशोक, कालिदास को भी कृत कृत्य करते रहते हैं।

(ग) विश्लेषणात्मक शैली – यह कैसी वदेर की बातें करते हो, कहाँ काकुल, कहाँ काकर्त्ता? कुल के नाम पर अगणित तनाव हैं, सास–बहू के बीच, पिता–पुत्र के बीच, भाई–भाई के बीच ननद–भौजाई के बीच, भाई–बहन के बीच, देरानी जेठानी के बीच, और हर तनाव के बाद एक टूटन है।

4.8.4 निष्कर्ष :

संस्कृत साहित्य की रसचेतना एवं लोक चेतना की अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले विद्यानिवास मिश्र जी ललित निबंधकारों में अग्रणी हैं। विश्व व्यापक दृष्टि एवं सांस्कृतिक चेतना के साथ मानवतावादी बोध मिश्र जी के अभिन्न विषय रहे हैं। अस्ति की पुकार हिमालय निबंध मिश्र जी के मौलिक चिंतन का परिचायक है।

हिमालय भौगोलिक दृष्टि से भारत का प्रहरी है। अदम्य शक्ति का प्ररेणा स्रोत है। हिमालय के अवलोक से हतप्रद होना स्वाभाविक ही है। कालिदास इसके प्रमाण हैं। राहुल जी द्वारा हिमालय पुराणों, आत्मीयता के भाव व्यक्त करने से मिश्र जी चकित हुए। हिमालय का हमारे पुराणों, ग्रंथों में वर्णन मिलता है। हिमालय देवताओं की आत्मा है। भगवान वासुदेव का शरण स्थल है। हिमालय से पूर्व राहुल जी का भी स्मरण होना आवश्यक है क्योंकि राहुल जी की हिमालय में अगाध निष्ठा है। राहुल जी के अनुसार हिमालय भारतीय जीवन प्रवाह का स्रोत है जिसमें भाषा, संस्कृति, समाज, चेतना सम्मिलित हो जाता है। हिमालय न तो भूत का विषय है वह भविष्य का भी विषय नहीं है। संस्कृत भाषा भी हिमालय के समान भारतीय धरोहर है। हिमालय की बाहों के नीचे जीवन यापन करने वाली सामान्य जनता का स्रोत है। कुमार संभव में भी हिमालय का वृतांत है पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हिमालय की पुकार धृमिल हो गई है। प्रदूषण है, संगीत की धमाचौकड़ी है।

मनुष्य की कथनी और करनी में अंतर आ गया है। जो मनुष्य स्वयं को आधुनिक कहता है उसका दृष्टिकोण नवीनता से कोसों दूर है। कुंडली दिखाते हैं, ग्रहों से रक्षा का प्रयत्न करते हैं। मंदिर में जाकर हनुमान की अराधना करते हैं। इंडियन कल्चर का बखान करते हैं, लेकिन मनौती के लिए धाम पर जाने में नहीं हिचकते। अशोक, कालिदास को भी महत्त्व देते हैं। नेता को देवता मानकर पूजते हैं। कुर्सी को सलाम करने की प्रथा है।

भारत की राष्ट्रीय एकता एवं सुरक्षा का बोध हिमालय की उपस्थिति को स्वीकार करता है। हिंदुस्तान में त्याग की बात करेंगे तो हमें श्रीमद्भगवद्गीता से उदाहरण देना होगा। राक्षस संहार के लिए श्री कृष्ण से भी भेंट करनी पड़ेगी। नारी को भुलावा देना है तो शक्ति की आराधना आवश्यक है। हिमालय को प्रहरी मानकर हमें आश्वस्त नहीं होना है।

मिश्र जी कहते हैं कि हम निष्क्रिय हो गये हैं। वर्तमान से मुंह मोड़ने लगे हैं। भविष्य के प्रति चिंतित नहीं है। इसलिए हमें हिमालय की भाषा भी नहीं सुनाई दे रही। अह ंके नशे में स्वयं को गौरवान्वित समझने लगे हैं। जातिगत वैमनस्य की खाई बड़ती जा रही है। सामंजस्य स्थापित करने से भटक गए हैं।

मनुष्य के मतभेद के फलस्वरूप सामंजस्य भी असामंजस्य में बदल गया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का तात्पर्य बदल गया है। जीवन में ठहराव आ गया है। लगता है बर्फ का दबाव भारी है। देशी, विदेशी का भाव समाप्त हो गया है। युग अर्थ प्रधान हो गया है। मानवीय संबंध अर्थ पर टिके हैं। अर्थ की जगह शत्रु ने ले ली है। इंन्सान अर्थ के मोहपाश में जकड़े गए हैं। शब्दों के आगे किसी का कोई मूल्य नहीं है। हिमालय, हिंदुस्तान, लेखक और पाठक शब्दों के जाल में बंध गए हैं। शब्दों में एकता का भाव निहित है।

हिमालय का प्रसंग पौराणिक वृतांत से जुड़ा है। शिव–पार्वती के विवाह का गवाह है। दहेज के रूप में बावन हांडी सुहाग शेष रहा था। एकाकी परिवार था, कोई सास–ससुर, देवर जिठानी न थी। बैल, वाहन के रूप में साथ था। पार्वती ने अपने सुहाग को निचली जातियों में बांट दिया था। आज भी वही उपहार अकिंचन की महिलाओं के सिंदूर में सुशोभित है। उन्नत शिखर के रूप में हिमालय आज भी उपस्थित है। हिमालय का रंग स्याह भारत की नंगी जनता के कारण हो गया है। लेखक चिंतित है कि वह समय शायद अवश्य आयेगा जब पार्वती का यह सुहाग अभिजात्य वर्ग में भी उपस्थिति दर्ज करा देगा।

'अपनी प्रगति जांचिए'

45. कौन सा मार्ग कांटों भरा है?

46. देवताओं की आत्मा कहाँ रहती है?

47. राहुल सांकृत्यायन के लिये हिमालय का क्या महत्त्व है?

48. हिमालय किसका प्रतीक है?

49. मनुष्य को भूत, वर्तमान और भविष्य की चिंता कब नहीं होती?

50. हिमालय किसकी आत्मा है?

51. भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग कौन है?

52. आधुनिक युग में क्या प्रधान है?

53. भारत का प्रहरी किसे कहा जाता है?

54. हिमालय किसकी शरण स्थली है?

4.9 सारांश :

निबंध की विधा भारतेंदु युग से प्रारंभ होकर वर्तमान तक हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाती चली आ रही है। 'निबंध निकष' के निबंधों में 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' नामक निबंध भावों, विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यमों को चरितार्थ करता है। वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, बौद्ध ग्रंथों, पुराण, भाषा के स्वरूप पर विवेचनात्मक दृष्टिकोण की झांकी मिलती है। रचना की उपयोगिता वर्णित विषय के साथ जन भाषा की प्रस्तुति पर निर्भर करती है। कवियों की 'उर्मिला विषयक उदासीनता' में द्विवेदी जी ने रामायण की स्त्री पात्र उर्मिला के प्रति उपेक्षित रवैये को पाठकों के समक्ष रखकर साहित्य मर्मज्ञों के स्वाभिमान को रेखांकित किया है। आपने कवि वाल्मीकि व तुलसीदास के दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है स्वभाव से ही विषय का वर्णन कर कवियों ने अपने इरादों को व्यक्त किया है। इसी क्रम में आत्मव्यंजक शैली के जन्मदाता अध्यापक पूर्ण सिंह द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबंधकार हैं, उन्होंने 'मजदूरी और प्रेम' नामक अपने निबंध में श्रम की महत्ता व मानवतावाद पर बल दिया है। एक अन्य निबंध 'कविता क्या है?' निबंध आचार्य रामचंद्र शुक्ल के सैद्धांतिक दृष्टिकोण का परिचायक है। कविता की परिभाषा, मार्मिक दृश्यों, भाषा, अलंकार उक्तियों द्वारा काव्य के विभिनन पक्षों पर विचार प्रस्तुत किया गया है। काव्य द्वारा आनंद की पूर्ति होती है। तन्मयता व साधारण कारण की स्थिति का बोध श्रेष्ठ काव्य की ओर संकेत करते हैं। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मानव की जन्मजात स्वाभाविक क्रियाओं का वर्णन किया है, विभिन्न युगों में नाखूनों के बढ़ने की प्रवृत्तियों को प्रसंग सहित प्रस्तुत किया है। जिज्ञासा भाव को शांत करने हेतु विभिन्न दृष्टिकोणों से पाठकों को अवगत कराया है। 'पगडंडियों का जमाना' नामक निबंध मनुष्यों की स्वार्थपरता, चाटूकारिता और लिप्सा को दिखाता है। हरिशंकर परसाई द्वारा रचित यह निबंध उर्दू, अरबी, फारसी व संस्कृत के शब्दों से पूर्ण है। इसमें व्यंग्यात्मकता, वर्णनात्मक, संवादात्मक आदि शैलियों का प्रयोग हुआ है। अंतिम निबंध विद्यानिवास मिश्र का 'अस्ति की पुकार हिमालय' है जिसमें उन्होंने संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग करते हुए हिमालय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, नूतन और पुरातन का सामंजस्य, समाज की बदलती मानसिकता का वर्णन किया है। इस प्रकार हमें हिंदी निबंधों के विभिन्न स्वरूपों का दर्शन होता है। इन निबंधों के भावानात्मक, सैद्धांतिक, समीक्षात्मक, विचारात्मक, व्यंग्यात्मक आदि भाव दृष्टिगत हुए हैं।

4.10 मुख्य शब्दावली :

फुटही – फूटा

उम्दा – अच्छा

फिरके – वर्ग

प्रयाण – जाते

लषमण – लक्ष्मण

बनाम – बिना नाम वाला

मयस्सर – उपलब्ध

प्रसून – पुष्प

चिक – पर्दा

सिलेबस – पाठ्यक्रम

स्याह – काला

कूचक्र – बुरीचाल

छिद्रांवेषण – दोष ढूंढने की प्रवृत्ति

अस्ति – सत्ता

अर्पण – देना

कद्र – सम्मान

अवगत – परिचय

रसात्मक – रसयुक्त

अवलोकन – देखना

प्रहरी – रक्षक

तमसाच्छन्न – अंधकार से घिरा हुआ

क्रौंच – करांकुल नामक पक्षी

अन्योन्याश्रित – परस्पर का सहारा

प्रस्फुटन – फटना या खिलना

पुरोध – हित रखने वाला

4.11 'अपनी प्रगति जांचिए'

1. साहित्य समाज का दर्पण होता है।
2. वेद चार प्रकार के होते हैं।
3. जन समूह के ह्रदय का विकास साहित्य कहलाता है।
4. त्याग की भावना रामायण ग्रंथ में मिलती है।
5. आनंद के समय मुख कमल के समान होता है।
6. मनुष्य के ह्रदय का आदर्श साहित्य कहलाता है।
7. दुखी व्यक्ति की आवाज फुटही ढोल के समान होती है।
8. रामायण और महाभारत साहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथ माने गए हैं।
9. द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन किया।
10. पतिविहीन नारी की स्थिति जलविहीन सरिता के समान होती है।
11. कवियों का स्वभाव स्वच्छंद होता है।
12. उर्मिला वैदेही की सहेली एवं बहन थी।
13. भवभूति ने उर्मिला के बारे में वर्णन किया।
14. क्रौंच पक्षी का वध वाल्मीकि के लिए रामायण के सृजन का कारण बना।
15. उर्मिला लक्ष्मण की पत्नी थी
16. राम का वनवास चौदह वर्ष का था।
17. लेखक ने किसान की तुलना व समानता ब्रह्मा से की है।
18. जाति–पाति की दीवारें प्रेम के मार्ग को अवरूद्ध करती हैं।
19. मजदूरी और फकीरी में समानता के भाव मिलते हैं।
20. मशीनीकरण भुखमरी के लिये उत्तरदायी है।
21. भेड़ें सफेद ऊन वाली थीं।
22. मनुष्य के हाथ से बने कामों में पवित्र आत्मा की गंध आती है।
23. श्रम की महत्ता 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध का उद्देश्य था।
24. हल चलाने वाले को 'हलधर' कहा जाता है।
25. जब व्यक्ति की वाणी अभिव्यक्ति से संपृक्त होकर मुखरित होती है, तो वह कविता कहलाती है।
26. काव्य का जन्म ह्रदय की सह्रदयता द्वारा संभव है।
27. ह्रदय पक्ष की प्रधानता होती है।

28. उक्ति से चमत्कार पैदा होता है।
29. लाक्षणिकता छायावादी युग की विशेषता है।
30. आचार्य रामचंद्र शुक्त ने मनोवैज्ञानिक निबंध लिखे।
31. कविता भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है।
32. कविता द्वारा संस्कारों की शुद्धि का साधन संभव है।
33. मनुष्य में पशुवत आचरण का होना चिंता का विषय है।
34. मनुष्य मानवीय गुणों के कारण पशुओं से श्रेष्ठ है।
35. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानव की सभ्यता का प्रतीक हैं।
36. केशों का बढ़ना दूसरी वृत्ति है।
37. सबके सुख–दुःख , सहानुभूति को मनुष्यता कहते हैं।
38. नाखून पशुता का प्रतीक है।
39. नाखूनों को मोम आदि रगड़कर सुंदर बनाया जाता था।
40. आत्मा को फोल्डिंग कुर्सी के समान होना चाहिए।
41. देव की आत्मा उसके पास रहती है और दानव की उससे दूर।
42. मार्च का महीना पेपर आउट का होता है।
43. लड़का, लड़की दया के पात्र हैं।
44. सत्य का मार्ग कांटों भरा है।
45. देवताओं की आत्मा उनके पास रहती है।
46. उनके लिए हिमालय भूत, भविष्यत् न होकर केवल अस्ति रहा।
47. हिमालय राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है।
48. सिद्धावस्था में पहुंचने पर भूत, वर्तमान और भविष्य की चिंता नहीं होती।
49. हिमालय देवात्मा है।
50. हिमालय भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है।
51. आधुनिक युग में अर्थ प्रधान है।
52. हिमालय को भारत का प्रहरी कहा जाता है।
53. हिमालय भगवान वासुदेव की शरण स्थली है।

4.12 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. भगवान राम के गुणों का वर्णन कीजिए।
2. रामायण तथा महाभारत की विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. उर्मिला की चारित्रिक विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए?

4. द्विवेदी जी ने महर्षि वाल्मीकि की आलोचना क्यों की है?
5. हस्तकला की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
6. भट्ट जी ने अपने निबंध में कितनी शैलियों का प्रयोग किया है?
7. परिश्रम की महत्ता पर प्रकाश डालिए।
8. 'कविता क्या है?' की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।
9. मानव के मनोभावों के बारे में बताइए।
10. गांधीवादी विचारधारा के बारे में समझाइए।
11. मानवीय गुण किसे कहते हैं?
12. यथार्थ बोध पर टिप्पणी लिखिए।
13. आत्मा की उपमा किसे दी गई है?
14. पौराणिक दृष्टि से हिमालय का क्या महत्त्व है?
15. हिमालय किस प्रकार से भारतीय संस्कृति का प्रतीक है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. मानव व्यवहार युगीन परिस्थितियों पर निर्भर करता है। बालकृष्ण भट्ट की इन पंक्तियों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. आर्यों के वेदों व साहित्य की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. उर्मिला के प्रति कवियों की उदासीनता की लेखक ने किस प्रकार व्याख्या की है समझाइए।
4. द्विवेदी ने रामचरित मानस में उर्मिला की उपेक्षा को किस प्रकार वर्णित किया है।
5. किसान की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. मशीनीकरण के दुष्परिणामों का उल्लेख कीजिए।
7. कविता किसे कहते हैं? परिभाषित करते हुए समझाइये।
8. कविता में प्रभावोत्पादकता के गुण की व्याख्या कीजिए।
9. आदिमानव और वर्तमान मानव का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
10. 'मानवता सर्वोपरि है' सिद्ध कीजिए।
11. सत्य के मार्ग में कौन सी कठिनाइयाँ आती हैं विवेचना कीजिए।
12. लेखक किस प्रकार से भ्रष्टाचार से त्रस्त दिखता है?
13. शिक्षित व्यक्ति भी धार्मिक अंधता को क्यों नहीं त्याग पाता?

4.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. नंदकिशोर नवल, *हिंदी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन।*
2. नंदकिशोर नवल, *कविता की मुक्ति, वीणा प्रकाशन।*
3. सं. सत्यप्रकाश मिश्र, विनोद तिवारी, *आचार्य रामचंद्र शुक्ल के श्रेष्ठ निबंध, लोक भारती प्रकाशन।*
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, निबंध यात्रा, *डॉ॰ कृष्णदेव इतिहास, शोध संस्थान, नई दिल्ली।*
5. हिंदी साहित्य में निबंध का विकास, *ओंकारनाथ शर्मा, अनुसंधान प्रकाशन,* कानपुर।